श्री अमोल जैन ग्रन्थमाला पुष्प-संख्या ७९

卐 प्रद्युम्नकुमार-चरित 卐

लेखकः-

शास्त्रोद्धारक श्रीमज्जैनाचार्य धर्मदिवाकर
पूज्यश्री अमोलकऋषिजी महाराज

संयोजकः-

पण्डित मुनिश्री कल्याणऋषिजी महाराज

प्रकाशक:-
मन्त्री,
श्री अमोल जैन ज्ञानालय, धुलिया.
(महाराष्ट्र)

तृतीयावृत्ति २०००	अर्द्ध मूल्य १.५०	वी. सं. २४९७ वि. सं. २०२७

मुद्रक:-
विश्वास मुद्रण
न्यु इतवारी रोड,
नागपुर-२.

प्रकाशक का निवेदन

सम्माननीय प्रेमी पाठक वृन्द !

आज आपके पवित्र करकमलों मे स्वर्गीय, बाल ब्रह्मचारी, साहित्य-महारथी पूज्य मुनिराज श्री १००८ श्री अमोलक ऋषिजी महाराज साहब कृत "प्रद्युम्नकुमार" के पद्य-ग्रंथ के हिन्दी गद्य मे रूपान्तर की तृतीय आवृत्ति प्रस्तुत कर रहे है। पूज्य श्रीजी की साहित्य-साधना, साहित्य-लगन और साहित्य-रचना स्थानकवासी समाज मे अपना विशेष तथा गौरवपूर्ण स्थान रखती है। पूज्य श्री जी ने अपने तपमय जीवन को एकान्त रूप से साहित्य निर्माण मे लगा दिया था। युगानुसार साहित्य की रूप रेखा परिवर्तित होती रहती है, तदनुसार वह युग छन्दो-बद्ध ढालरास-चरित्र और चौपाई का था। आज गद्य-प्रधान साहित्य की विशेष मान्यता है। यही कारण है कि महान् सन्त, कवि, तप-तेज-त्याग की मूर्ति स्वरूप पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज साहब के सुयोग्य शिष्य **पं. मुनि श्री १००८ श्री कल्याण ऋषिजी** महाराज साहब अपने परम पूज्य गुरुदेव के पद्य-बद्ध ग्रन्थों का क्रमशः गद्य-रूपान्तर प्रस्तुत करने का स्तुत्य और सुन्दर प्रयास कर रहे है। आज उसी प्रशंसनीय प्रयास के फल स्वरूप **"प्रद्युम्नकुमार चरित"** के पद्य रूप के गद्य-रूपान्तर की तृतीय आवृत्ति प्रेमी पाठकों के हाथ मे है।

इस चरित की प्रथमावृत्ति संवत् २०१० मे तथा द्वितीय आवृत्ती सं. २०२० श्री अमोल जैन ज्ञानालय, धुलिया की ओर से प्रकाशित की गई थी। इसको पूज्य मुनिमण्डल, महासतियांजी म. एवं श्रावक-श्राविका वर्ग ने अति आत्मीयता से अपना कर ज्ञान प्रचार के कार्य मे सहयोग दिया, इसके फल स्वरूप इस चरित की तृतीयावृत्ति निकालने का साहस संस्था के कार्यकर्ताओं ने किया है।

ज्ञानालय की ओर से स्वर्गीय पूज्य श्रीजी के अन्य पद्य मय चरितों का गद्य रूपान्तर जैसे धर्मवीर जिनदास, धन्ना-शालिभद्र, अभयकुमार आदि भी प्रकाशित किये जा चूके है जिन्हे समाज ने खूब अपनाया है। अतएव सब के शुभाशीर्वाद से हम शीघ्र ही इन चरितों का तृतीय संस्करण भी प्रकाशित कर रहे है।

ज्ञान प्रचार एवं धर्मप्रचार के ध्येय को सामने रखकर ज्ञानालय अर्ध मूल्य मे सुरुचि पूर्ण साहित्य समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का सदैव प्रयत्नशील रहा है। प्रस्तुत प्रकाशन का भी अर्ध मूल्य ही रखा गया है।

पाठकोंके लिये इस अत्यन्त उपयुक्त योजना के लिये मुनिराज श्री कल्याण ऋषिजी महाराज साहब और आपके सहयोगी स्व. मुनिराज श्री सुलतान ऋषिजी महाराज साहब निश्चय ही श्रेय एवं प्रशंसा के पात्र है। इस दृष्टि से संस्था की ओर से हम आपके चिर-ऋणी है और अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते है।

प्रस्तुत पुस्तक मे पुण्य का महत्व समझाया गया है और पुण्य की महानता प्रमाणित की गई है।

आशा है कि विवेकशील पाठक पुण्य के मर्म को समझने मे इस ग्रन्थ का उपयोग करेंगे। इति शुभम्

धुलिया
(महाराष्ट्र)
भादवा वदी १४
२०२७

विनीत–
कन्हैयालाल मिश्रीलाल छाजेड़
मन्त्री
श्री अमोल जैन ज्ञानालय

श्री अमोल जैन ज्ञानालय

धुलिया (महाराष्ट्र)

इस प्रकाशन संस्था को आर्थिक सहायता देने वाले सज्जनों की शुभ नामावली

— हमारे सदस्य —

जन्म दाता:—

१ श्रीमान् राजाबहादुर लाला सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी, हैदराबाद

२	,,	प्रेमराजजी चन्दुलालजी छाजेड़	,,
३	,,	मोतीलालजी गोविन्दरामजी श्रीश्रीमाल	धुलिया
४	,,	हीरालालजी लालचन्दजी धोका	यादगिरी
५	,,	केवलचन्दजी पन्नालालजी बोरा	बैंगलोर
६	,,	सरदारमलजी नवलचन्दजी पुंगलिया	नागपुर
७	,,	केसरचन्दजी कचरदासजी बोरा, आश्वी (नगर)	(आश्वासन)
८	,,	मानमलजी मंगलचन्दजी रांका, पारशिवनी	(नागपुर आश्वासन)
९	,,	शुभकरणजी नथमलजी खिवसरा	धामक

स्तम्भ संरक्षकः—

१ श्रीमान् जैन श्रावक संघ वार्शी
२ ,, दलीचन्दजी चुन्नीलालजी वोरा रायचूर
३ ,, शम्भूमलजी गगारामजी मूथा बेंगलौर
४ ,, अगरचन्दजी मानमलजी चोरडिया मद्रास
५ ,, कुन्दनमलजी लूंकड़ की सुपुत्री श्री सायरबाई बेंगलौर
६ ,, नानचन्दजी भगवानदासजी दूगड़ घोड़नदी
७ ,, बस्तीमलजी हस्तीमलजी मूथा रायचूर
८ ,, तेजराजजी उदयराजजी रूनवाल ,,
९ ,, मुकनचन्दजी कुशलराजजी भण्डारी ,,
१० ,, नेमीचन्दजी शिवराजजी गोलेच्छा वेलूर
११ ,, पुखराजजी सम्पतराजजी धोका यादगिरी
१२ ,, इन्दरचन्दजी गेलडा मद्रास
१३ ,, विरदीचन्दजी लालचन्दजी मगलेचा ,,
१४ ,, जसराजजी वोहरा की धर्मपत्नी श्री केशरबाई सोरापुर
१५ ,, चम्पालालजी लोढा की धर्मपत्नी श्री घीसीबाई सिकन्दराबाद
१६ ,, सज्जनराजजी मूथा की धर्मपत्नी श्री उमरावबाई आलंदूर (मद्रास)
१७ ,, चम्पालालजी पगारिया मद्रास
१८ श्री अमोल जैन स्था० सहायक समिती पूना
१९ श्रीमान् गिरधारीलालजी वालमुकनजी लूंकड़ बोरद
२० श्री स्थानकवासी जैन श्री संघ घोटी
२१ श्रीमती भूरीबाई भ्र० छोगमलजी सुराणा वाणियमवाड़ी
२२ ,, मेहताबबाई भ्र० अमोलकचन्दजी सिसोदिया ,,

२३ श्रीमान् कनीरामजी गांग की धर्मपत्नी सौ. रामकुंवरबाई
पिपलगांव (बसवन्त) नासिक
२४ ,, मन्नालालजी सुराणा की धर्मपत्नी सौ. मदनबाई
सिकंदराबाद
२५ ,, खिवराजजी जीवराजजी चोपड़ा होलनाथा (धुलिया)
२६ ,, बन्डूलालजी तुलसीरामजी कटारिया वलवाडा नासिक
२७ ,, हीरालालजी हमीरमलजी बोथरा की धर्मपत्नी
सौ. श्रीमती मीराबाई अण्डरसनपेठ
२८ श्रीमती कचरीबाई भ्र० दलीचन्दजी वेदमूथा सुरगाणा नासिक
२९ श्रीमान् जवरीलालजी माणिकचन्दजी ललवाणी खेरी
३० ,, मथुरादासजी वन्शीलालजी बरडिया राजूर
३१ ,, जयवन्तराजजी सुराणा की धर्मपत्नी श्री दाकूबाई
द्वारा तेजराजजी सुराणा सावकर पेठ मद्रास
३२ श्रीमती धनीबाई कन्हैयालालजी बोरा वरोरा (जिला चांदा)
३३ ,, धापुबाई दुलराजजी गोठी ,, ,,
३४ ,, फुलीबाई हीरचन्दजी चण्डालिया ,, ,,
३५ श्रीमान् मांगीलालजी अगरचन्दजी बोरा ,, ,,
३६ ,, शाह नागसी हीरजी धर्मार्थ ट्रस्ट
द्वारा नानजी नागसी शाह नागपुर

आजीवन सदस्यः—

१ श्रीमान् किशनलालजी बच्छावत मूथा
की धर्मपत्नी गिलखीबाई रायचूर
२ ,, हंसराजजी बरलेचा की धर्मपत्नी मेहताबबाई
आलन्दूर (मद्रास)
३ ,, जयवंतराजजी भंवरलालजी चोरडिया मद्रास

४	श्रीमान्	निहालचन्दजी मगराजजी सांखला	वेलूर
५	,,	लाला रामचन्द्रजी की धर्मपत्नी श्रीमती पार्वतीबाई	हैदराबाद
६	,,	पुखराजजी लूंकड़ की धर्मपत्नी श्रीमती गजराबाई	बेंगलौर
७	,,	किशनलालजी फूलचन्दजी लूणिया	,,
८	,,	मिश्रीमलजी कात्रेला की धर्मपत्नी श्रीमती मिश्रीबाई	,,
९	,,	उमेदलालजी गोलेच्छा की सुपुत्री मिश्रीबाई	हैदराबाद
१०	,,	गाढमलजी प्रेमराजजी बांठिया	सिकन्दराबाद
११	,,	सुल्तानमलजी चन्दनमलजी सांखला	,,
१२	,,	जेठालालजी रामजी के सुपुत्र गुलाबचन्दजी (स्वर्गीय माता जबलबाई की स्मृति मे)	,,
१३	,,	गुलाबचन्दजी चौथमलजी बोहरा	रायचूर
१४	,,	जसराजजी शांतिलालजी बोहरा	,,
१५	,,	दौलतरामजी अमोलकचंदजी धोका	यादगिरी
१६	,,	मांगीलालजी भण्डारी	मद्रास
१७	,,	हीराचन्दजी खिवराजजी चोरडिया	,,
१८	,,	किशनलालजी रूपचन्दजी लूणिया	,,
१९	,,	मांगीलालजी बंशीलालजी कोटडिया	,,
२०	,,	मोहनलालजी प्रकाशचन्दजी दूगड़	,,
२१	,,	पुखराजजी मीठालालजी बोहरा पेरम्बूर	,,
२२	,,	राजमलजी शांतिलालजी पोखरणा ,,	,,
२३	,,	ऋषभचन्दजी उदयचन्दजी कोठारी ,,	,,
२४	,,	आर. जेतारामजी कोठारी ,,	,,

२५ ,, जवानमलजी सुराणा की धर्मपत्नी
श्रीमती मायाबाई आलन्दूर मद्रास
२६ ,, मिश्रीमलजी रांका की धर्मपत्नी
श्रीमती मिश्रीबाई पुदूपेठ ,,
२७ श्रीमान् मानकचंदजी चतुर की धर्मपत्नी रतनबाई वेलूर
२८ ,, बोरीदासजी पोरवाल की धर्मपत्नी पानीबाई बैंगलौर
२९ ,, एम. कन्हैयालालजी समदड़िया एण्ड ब्रदर्स ,,
३० ,, हीराचंदजी सांखला की धर्मपत्नी
श्रीमती भूरीबाई ,,
३१ ,, निहालचंदजी घेवरचंदजी भटेवरा वेलूर
३२ ,, विनयचंदजी विजयराजजी भटेवरा ,,
३३ ,, गुलाबचंदजी केवलचंदजी भटेवरा ,,
३४ श्रीमती गुप्त दानी बहिन ,,
३५ श्रीमान् रामचन्द्रजी बांठिया की धर्मपत्नी पानीबाई ,,
३६ ,, बीजराजजी धाडीवाल की धर्मपत्नी मिश्रीबाई त्रिवेलूर
३७ ,, सम्पतराज एण्ड कम्पनी तिरपातूर
३८ ,, आसकरणजी चोरड़िया की धर्मपत्नी
श्रीमती केसरबाई उलदूरपेठ
३९ ,, जुगराजजी, खिवराजजी, केवलचन्दजी बरमेचा
श्रीपेरमपुर
४० ,, नवलमलजी शम्भूमलजी चौरड़िया मद्रास
४१ ,, मिश्रीमलजी पारसमलजी कात्रेला बैंगलौर
४२ ,, केसरीमलजी घीसूलालजी कटारिया ,,
४३ ,, मुल्तानमलजी चंदनमलजी गरिया ,,
४४ ,, चुन्नीलालजी की धर्मपत्नी झूमीबाई ,,

५९ „ भीकचंदजी लालचंदजी बूरड़ (महावीर स्टोर्स)
पिपलगाँव (वसंत)
६० „ मूलचंदजी माणकचंदजी चोपड़ा „
६१ „ स्व. लच्छीरामजी भण्डारी की धर्मपत्नी
श्रीमती तुलसाबाई नांदुर्डी (नासिक)
६२ श्रीमती मातुश्री स्व. राजीबाई ध्र. मिश्रीलालजी छाजेड़
की पुण्य स्मृति मे छाजेड़ बंधु की ओर से धुलिया
६३ श्रीमान् पन्नालालजी छल्लानी की धर्मपत्नी सौ. पतासाबाई
वडेल
६४ „ गुप्तदानीजी नासिक जिला
६५ „ हिम्मतलालजी पवनलालजी संचेती (देवला) रामसर
६६ „ कन्हैयालालजी नेमीचदजी लोढ़ा सूर
६७ श्रीमान् चम्पालालजी छगनलालजी चौरडिया मुकने (नासिक)
६८ श्रीमती धापूबाई ध्र हंसराजजी रांका नासिकसिटी
६९ श्रीमान् मूलचंदजी गुलराजजी बोहतरा वाणियाविहार
७० „ भागचंदजी दगड़ूलालजी पगारिया धरणगांव
७१ „ अमोलकचंदजी मोतीलालजी पगारिया „
७२ „ सुखलालजी दगडूलालजी ओस्तवाल
पिपलगांव वखारी (नासिक)
७३ „ फूलचंदजी गोलेच्छा की धर्मपत्नी रंगूबाई चाहर्डी
७४ „ लालचदजी कमलराजजी बागमार रायचूर
७५ „ मदनलालजी नेमीचंदजी पारख नासिकसिटी
७६ „ कस्तुरचंदजी पारख की धर्मपत्नी
सौ. गंगाबाई वगखेडे (नासिक)
७७ „ स्व. छगनलालजी पारख की धर्मपत्नी चांदाबाई „

४५ „ अचलदासजी हंसराजजी कवाड़ सिंधनूर
४६ „ एन. शांतिलालजी वलदोटा पूना
४७ „ घोंडीरामजी विनायक्या की धर्मपत्नी
श्रीमती रंगूबाई निफाड़
४८ „ जुगराजजी मूथा की धर्मपत्नी
श्रीमती पताशीबाई काटपाड़ी
४९ „ डुंगरमलजी, अनराजजी, भीकमचंदजी
भंवरलालजी सुराणा मद्रास
५० श्रीमान् मिश्रीमलजी बोरा की धर्मपत्नी
श्रीमती नेनीबाई बैंगलौर
५१ „ केवलचंदजी बोरा की धर्मपत्नी
श्रीमती पार्वतीबाई „
५२ „ सुवालालजी शंकरलालजी जैन माम्वलम् मद्रास
५३ „ वक्तावरमलजी गादिया की धर्मपत्नी
श्रीमती गंगाबाई „
५४ „ अमरचंदजी मरलेचा की धर्मपत्नी
श्रीमती चौथीबाई पल्लावरम् मद्रास
५५ „ गोविंदरामजी मोहूरामजी ट्रस्ट की ओर से
(सेक्रेटरी श्री० दीपचंदजी सचेती) धुलिया
५६ „ स्वर्गीय रूपचंदजी भंसाली की धर्मपत्नी श्रीजतनबाई
फतेपुर
५७ „ (स्वर्गीय अनराजजी जवाहरमलजी मंडलेचा के
स्मरणार्थ) श्री बंशीलालजी मेघराजजी मंडलेचा „
५८ „ हीरालालजी मोतीलालजी भलगट गुलबर्गा

७८ ,, स्व. वनेचंदजी के स्मरणार्थ श्रीमान् झुंवरलालजी
की मातुश्री चम्पाबाई पगारिया पाथर्डी (नासिक)
७९ श्री जैन दिवाकर मण्डल द्वारा दगडूलालजी गांधी सुकेणे
८० श्रीमान् कल्याणजी वछराजजी द्वारा प्राणजीवनजी
बजराजजी मालेगांव (नासिक)
८१ ,, धरमचंदजी रिधकरणजी मोदी उमराणे (नासिक)
८२ ,, धोंडीरामजी की धर्मपत्नी जमनाबाई की
तरफ से ह. श्री रतनलालजी ओस्तवाल ,, ,,
८३ श्रीमती नाजूबाई भ्र. ताराचंदजी वाफणा होलनाथा धुलिया
८४ स्व. मुनिश्री मुल्तानऋषिजी म. सा. की स्मृति मे
श्रीमान् शंकरलालजी मोतीलालजी दूगड़ वडनेर
८५ श्रीमान् उदेराजजी हरकचन्दजी रेदासणी वीबी
८६ ,, पारसमलजी किशनलालजी कुचेरिया
धुलिया (आश्वासन)
८७ ,, अध्यक्ष श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ नागपुर
८८ ,, सेठ चांदमलजी मुथा की धर्मपत्नी सौ.श्री रतनबाई
रायचूर
८९ ,, जवरीलालजी माणेकचन्दजी ललवाणी खेरी
९० ,, मांगीलालजी तनसुखदासजी सुराणा मांढ़ेली
९१ ,, भँवरलालजी हरीचन्दजी बोथरा पोहणा
९२ ,, स्व. नगीनदासजी चत्रभुजजी कोठारी
द्वारा श्रीमती नवलबेन नगीनदासजी कोठारी नागपुर
९३ ,, हीरालालजी पन्नालालजी कांठेड़ खेरी
९४ ,, स्व. पुखराजजी सुराणा की धर्मपत्नी पुष्पादेवी वणी
९५ ,, मोहनलालजी मदनलालजी कोटेचा अडगांव

श्री वीतरागाय नमः

प्रद्युम्नकुमारचरित

(पुण्य कल्प द्रुम)

प्रथम स्कन्ध

मंगलाचरण

सकल कुशल-दाता प्रभो ! नमूं चरण चित धार ।
जय जय श्रीजिनदेवजी, मंगल-मुद करतार ॥१॥
अरिहंत सिद्ध आचार्यजी, उपाध्याय सब साध ।
लब्धिनिधि गौतम प्रभो ! दीजे सौख्य-समाध ॥२॥
श्री गुरु दाता ज्ञान के, तारण-तरण जहाज ।
भाव-तिमिर मेरो हरयो, प्रणमूं तेहना पाय ॥३॥
मां श्रुतदेवी कर दया, दीजे सन्मति सार ।
मम इच्छा परिपूर्ण कर, करूं पूर्ण अधिकार ॥४॥

: १ :

सूत्रपात

(जिस विश्व के एक छोटे से कोने मे हम निवास करते है, उसका कहीं ओर-छोर नहीं है। उसकी कहीं सीमा नहीं है। वह सभी तरफ से असीम, असीम और असीम है। इस विशाल और विराट विश्व में रहे हुए पदार्थों की गणना करने चलें तो उनका भी कहां अन्त है? गणना करते-करते एक क्या, असंख्य जीवन समाप्त हो जाएँगे, परन्तु विश्व के वस्तुओं की गिनती पूरी नहीं हो सकती। ऐसी स्थिती में ज्ञानी महापुरुषों ने वर्गीकरण की विधि हमारे सामने प्रस्तुत की है। जब हम उस विधि के अनुसार विश्व का वर्गीकरण करते हैं तो मूलभूत दो वस्तुएँ ही पाते हैं —जड़ और जीव। इन्हीं दो में समग्र विश्व का समावेश हो जाता है।)

जड़ वस्तुओं के विस्तार की ओर ध्यान देने पर वह भी कई विभागों में बाँटी जा सकती हैं। शास्त्रकारों ने अनेक दृष्टीकोणों से उनका बँटवारा किया भी है। द्रव्य-दृष्टि से जड़ पदार्थ पाँच भागों में विभक्त किये गये हैं—रूपी पुद्गल, अरूपी धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल। इन्हीं में जीव को जोड़ देने से द्रव्यों की संख्या छह हो जाती है।

यहाँ द्रव्यों की विवेचना करना हमारा उद्देश्य नही है। प्रस्तुत विषय को स्पष्ट करने के लिये सिर्फ आकाश द्रव्य के संबंध में कुछ बातें बतलाना आवश्यक है।

आकाश के प्रधान रूप से दो विभाग हैं, जिन्हें लोकाकाश और अलोकाकाश कहते हैं। जिस आकाशखण्ड में हम सब रहते हैं और जिसमें पूर्वोक्त शेष पाँच द्रव्य रहते हैं, वह लोकाकाश कहलाता है। और जिस खण्ड में शुद्ध आकाश ही आकाश है और सुनसान आकाश के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु नहीं है, वह अलोकाकाश कहलाता है।

अलोकाकाश के मुकाबिले में लोकाकाश एक छोटा-सा कण्ड है। परन्तु छोटा होने पर भी वह बहुत बड़ा है। उसकी लम्बाई चौदह 'राजू' है। उसके सब तरफ अनन्त, अमर्याद अलोकाकाश है। लोकाकाश को समझने की सुविधा के लिए तीन भागों में विभक्त कर लिया गया है – (१) ऊर्ध्वलोक (२) मध्यलोक और (३) अधोलोक।

समतल भूमि से नौ सौ योजन की नीचाई से अधोलोक आरम्भ होता है और नौ सौ योजन की ऊँचाई से उर्ध्वलोक शूरू होता है। इन दोनों के बीच में, अठारह सौ योजन में मध्य-लोक स्थित है।

मध्यलोक पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह गोलाकार है। इसमें गोलाकार असंख्यात द्वीप और असंख्यात ही समुद्र हैं। सब द्वीपों और समुद्रों के बीच में जो द्वीप है वह जम्बूद्वीप कहलाता है। जम्बूद्वीप को चारों ओर से घेरे हुए लवणसमुद्र

है, लवणसमुद्र को घेरे हुए धातकीखण्ड द्वीप है। इसी प्रकार एक द्वीप और एक समुद्र का क्रम चलता गया है।

तो जम्बुद्वीप इस विश्व के केन्द्र भाग मे है और मध्यलोक के भी केन्द्र भाग में है। यह द्वीप एक लाख योजन विस्तीर्ण है। इसके भी ठीक बीच में सुमेरु पर्वत से ही पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण आदि दिशाओं की कल्पना की गई है।

जम्बूद्वीप में पूर्व से लेकर पश्चिम भाग तक छह बड़े-बड़े पर्वत आ गये है। इन पर्वतों के आड़े आ जाने से जम्बूद्वीप सात खण्डों में विभक्त हो गया है। यह सात खण्ड सात क्षेत्र भी कहलाते है।

सुमेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में, लवणसमुद्र और हिमवान पर्वत के बीच में भरतक्षेत्र है। भरतक्षेत्रके बीचो बीच भी पूर्व से लगाकर पश्चिम तक एक पर्वत है। उसका नाम वैताढ्य पर्वत है। इस पर्वत के कारण भरतक्षेत्र दो हिस्सों में बंट गया है। और फिर हिमवान पर्वत से निकलने वाली महागंगा और महासिन्धु नामक दो नदियाँ भी भरतक्षेत्र में बहती है। इस प्रकार वैताढ्य पर्वत और इन दोनों नदियों के कारण भरत क्षेत्र के छह खण्ड हो गये है।

भरतक्षेत्र में, बत्तीस हजार देशों का शिरोमणि सोरठ (सौराष्ट्र) देश है। सौराष्ट्र देश मे द्वारिका नगरी है यह नगरी स्वयं वैश्रमणदेव के द्वारा बसाई गई थी। उसकी सुन्दरता का क्या पूछना है। वह देवलोक के समान—अलकापुरी के सदृश थी और तीनों खन्डों में विख्यात थी। वह मध्यलोक

का आभूषण थी। बारह योजन की लम्बाई और नौ योजन की चौड़ाई में बसी हुई थी। उसके इर्द-गिर्द स्वर्णमय प्राकार था और उस प्राकार में मणियों के कंगूरे बने हुए थें। चारों तरफ चौड़ी खाई थी। वहाँ का किला अत्यन्त मजबूत और अठारह हाथ ऊँचा था। किले में नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, तोपें, शतघ्नी आदि विद्यमान थे और दारू गोला आदि युद्ध सामग्री प्रस्तुत रहती थी। रात-दिन पहरेदार पहरा दिया करते थे।

नगरी के चौतरफ बहुसंख्यक बाग-बगीचे थे। सबके सब अत्यन्त मनोहर थे। वृक्षों, बेलों, फलों फूलों से सुशोभित थे। स्थान-स्थान पर सुरभित और निर्मल जल से परिपूर्ण सरोवर शोभायमान थे। उन सरोवरों के किनारे भाँति-भाँति के पक्षी किलोलें करते और अपनी चहचहाट से जनता का मन मुग्ध कर लेते थे।

जिस समय का यह वर्णन है, उस समय द्वारिका नगरी के अधिपति वासुदेव कृष्ण थे। बलदेव उनके ज्येष्ठ भ्राता भी मौजूद थे दोनों भाईयों में अनुपम और आदर्श स्नेह था। श्रीकृष्ण सभी उत्तम राजचिन्हों से अलंकृत और सद्गुणों से युक्त थे। उन्होंने भरतक्षेत्र के तीन खण्डों पर अपनी विजय-पताका फहरा दी थी। और अर्धचक्रवर्ती का पद प्राप्त कर लिया था। बिखरे हुए और छिन्न भिन्न भारतवर्ष के अर्द्धभाग को एक शासनसूत्र में ले आये थे। 'वासुदेव' के नाम से उनकी प्रसिद्धि थी।

वासुदेव श्रीकृष्ण के समय में भी यहाँ की भवननिर्माण कला अत्यन्त उन्नत थी। उसकी उन्नति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि स्वयं श्रीकृष्ण के रहने का महल बीस मंजिल का था। बलदेव का महल अठारह मंजिल का, दस दशार्ह के नौ-नौ मंजिल के और दूसरों के सात-सात मंजिल के महल थे।

श्रीकृष्ण की बत्तीस हजार रानियाँ थीं और बलदेवजी की सोलह हजार। सभी असाधारण रूप-लावण्य से सुशोभित थीं। उनकी रुपश्री के सामने अप्सराएँ भी लज्जित हो जाती थीं।

द्वारिका नगरी बहुत विशाल थी। परकोटे के भीतर भी जनता की आबादी थी और बाहर भी थी। साठ करोड़ मकान भीतर बने हुए थे और बहत्तर करोड़ बाहर। इस प्रकार एक अरब और बत्तीस करोड़ घरों की जहाँ आबादी हो, उस नगरी की विशालता और महत्ता का क्या पूछना है? फिर सबके सब मकान बड़े सुन्दर थे। सचमुच, उस समय द्वारिकापुरी अपनी अनुपम छटा से शोभायमान हो रही थी।

द्वारिका नगरी में पुण्यशील पुरुषों का निवास था। वहाँ की प्रजा दानशील, धर्मपरायण, शीलवान्, सन्तोषी और विनय आदि सद्गुणों से विभूषित थी। श्रीसम्पन्न थी। द्वारिका की नारियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली थीं और अन्य महिलोचित गुणों से युक्त थीं। वहां के सभी घर धन धान्य से परिपूर्ण थे। स्वचक्र या परचक्र के भय का नाम-निशान नहीं था। जहा श्रीकृष्ण सरीखे प्रचण्ड शक्तिशाली

शासक हों, वहां की प्रजा को भीतर या बाहर का भय हो ही कैसे सकता था ? इस प्रकार द्वारिका-वासी निर्भय और पूर्ण सुखी थे।

यदुपति श्रीकृष्ण की आठ पटरानियाँ थीं—(१) रुक्मिणी (२) सत्यभामा (३) जाम्बवती (४) लक्ष्मणा (५) सुषमा (६) गौरी (७) गांधारी और (८) पद्मा।

संसार में सौतिया डाह प्रसिद्ध है। वास्तव में पत्नी सभी कुछ सहन कर सकती है किन्तु अपनी सौत का अस्तित्व उसे सहन नहीं होता। फिर सौत का उत्कर्ष देखकर सौत के हृदय में शूल ही चुभ जाता है। यद्यपि श्रीकृष्णजी के यहाँ किसी भी रानी के लिए किसी चीज की कमी नहीं थी और कृष्णजी सबको सन्तुष्ट और प्रसन्न रखने की चेष्टा मे रत रहते थे, फिर भी उनकी पत्नियां सौतिया डाह का शिकार बनी हुई थी। खास तौर से सत्यभामा रात-दिन ईर्षा की आग में जलती रहती थीं।

रुक्मिणी असाधारण रूपश्री से सम्पन्न थी। उसके सद्गुण भी असाधारण थे। अपनी इन विशेषताओं के कारण उसने गिरधारी का मन मोह लिया था। कोई कितना ही निष्पक्ष क्यों न हो, फिर भी गुणीजनों पर उसकी विशिष्ट प्रीति हो ही जाती है। रुक्मिणी के अनुपम सद्गुण देखकर कृष्णजी उसका खूब सन्मान करते थे। उसके सद्गुणों का सौरभ चारों ओर फैला हुवा था। प्रत्येक के मुख से उनका यशोगान सुनाई पड़ता था। बेचारी सत्यभामा यह सब देख सुनकर और

अधिक कुढ़ती थी। वह दिन रात चिन्ता में डूबी रहती थी। उसके दिल का दर्द दिल में समाता नहीं था और प्रकट करे भी तो किसके आगे ? उसकी धारणा ऐसी बन गई थी मानों सभी रुक्मिणी के पक्ष में हैं और मेरा पक्ष लेने वाला कोई है ही नहीं।

उस समय कुरुजांगल देश के राजा दुर्योधन थे। दुर्योधन ने एक बार श्रीकृष्ण को एक पत्र लिखा और अपने एक कर्मचारी के साथ उसे श्रीकृष्ण के पास भेजा। कर्मचारी चलते-चलते द्वारिका आया। उसने राजा दुर्योधन का पत्र कृष्णजी के सामने उपस्थित किया। उस पत्र में दुर्योधन ने लिखा था—आपकी पटराणी और मेरी पटराणी अगर कुमार-कुमारिका को जन्म दें तो उनका आपस में विवाह-सम्बन्ध किया जाय, यह मेरी आन्तरिक अभिलाषा है। आशा है आप प्रस्ताव को प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार करेंगे।

पत्र पढ़कर कृष्णजी हर्षित हुए। उन्होंने उस पत्र के उत्तर में अपनी ओर से एक स्वीकृति सूचक प्रेमपूर्ण पत्र लिख दिया। दुर्योधन के भेजे हुए कर्मचारी का यथोचित सन्मान किया और प्रेमपूर्वक उसे विदाई दी। कर्मचारी लौटकर कुरुजांगल देश पहुँचा। दुर्योधन, कृष्णजी का प्रेमपूर्ण पत्र पाकर परम प्रसन्न हुआ। उसने हर्ष-वधावा वितरण किया।

कृष्णजी ने दुर्योधन राजा के साथ जो इकरार किया था, वह सभी को मालूम था। सत्यभामा ने यह समाचार सुना तो उसके हर्ष का पार न रहा। उसे अपने मन में निश्चय हो गया कि मैं अवश्य ही सौभाग्यशाली पुत्र को जन्म दूंगी और

मेरा कुमार दुर्योधनराज जैसे प्रतिष्ठित और महान राजा की कन्या का पाणिग्रहण करेगा ! इस बात को लेकर उसके मन में अनेक कल्पनाएं उठने लगीं। वह तरह-तरह के मंसूबे बांधने लगी। उसने अनगिनते हवाई किले खड़े कर लिये।

संसार का प्रत्येक प्राणी आशा, अभिलाषा और कल्पना के सहारे जीता है। परन्तु ऐसे भाग्यशाली कम होते हैं, जिनकी समस्त आशाएँ सफल हो जाएँ। जिन्होंने पूर्व जन्म में प्रकृष्ट पुण्य उपार्जन किया है, पर्याप्त सुकृत किया है, उनकी अभिलाषाएँ फलवती होती हैं। इसके विपरीत जो पुण्य की पूंजी लेकर नहीं आया है, उसे अन्त में निराशा का ही सामना करना पड़ता है। ऐसे लोगों का लक्ष्य करके ही कहा गया है–

उपत्द्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणां मनोरथा :।

साधारण लोक समझते हैं कि रुपया, पैसा, सोना और चांदी ही धन है और जिनके पास यह धन नहीं है, वे दारिद्र हैं। किन्तु जिन्होंने गहराई में उतर कर तत्त्व का चिन्तन किया है वे ऐसा नहीं समझते। उन ज्ञानियों की समझ सर्व-साधारण की समझ से भिन्न होती है। वे समझते है कि असली धन और वास्तविक पूंजी पुण्य ही है। जिसके पल्ले में पुण्य की प्रभूत पूंजी बँधी हुई है, रुपया, पैसा, सोना, चांदी ओर संसार का ऐश्वर्व उसके चरणों में लौटता है। पुण्यशाली पुरुष को विश्व का वैभव अनायास ही प्राप्त होता है।

पुण्य बीज है और वैभव उससे उत्पन्न होने वाला अंकुर है। बीज होगा तो अंकुर उगेगा। बीज के अभाव में हजार

प्रयत्न करने पर भी अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता। कितना ही खाद डाला जाय, कितना ही पानी सींचा जाय और चोटी से एड़ी तक पसीना क्यों न बहाया जाय, परन्तु बीज ही न होगा तो अंकुर कैसे उगेगा ? धन धान्य और जगत् का समस्त वैभव यदि अंकुर माना जाय तो पुण्य ही उन सब का बीज है। इसी से कहा है--

पुण्यवन्ता तो सब सुख पावे, पुण्य बिना कछु नाही।

जो लोग धन-धान्य आदि सुख-सामग्री प्राप्त करना चाहते हैं परन्तु पुण्य का उपार्जन नहीं करते, वे बिना बीज ही अंकुर उगाना चाहते हैं। अतएव ज्ञानी जनों का कथन है कि जिन्हें सुख और वैभव की अभिलाषा है, उन्हें पुण्योपार्जन करना चाहिए। पुण्यवानको सभी सुख प्राप्त होते हैं और पुण्य के बिना कुछ भी प्राप्त नही हो सकता।

संसार में ऐसे मनुष्यों की भी कमी नहीं है, जो सुख और वैभव पाने के लिए पाप का आचरण करने में निरत रहते है। ऐसे अज्ञानी जीवों की चेष्टा देखकर ज्ञानी जन विस्मय करते है। उनकी यह विपरीत चेष्टा करुणाजनक है। वे बीज को नष्ट करके अंकुर उगाना चाहते हैं! उन्हें सफलता किस प्रकार मिल सकती है ?

सत्यभामा अपने मन की लहरों पर नाचने लगी। उसने कितने ही मंसूबे बाँध लिये। उसने विचार किया--मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मुझे अपनी सौंतों का दिल दुखाने का अवसर मिल रहा है। मेरा कुमार जब दुर्योधनराज की कुमारी का

पाणिग्रहण करेगा तो मैं हर्ष के सागर में गोते लगाऊँगी और मेरी सौतों को विषाद के कीचड़ में फँसना पड़ेगा। उन्हें नीचा देखना पड़ेगा।

सत्यभामा फिर सोचने लगी—मेरी सब सौतों में रुक्मिणी ही प्रबल है। उसे लज्जित और अपमानित करने का अवसर चूकना उचित नहीं है। इस प्रकार सोचकर सत्यभामा ने उसी समय अपनी एक दासी को आवाज दी। दासी हाथ जोड़ आ उपस्थित हुई। बोली—क्या आज्ञा है महारानीजी ?'

सत्यभामा ने कहा—'जाओ, रुक्मिणी देवी को अभी बुला लावो'।

'जो आज्ञा' कह कर दासी रुक्मिणी देवी के महल की ओर चल दी।

: २ :

सौतिया—डाह

उस समय रुक्मिणी अपने रंगमहल में आनन्द-विनोद कर रही थी। सत्यभामा की दासी उसके पास पहुँची। उसने दोनों हाथ जोड कर और मस्तक झुकाकर नमस्कार किया।

फिर कहा—'महारानीजी आपको महारानी सत्यभामा ने याद किया है। कृपा करके उनके महल में पधारिये'।

रुक्मिणी, सत्यभामा का बुलावा पाकर उसी समय सत्यभामा के पास पहुँची। यथोचित शिष्टाचार के अनन्तर उसने पूछा—कहो बहिन ! आज किसलिए याद किया है ? सकुशल तो हो ?

सत्यभामा—सब प्रकार कुशल-मंगल ही है। मैंने आपको आज एक विशेष प्रयोजन से बुलाया है। मैं हरि और हलधर के समक्ष, आपके साथ एक होड़ करना चाहती हूँ।

रुक्मिणी—वह क्या ?

सत्यभामा—'तुम्हारा लड़का पहले ब्याहा जाय तो मैं अपना मस्तक मुंडवा कर तुम्हारे पैरों में बाल रख दूं और यदि मेरा लड़का पहले ब्याहा जाय तो तुम अपने मस्तक के बाल मेरे पैरों में रक्खो।'

रुक्मिणी—बहिन ! हम दोनों ही उच्चकुल की कन्याएं हैं और ऊंचे कुल में ब्याही गई हैं। अतएव हमारे विचार भी ऊँचे होने चाहिये हमारे व्यवहार में भी ऊँचापन होना चाहिए। तुमने जो विचार किया है, वह तुम्हे शोभा नहीं देता। तुम्हारी बेइज्जती को मै अपनी ही बेइज्जती समझती हूँ और तुम्हें भी ऐसा ही समझना चाहिए। महाराज वासुदेव की पटरानियों का हृदय क्षुद्र और संकीर्ण नहीं, उदार और विशाल होना चाहिए। अतएव मेरा परामर्श मानो तो इस दुर्विचार को त्याग दो। क्या तुम्हारा और क्या मेरा कुमार,

आखिर तो एक ही पिता की सन्तान होगा। तुम्हारे उदर से जनमा कुमार क्या मेरा नहीं होगा ? वह मुझे माता नही कहेगा ? फिर यह भेद-भाव क्यों ? इस प्रकार का भेद-भाव आगे चलकर भीषण अनर्थो की सृष्टि करेगा, भाई-भाई में विरोध की अग्नि प्रज्वलित करेगा और उस आग में हमारा कुल ही नहीं, समग्र द्वारिका भस्म हो जायगी और द्वारिकाधीश का साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।

सत्यभामा—बहिन उदारता के इस आवरण में अपनी दुर्बलता को छिपाने का प्रयास करना वृथा है। मेरी आंखें इतनी धुंधली नहीं है कि मै तुम्हारी कमजोरी को न देख सकूं। तुम्हारे और मेरे बीच की होड़ से समग्र द्वारिका और द्वारिका का विशाल साम्राज्य किस प्रकार नष्ट हो जायगा, मैं नही समझ सकती ! मै ऐसी भीरु नही हूं कि तुम्हारी इस मनोकल्पना से डर जाऊँ ! यह होड़ बदनी ही पड़ेगी।

रुक्मिणी—आपका खयाल सही नही है। निस्सन्देह आपकी आंखें धुंधली नही है, बल्कि इतनी तेज है कि जो वस्तु नही है, उसे भी देख रही हैं। मेरे अन्तःकरण में रंच मात्र भी भय नही है। मुझे तो भविष्य की चिन्ता है और इस अशोभन कृत्य के प्रति घृणा है। इसी कारण मैं इतना कह रही हुँ। मानो तो अच्छा है, नही तो होड़ बदने को भी तैयार हूँ।

रुक्मिणी सोचने लगी—श्रेष्ठ कुल की बाला के चित्त में यह निकृष्ट विचार क्यों उत्पन्न हुआ ? वह मोदक त्याग कर

खल क्यों खाना चाहती हैं ? जान पड़ता है, बुरी होनहार की प्रेरणा से ही सत्यभामा के मन में यह बुरा विचार उत्पन्न हुआ है।

सत्यभामा——तो फिर हरि और हलधर को बुलवा लिया जाय ?

रुक्मिणी——मै आपकी इच्छा पूर्ण करने को तैयार हूं।

सत्यभामा ने अपना सेवक हरि और हलधर के पास भेज दिया। उसने जाकर निवेदन किया——महाराज! महारानी सत्यभामा और रुक्मिणी के बीच होड़ बदी जा रही है। आप दोनों महानुभाव बड़ी महारानीजी के महल में पधारिए।'

बलभद्र कृष्ण और अनेक यादव परिवार के लोग, कुतुहल से प्रेरित होकर सत्यभामा के महल में आये।

सत्यभामा ने बतलाया कि हम दोनों के बीच इस प्रकार की होड़ बदी जा रही है। आप इसके साक्षी है।

बलभद्र ने रुक्मिणी से पूछा——क्यों रुक्मिणी, तुम्हें भी मंजूर है यह होड़ ?

रुक्मिणी——इस होड़ के प्रति अपनी अरुचि मैं प्रकट कर चुकी हुं। परन्तु बहिन सत्यभामा मेरी पूज्य हैं। जिसमें इनके मन को सन्तोष हो, वही मेरे लिए उचित है। जो जैसा करेगा वह वैसा भरेगा। मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है। जिसकी जैसी होनहार है, उसे वैसी ही बुद्धि सूझती है——

तादृशी जायते बुद्धिः यादृशी भवितव्यता।

अस्तु, इच्छा न होने पर भी अपनी बहिन सत्यभामा के सन्तोष के लिए मैं इस होड़ को स्वीकार करती हूं।

रुक्मिणी की शिष्टता, उदारता और विनयशीलता को देखकर वहाँ उपस्थित सभी यादव अत्यन्त प्रसन्न हुए। होड़ निश्चित हो गई। सब यादव इसी प्रसंग को लेकर बात-चीत करते-करते अपने-अपने स्थान के लिए रवाना हो गये। रुक्मिणी अपने महल में चली गई।

X X X X X

रुक्मिणी अपने महल के शयनगार में निश्चिन्तता की नींद सो रही थी। चित्त में किसी प्रकार का उद्वेग या क्षोभ नही था। उस समय बारहवें देवलोक से एक पुण्यशाली जीव अवतरित हुआ। जैसे सीप में मोती उत्पन्न होता है; उसी प्रकार वह रुक्मिणी के उदर से उत्पन्न हुआ। उस समय रुक्मिणी ने दो प्रशस्त स्वप्न देखे। पहले स्वप्न में अतीव उत्तम, जाज्वल्यमान और अलौकिक आभा से मंडित देवविमान दिखाई दिया। दूसरे स्वप्न में इन्द्र का प्रधान गजराज ऐरावत दिखलाई पड़ा। ऐरावत सजा हुआ और बहुत ही सुन्दर था। वह आकाश मार्ग से नीचे उतरता हुआ, आनन्द-क्रीड़ा करता हुआ, उबासी लेता हुआ, मुख मार्ग से उदर में प्रविष्ट हुआ। यह दोनों स्वप्न देखकर नारीमणि रुक्मिणी तत्काल जाग उठी। उसकी निद्रा भंग हो गई। चित्त में अकस्मात् आह्लाद उत्पन्न हो गया। वह उसी समय अपने शयनगार से निकल कर अपने स्वामी श्रीकृष्ण के शयनगार की ओर चली। श्रीकृष्ण के कानों में

अपनी वाणी का मधु घोलकर उसने उन्हें जगाया। कृष्ण ने उसे भद्रासन पर बिठलाया। असमय में आगमन का कारण पूछा।

रुक्मिणी ने अत्यन्त विनीत और मधुर स्वर में अपने स्वप्नों का विवरण सुनाया। तब कृष्ण मुरारि ने, स्वप्नों का फल निर्धारित करके कहा–'प्रिये! तुमने प्रशस्त और शुभ स्वप्न देखा है। यह स्वप्न सूचित करता है कि तुम्हें एक पुण्यशाली पुत्र की प्राप्ति होगी। पुत्र यादव-कुल का तिलक होगा, पुरुषों में महान होगा और तुम्हारे यश का विस्तार करेगा'।

रुक्मिणी अपने स्वप्न का फल सुनकर अत्यन्त हर्षित हुई। उसने यथा योग्य प्रिय आलाप-संलाप किया और फिर अपने महल में लौट आई। रुक्मिणी ने शेष रात्रि जागते-जागते ही व्यतित की।

इन दिनों देवी रुक्मिणी गर्भवती थी। गर्भवती नारी को आहार-विहार का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। अधिक खट्टा, अधिक मीठा और अधिक चरपरा भोजन करने से गर्भ को हानि पहुंचती है। अत्यधिक श्रम करने से भी गर्भ को पीड़ा होती है। चिन्ता, शोक आदि मानसिक उद्वेग गर्भ के लिए विष के समान है। रुक्मिणी इन सब बातों से बचती हुई। अपने गर्भ को, प्राणों से अधिक प्रिय समझती हुई, सब प्रकार के अपथ्य आहार-विहार से बचती हुई और मन को प्रसन्न रखती हुई गर्भ का प्रतिपालन करने लगी।

उधर रानी सत्यभामा भी अपनी सुख शय्या पर शयन कर रही थी। उसके उदर में भी, स्वर्ग से आकर एक पुण्यशील प्राणी ने प्रवेश किया। उस समय सत्यभामा ने स्वप्न में सूर्य को देखा; किन्तु वह सूर्य कुछ-कुछ बादलों से घिरा हुआ था। रुक्मिणी की भांति सत्यभामा भी कृष्ण के पास पहुंची। कृष्णजी ने उसके स्वप्न का हाल सुनकर हर्षपूर्वक कहा— 'प्रिये! तुमने शुभस्वप्न देखा है। तुम सूर्य के समान प्रतापशाली पुत्र का प्रसव करोगी। तुम्हारा बालक कुल का दीपक और कुल के लिये चन्द्रमा के समान होगा।'

फल-निर्देश सुनकर सत्यभामा को परम आनन्द हुआ। उसे उसी समय होड़ का स्मरण हो आया। मन ही मन सोचने लगी-बस, अब क्या है! मैं होड में विजयनी होकर संसार में अमर यश की भागिनी बनूंगी। वह सोचने लगी-कब मेरा लाल जनमे, कब उसका विवाह करूं और कब अपनी सौत के माथे के बाल अपने चरणों में पड़े देखूं।

: ३ :

अपहरण

पुण्यप्रतिमा रुक्मिणी प्रतिदिन, बड़ी ही सावधानी के साथ अपने गर्भ की प्रतिपालना कर रही थी। पुण्य के उदय से अन्य

सामान्य नारियों की तरह उसके उदर की वृद्धि नहीं हुई थी। उसके उदर की त्रिवली ज्यों की त्यों दृष्टिगोचर होती थी। यह हाल देखकर रुक्मिणी की सौंते तरह-तरह की शंकाएं किया करती थी। सत्यभामा सोचती थी रुक्मिणी झूठी है। झूठमूठ ही अपने को गर्भिणी प्रकट कर रही है। उसे अपने मस्तक के बाल कट जाने का भय है और स्वामी की ओर से अपमानित होने की आशंका है। इसी भय और आशंका के कारण उसने गर्भवती होने का प्रपंच रच डाला है! सचमुच गर्भवती होती तो क्या उदर जैसे का तैसा बना रहता? कदापि नहीं। निस्सन्देह रुक्मिणी ढोंग कर रही है।

अपनी सौतों की और खास तौर पर सत्यभामा की यह आशंका रुक्मिणी से छिपी नहीं रही। परन्तु उसे किसी बात की चिन्ता नहीं थी वह सोचती थी-साँच को आँच कहां? सत्य उस प्रकार तेजोमय सूर्य के सदृश है, जो भ्रम के काले अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर देता है। समय पर सूर्य का उदय होगा, प्रकाश की निर्मल रश्मियाँ जगतीतल पर बिखरेगी और कु:शंकाओं का अन्धकार, पता नहीं किधर विलीन हो जायगा। ऐसी स्थिति मे मुझे चिन्ता क्यों करनी चाहिए? प्रत्येक व्यक्ति की अपेक्षा सत्य अधिक शक्तिशाली है। वह जब मेरी रक्षा करने को तत्पर है तो मुझे प्रतिकार करने की आवश्यकताही क्या है? इस प्रकार सोचकर रुक्मिणी निश्चित भाव से अपने गर्भ की रक्षा करती थी। हाँ, कोई पूछता तो उसे सच बात बतला दिया करती थी। मानना या न मानना उसकी इच्छा पर निर्भर था।

धीरे-धीरे नौ मास और सात दिन व्यतीत हो गये। प्रसव का समय सन्निकट आ पहुंचा। तब रात्रि के समय शुभ तिथि, शुभ लग्न, शुभ ग्रह, शुभ नक्षत्र और शुभ योग में अनुपम तेजस्वी पुत्र-रत्न का जन्म हुआ। जन्मकाल में ही बालक का तेज इतना प्रखर था कि रात्रि के समय में भी रुक्मिणी का भवन एक बार प्रकाशमय हो उठा। ऐसा जान पड़ा कि आकाश में ही सूर्य उदित हो गया है। अपने नवजात शिशु का ऐसा अनुपम तेज देखकर और उसके भविष्य की उज्ज्वल कल्पना करके माता को कितना हर्ष हुआ, यह अनुमान करना कठिन हैं! वस्तुतः ऐसे असाधारण शिशु की सौभाग्यशालिनी माता ही रुक्मिणी के हर्ष का अनुमान लगा सकती है।

रुक्मिणी का सेवक हर्ष के साथ, बधाई देने के लिए कृष्णजी के पास पहुंचा। कृष्णजी उस समय शयन कर रहे थे। सेवक को साहस नहीं हुआ कि वह उन्हें जगाकर बधाई दे! उसके हृदय में गुदगुदी चल रही थी मगर कृष्णजी को जगाना टेढी खीर थी। अतएव वह सेवक सरल भाव से उनके पांयते-पैरों की ओर-बैठ गया और उनके जगने की प्रतीक्षा करने लगा।

संयोगवश उसी समय सत्यभामा ने भी अतिशय प्रिय पुत्र को जन्म दिया। उसका सेवक भी बधाई देने के लिए श्रीकृष्ण के पास पहुंचा। जब वह पहुंचा तो उसने रुक्मिणी के सेवक को पांयते बैठा देखा। उसे देखकर वह सोच-विचार

करने लगा। आखिर सत्यभामा के सेवक ने सोचा- मैं बड़ी रानी का सेवक हूं और जन्म की बधाई लेकर आया हूँ। मैं इस समय पाँयते क्यों बैठूं? यह बैठा है तो भले बैठा रहे। मेरा दर्जा इससे ऊंचा है। मै तो सिरहाने की तरफ बैठूंगा। इस प्रकार अहंकार के वशीभूत होकर वह श्रीकृष्णजी के सिरहाने की तरफ बैठ गया।

जैसे स्वामी वैसा सेवक! जिस स्वामी की जैसी बुद्धि और भावना होती है, उसके सेवक की बुद्धि और भावना भी वैसी ही हो जाती हैं। इस कथन के सचाई की परीक्षा करने के लिये दोनों रानियों के दोनों सेवकों को ही लीजिए। रुक्मिणी का सेवक कितना सरल और निरहंकार है और सत्यभामा का सेवक अहंकार में चूर हो रहा है।

थोडे समय की प्रतीक्षा के पश्चात् द्वारिकाधीश की निद्रा भंग हुई। ज्यों ही वह जागकर अपनी शय्या पर बैठे, उनकी दृष्टि रुक्मिणी देवी के सेवक पर पड़ी। 'महाराज की जय हो, विजय हो' कहकर उसने पुत्र जन्म की बधाई दी। कहा-"पृथ्वीनाथ! महारानी रुक्मिणी देवी ने पुत्र रत्न को जन्म दिया है। इस महान् आनन्दजनक अवसर पर यह दास आपको हार्दिक बधाइयां अर्पित करने के लिये उपस्थित हुआ है।"

यदुनाथ यह बधाई सुनकर प्रसन्न हुए। उन्होंने राज-चिन्ह मुकुट के सिवाय अपने अंग के समस्त आभूषण उतारकर सेवक को दे दिये। अन्यान्य वस्तुएं भी जो बहुत सुन्दर और अनुपम

थी, उसे भेंट में दे दी। जन्म जन्मान्तर की दरिद्रता दूर कर देने वाली बहुमूल्य वस्तुएं पाकर और वह भी महाराज श्रीकृष्ण के वरद हाथों से पाकर, रुक्मिणी का सेवक निहाल हो गया।

रुक्मिणी के सेवक के चले जाने पश्चात कृष्णजी की दृष्टि सिरहाने की ओर खड़े हुए सत्यभामा के सेवक पर पड़ी। दृष्टि पड़ते ही वह उठ खड़ा हुआ। बोला—"बधाई है नरनाथ, पटरानी सत्यभामा ने पुत्र रत्न का प्रसव किया है! महाराज, यह श्रेयस्कर बधाई स्वीकार कीजिए।"

श्रीकृष्ण यह दोहरी बधाई सुनकर अतीव प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी समय भंडारी को बुलवाकर और भंडार खुलवाकर उस सेवक को भी पर्याप्त पारितोषक दिया।

सत्यभामा के सेवक को यद्यपि पर्याप्त पुरस्कार मिला था, फिर भी उसे सन्तोष नही हुआ। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो मक्खन-मक्खन रुक्मिणी का सेवक ले गया है और छाछ मेरे पल्ले पडी है! वह मन में कुढ़ गया, जल-भुन गया। यद्यपि श्रीकृष्णजी के मन में कोई पक्षपात का भाव नही था, वह अपने अहंकार के ही कारण पिछड़ गया था, फिर भी क्षुद्र पुरुष अपना दोष नही देखता और दूसरों मे दोष की कल्पना करता है। वह अपनी मूर्खता के लिए कृष्णजी को दोषी समझने लगा उनमे पक्षपात का आरोप करने लगा। सत्यभामा के पास जाकर उसने चुगली खाई। बोला—आपके स्वामी के हृदय मे पक्षपात है। वे रुक्मिणी पर अधिक प्रीति रखते

हैं ! इसी कारण उन्होंने पहले रुक्मिणी रानी के सेवक को पुरस्कार दिया। अपने अंगों के समस्त आभूषण उतार कर उसे दे दिये। उसे दे चुकने के बाद, भंडारी के हाथ से मुझे थोडा सा पुरस्कार दिलवाया है ! आपकी कृपा है तो मुझे किसी चीज की कमी नही है। मै अपने लिए यह बात नही कर रहा हूं। मगर रुक्मिणी रानी को अधिक चाहना और आपको कम चाहना, यह मेरे लिए असह्य है।

अपने सेवक की बात सुनकर सत्यभामा खीझ उठी। वह देर तक बडबडाती रही। फिर उसने बलदेवजी को बुलवाकर कृष्णजी की शिकायत करते हुए सब वृतान्त सुनाया।

बलदेवजी ने यथोचित आश्वासन दिया। वे कृष्ण के पास आये और इस सम्बन्ध मे पूछताछ की। कृष्ण ने जब यथार्थ बात प्रकट की तो बलदेवजी मौन रह गये। वे समझगये कि सत्यभामा के दिल मे द्वेषका दावानल भडक रहा है।

दरिद्र के घर पुत्र-जन्म होता है तो उसकी प्रसन्नता का पार नही रहता। वह भी अपने सामर्थ्य और सामग्री के अनुरूप उत्सव मना कर अपनी आन्तरिक प्रसन्नता को प्रगट करता है। फिर यहाँ तो अर्धचक्रवर्ती-तीन खण्ड के राजा, महाराज श्रीकृष्ण के घर पुत्र-जन्म हुआ था। इस पर भी एक नही, दो पुत्रों का—शुभ लक्षणों से सम्पन्न पुण्यशाली और तेजस्वी पुत्रों का जन्म हुआ था। ऐसी स्थिती में श्रीकृष्ण ने जो महान् उत्सव मनाया होगा, उसका वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है ! उन्होंने अपने सेवकों को उदार उत्सव मनाने

की आज्ञा दी। पुत्र-जन्म के उपलक्ष्य में सम्पूर्ण द्वारिका नगरी सिंगारी गई। स्थान-स्थान पर सुन्दर मण्डप बनाये गये। द्वार-द्वार पर वन्दनवार बांधे गये। ध्वजा-पताकाएँ लहराने लगी। घर-घर मंगल-गान होने लगे। द्वारिका की समस्त प्रजा हर्ष से मतवाली हो गई। आठ दिन के लिए सब प्रकार के कर छोड़ दिये गये।

सत्यभामा और रुक्मिणी के महलों में यादव-परिवार के लोग जमा हो गए। नृत्य और गान होने लगा। सब लोग परस्पर मिष्ठान्न का वितरण करने लगे। सब हर्ष से विभोर हो गये।

याचकों को मनचाहा दान दिया जाने लगा। धन, वस्त्र और आभूषण, जिसने जो चाहा उसे वही मिला। ढोल, नगाड़े, तासक, शहनाई, झालर, घन्टा आदि-आदि बाजे बजने लगे। बाजों की ध्वनि मे आकाश-मण्डल गूंजने लगा। सर्वत्र जय-जयकार की ध्वनि दिग्-दिगन्तों को प्रतिध्वनित करने लगी। सारी द्वारिका उत्सव के रंग में डूब गई। सर्वत्र आनन्द-विनोद, हास-परिहास, प्रसन्नता, उत्साह और स्फूर्ति का मानों नाच होने लगा। सब ने अपनी-अपनी हवस पूरी की।

ज्ञानी जनों का कथन है कि हर्ष और विषाद साथी हैं। जहाँ हर्ष होगा वहाँ विषाद भी आये बिना नहीं रहेगा। जो मनुष्य अनुकूल इष्ट-संयोग पाकर हर्ष की हिलोरों पर नाच रहा है, उसे विषाद के विकराल अन्धकार में विमग्न होना ही पड़ेगा। इसका कारण संसार की अनित्यता है। इष्ट का संयोग

स्थायी नही रहता। पर-पदार्थों का सम्पर्क बिछुड़ने के लिए ही होता है। यों देखा जाय तो भी जगत् स्वभावतः पविर्तनशील है। कहा भी है:—

लहरें लोल जलधि है अपनी जहाँ आज लहराता।
हा! संसार मरुस्थल उसको थोड़े दिन मे पाता।।
मनहर कानन में सौरभमय सुन्दर सुमन खिले है।
आँधी के हलके झोंके से अब वे, धूल मिले हैं।।

जब सागर की जगह मरुभूमि और मरुभूमि की जगह सागर बन जाता है तो हर्ष के वातावरण की जगह विषाद का वायुमण्डल होते कितना विलम्ब लग सकता है?

जड़ जगत् चेतन के प्रभाव से प्रभावित होकर और नैसर्गिक परिवर्तन के विषम चक्र में घूमकर पलटता रहता है। उसी प्रकार चेतन जगत् भी जड़ के प्रवल प्रभाव से परिर्वतित होता दिखाई देता है। कर्म जड़ है और अत्यन्त प्रवल है। किसी संसारी जीव की शक्ती नही जो उन के फल से छुटकारा पासके। वे क्षण भर में रंग में भंग कर देते है, पल भर में हँसते को रुला देते हैं!

रुक्मिणी को वाहरी भय नहीं था। किसकी मजाल जो वासुदेव के रनवास में प्रवेश करने का साहस कर सके? फिर भी वह एकदम निर्भय नहीं थी। उसे अपनी सौतों से निरन्तर भय वना रहता था। इसी कारण उसने अपने महल के द्वार पर महान वीर योद्धाओं का सशस्त्र पहरा विठवा दिया था।

पहरेदार नंगी तलवारें लिये प्रतिक्षण सजग और सावधान रहते थे।

इस प्रकार पांच दिन व्यतीत हो गये। छठ्ठे दिन का सूर्य उदित हुआ और शीघ्र ही अस्त भी हो गया, क्योंकि वह रुक्मिणी के घोर दुःख को देखना नही चाहता था।

रात्रि हो चुकी थी। चहुँ ओर घनघोर तिमिर व्याप्त था। यथासमय वासुदेव सुखपूर्वक शयन करने लगे। निश्चिन्त रुक्मिणी भी निद्रा के अधीन हो गई। उसी समय अशुभ कर्म के उदय मे उसके नवजात शिशु का अपहरण करने वाला कौन था, कब और किसी प्रकार उसने महल में प्रवेश किया और किधर से कैसे शिशु को उडा ले गया! ये प्रश्न सबके सामने प्रश्न ही बने रह गये। कोई भी इनका उत्तर देने में समर्थ नहीं हो सका।

: ४ :

आत्म-निरिक्षण

——xxxxx——
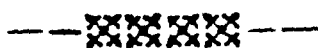
शिशु का अपहरण होने के अनन्तर जब रुक्मिणी की नींद खुली तो उसने देखा कि वालक उसके पास नही है। इधर-उधर दृष्टी दौड़ाने पर भी जब वालक कहीं भी नजर न आया

तो उसके हृदय मे शोक और सन्ताप की भयानक ज्वालाएँ दहकने लगीं। वह तत्काल मूर्छित होकर धड़ाम से धरती पर गिर पड़ी !

रुक्मिणी के गिरते ही उसकी दासियाँ चौंक-चौंक कर उठ बैठी। उन्होंने बालक को न देखकर महारानी की मूर्छा का कारण समझ लिया। तत्काल शीतोपचार करने, मुख पर पानी छिड़कने और ठण्डी हवा करने से उसे होश आया। मगर चित्त में पीड़ा इतनी उग्र ओर गहरी थी कि वह फिर मूर्छित हो गई। पुत्र का वियोग उसे ऐसी वेदना पहुँचा रहा था मानों मर्मस्थान में भाला भौंक दिया गया हो। दोबारा होश में आने पर भी उसे शान्ति नही थी। हाय लाल ! ऐ मेरे कलेजे के टुकड़े, तुम कहाँ हो ! ऐसे-ऐसे शोकपूर्ण वचन कहकर रुक्मिणी माथा और छाती कूटने लगी। उसका अंग-अंग वियोग की आग में जलने लगा।

रुक्मिणी विलाप करती हुई कहती है 'हा दैव ! तू ने यह क्या किया? तुझे रंच मात्र भी दया न आई? मेरे लाडले लाल को कहाँ छिपा लिया है? वह मेरी आँखों का तारा, मेरे प्राणों का प्राण कहाँ है ?

हे लाल ! तू कितना सुकुमार और सुन्दर था ! क्या तेरा हृदय तेरे शरीर के बराबर भी कोमल नहीं था ! फिर इस अभागिनी माता पर तरस क्यों न आया ? तू अपनी माता को झूरती छोड़कर कहाँ चल दिया ? अथवा किस निर्दय, हृदयहीन ने तुझे मुझसे अलग कर दिया ! अहा !

किसी वैरी ने यह कहतुत की है ? कौन है वह पिशाच, जिसने मेरा कलेजा निकाल डाला ! हाय, किसने रंग में भंग कर दिया !

अरे, में कितने भ्रम में डूबी ! मैं मानती थी कि इस संसार में मुझसे ज्यादा सुखी और कोई नही है ! मगर आज वही सुख, दुःख बनकर पहाड़ की तरह मेरे मस्तक पर आ पड़ा है ! दुःख के इस पहाड़ को मै कैसे सहारूँ ?

हे वत्स ! इस जगत् में तुझसे अधिक प्रिय मेरे लिए कौन है ? आज तुझे देखने के लिये दिल तरस रहा है ! आँखें फड़-फड़ा रही हैं। जल के अभाव में मछली की भांति मेरे प्राण तड़फ रहे हैं।

हाय ! मुझसे अच्छी तो वह पक्षिणी है, वह भाग्यशालिनी है, जिसकी आंखों के सामने उसका अंगजात मौजूद रहता है ! जो चुग्गा ला-लाकर अपने बच्चे का पेट पालती है ! मेरा मनुष्य जीवन किस काम का ? धिक्कार है मेरे नारी जीवन को !

मै अपनी माता के गर्भ में ही गल गई होती तो आज यह दारुण मनोवेदना न भोगनी पड़ती। दैव ने मुझें पालना तोड़कर या किसी रोग से आक्रान्त करके मारडाला होता तो कितना उत्तम होता ! क्यों में जीवित रही ? क्यों वासुदेव की पटरानी कहलाई ? क्यों मैंने ऐसे सुन्दर, सुकोमल कुमार को अपनी कूंख से जन्म दिया ? वह तो चार दिन आनन्द

कर गया और मुझे जिन्दगी भर के लिए दुःख के फन्दे में फंसा गया।

मैं कितनी मूर्ख हूं कि सत्यभामाजी से होड़ लगाने चली! मैंने अपने दुर्भाग्य की कल्पना ही नही की! आह मेरा कोई भी तो मनोरथ पूरा नही हुआ!

मुझे यह दुस्सह वेदना क्यों सहनी पड़ी? पूर्व जन्म में मैंने ऐसा क्या पाप किया था? मैंने पृथ्वी फोड़ी थी? सरोवर का जल सुखाया था और जलचरों को तड़फड़ाने का अवसर दिया था? क्या मैंने बन में आग लगाई थी? अनछना पानी काम में लिया था? पानी डाल कर आग बुझाई थी? हरियाली को कुचला था? अंकुर तोड़े थे? किस कारण मेरा भाग्य फूटा?

क्या मैंने अपनी लापरवाही से पहले अनाज धुनने दिया और फिर उसे तेज धूप में डाला था? तनिक भी यातना का खयाल नही रखा था? निर्दय होकर अभक्ष्य भोजन राँधा और खाया था? क्या अनाज के साथ जीव-जन्तुओं को भी पीस डाला था? मैंने सिर में पैदा हुइ जूंओं और लीखों की निर्दय भाव से हत्या की थी? रात को गोबर इकठ्ठा करके रक्खा था? कीड़ियों के अंडे फोड़े थे? उदेई का घर तोड़ा था? क्या मैंने ऐसा कोई कर्म किया था?

हिरण, बकरी, तोता, चिड़िया आदि की माता से उसके बालक का विछोह करने का कारण बनी थी? मैंने जलचरों

को पकड़ कर पकाया था ? आह ! किस कुकर्म के कारण मुझे यह कष्ट भुगतना पड़ा है ?

क्या मैंने किसी के मर्म का उद्घाटन किया था ? मिथ्या भाषण किया था ? किसी को झूठा कलंक लगाया था ? किसी की धरोवार पचा ली थी ? निन्दा या चुगली की थी ? किसी की प्यारी वस्तु चुराई या छिपाई थी ? सती का शील भंग किया था ? व्यभिचारी की दलाली की थी ? क्रोध करके किसी को पीड़ा पहुंचाई थी ? अहंकार किया था ? मायाचार करके किसी को ठगा था ? अमर्याद ममता की थी ? कौन सा पाप किया था मैंने !

क्या मैंने अपने पुत्र पर राग और दूसरे के पुत्र पर द्वेष किया था ? कपट के साथ झूठ बोला था ? क्या मैंने अपने परिवार में क्लेश बढ़ाया था ? त्रस जीवों का घात किया था ? किसी लूले-लंगड़े और बुद्धिहीन का उपहास किया था ? साधुजन की निन्दा अथवा हँसी की थी ? किसी धर्मात्मा या तपस्वी का तिरस्कार किया था ? कसाई आदि घोर कृत्य करने वालों के साथ लेने-देन का व्यवहार करके उन्हें सहाय पहुँचाई थी ? आखिर किस पाप कर्म का यह दुष्फल मुझे भुगतना पड़ रहा है ? मेरी विपत्ति का कारण मैं स्वयं हूँ । मैंने ही कोई चाण्डाल कृत्य किया होगा ।

रुक्मिणी इस प्रकार कह-कह कर करुणा जनक रुदन करने लगी । उसकी हालत पगली की जैसी हो गई । पल में रोती और पल मे झरोखे की तरफ दौड़कर जाती और दूर

तक दृष्टि दौड़ाती कि किसी ओर से आकर मेरा लाड़ला लाल दिखाई पड़ जाय ! शोक के आवेग में उसे यह खयाल नही था कि पाँच दिन का शिशु किस प्रकार आ-जा सकता है ! जब शिशु किसी और नजर न आता तो फिर मूर्छित हो जाती थी ! थोड़ी देर में सावचेत होती तो फिर विलाप करनें लगते थी।

उस समय रुक्मिणी की हालत बड़ी ही दयनीय हो गई थी। उसके अपार दुख में सभी दुखी हो रहे थे। परन्तु किसी के पास कोई इलाज नही था ! किसी की समझ में नही आता था कि यह दुर्घटना किस प्रकार घटी और कैसे इसका प्रतिकार किया जाय !

रुक्मिणी के महल में भयानक कोलाहल मच गया। श्रीकृष्ण उस कोलाहल को सुनकर शीघ्रता के साथ वहां आ पहुंचे। जब शिशु के अपहरण की उन्हें मालूम हुई तो उनके दिल में भी ज्वालाएं उठने लगी ! रोष में आकर उन्होंने कहा—'किस अप्रार्थित के प्रार्थी अर्थात् अनिष्ट की कामना करने वाले ने यह दुस्साहस किया है ? किसे इतनीं बड़ी ढिठाई की हिम्मत हो सकी है ?'

आखिर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को तसल्ली देते हुए कहा—' प्रिये ! तुम तनिक भी शोक मत करो। मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि कुमार शीघ्र ही मिल सके। तुम्हारा दुख, मेरा ही दुख है और उसे दूर करने का कोई भी उपाय नही छोड़ा जायगा।

इस प्रकार सान्त्वना देकर कृष्णजी ने चारों ओर सवार और पैदल सैनिक दौड़ाये। राजमहलों से लेकर द्वारिका की प्रत्येक झोंपड़ी छनवा डाली, पर कुमार का कही पता नही चला ! वह कपूर की तरह गायव हो गया !

रुक्मिणी का भवन सुना हो गया। उसे पल भी चैन नही। अन्तर्दाह की मारी बिलबिलाने लगी। उसके चेहरे पर और उसकी वाणी में भी दीनता आ गई !

रानी सत्यभामा को जव यह संवाद मिला तो उसके हर्ष का पार न रहा। वह सोचने लगी-चलो, साँप भी मर गया और लाठी भी नही टूटी। अनायास ही मेरा मनोरथ पूरा हो गया। अव मैं अपने कुमार का विवाह करके रुक्मिणी का माथा मुंड़वाऊंगी और अपनी साध पूरी करूँगी।

अहा ! कर्म की गति कितनी विचित्र है ! एक घर में हर्ष और दुसरे मे विषाद हो रहा है ! संसार बड़ा ही विषम है !

: ५ :
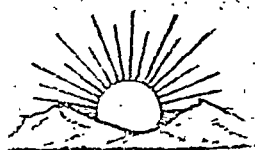
अन्वेषण

इसी अवसर पर द्वारिका में नारदजी का पदार्पण हुआ। नारदजी बड़े ही सत्यवान्, पक्के ब्रह्मचारी, गुणवान तथा विद्याओं और करामातों मे पूरे थे। पुण्यवानों को सुख उपजाना ही उनका काम था। पृथ्वी और आकाश उनके लिए समान था। देश-देश में घूमना फिरना ही उनका काम था। भारत के इतिहास मे नारद के समान घुमक्कड़ व्यक्ति दूसरा नही मिल सकता। नाना प्रकार के कौतुक करना उनके बायें हाथ का खेल था। पानी में आग लगा देने—लड़ाई-झगड़ा करा देने की विद्या में वे अत्यन्त निष्णात थे। फिर भी उनका व्यक्तित्व बहुत ऊँचा था। वे मुनि की पदवी से विभूषित थे। उस समय के समस्त नृपतिगण उनका सन्मान करते थे। वे दुखियों का दुःख दूर करने में कुछ भी कसर नहीं रखते थे।

घूमते-घूमते वे द्वारिका नगरी मे पधारे और सीधे कृष्णजी के रनवास मे पहुंचे। उनके आने-जाने में कोई रुकावट

नही थी। वे सभी के पूर्ण विश्वास-भाजन थे। अतएव निःसंकोच भाव से वे रुक्मिणी के महल में चले गये। कृष्णजी उस समय वही मौजूद थे।

नारदजी को आते देख कृष्णजी ने उनका यथोचित सत्कार किया। रुक्मिणी ने भी उन्हें वंदन किया। उसके हृदय में घोर दुःख था और नेत्रों से आँसुओं की धारा प्रवाहित हो रही थी। रुक्मिणी का यह हाल देखकर नारदजी बोले—सदैव फूल की भांति खिली रहने वाली रुक्मिणी आज मुरझाई हुई और शोकसन्तप्त क्यों दृष्टिगोचर हो रही है?

रुक्मिणी के मुख से बोल नही निकल सका। उसका हृदय गद्गद् हो आया। कृष्णजी ने कुमार के अकस्मात अपहरण का वृत्तान्त सुनाया।

नारदजी बोले—बेटी, तू चिन्ता मत कर। तेरे लिए किस चीज की कमी है? तीन खण्ड के नाथ जिसके स्वामी है, उसे चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? देख मै जो कहता हूं उसमे लेशमात्र भी शंका को स्थान नही है। वासुदेव का पुत्र कदापि अधूरी आयु में नहीं मर सकता! मेरा खयाल है की यह मनुष्य का नही, देव का काम है। मनुष्य का इतना हौसला हो ही नही सकता। पूर्वभव के वैर के कारण किसी देवता ने ही कुमार का अपहरण किया है। बेटी, तू निश्चिन्त रह। मै अपनी कला के प्रभाव से, थोड़े ही दिनों मे तेरे शिशु का मिलाप करा दूंगा। न करा सका तो मेरा नाम नारद नही! इस घटना से तेरी सौतों को जितना हर्ष हुआ है, उतना

ही उन्हें विषाद भी भुगतना होगा। मेरा इन वचनों की सत्यता मे तनिक भी अन्तर नहीं पड़ सकता।

इस प्रकार आश्वासन देकर नारदजी आकाश मार्ग से चल पड़े। एक स्थान पर अधिक देर ठहरना उन्हे रुचता ही नहीं था। फिर इस समय तो उन्होने अपने सिर पर एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व भी ले लिया था। द्वारिका से चलकर वे पृथ्वी पर, पर्वतों मे, पहाड़ों मे और समुद्र मे—सर्वत्र अपहृत कुमार की खोज करने मे भिड़ गये; पर कुमार का कहीं पता नहीं लगा। अन्त में वे मेरु पर्वत पर पहुंचे और वहां से विदेह क्षेत्र मे चले गये। विदेह क्षेत्र मे श्रीसीमन्धर स्वामी के दर्शन पाकर अत्यन्त हर्षित हुए।

नारदजी ने सीमन्धर स्वामी की तीन प्रदक्षिणा करके, पंचांग नमाकर उन्हें वन्दना की। तीर्थंकर देव के साक्षात् दर्शन करके अपना जीवन धन्य समझा। तीर्थंकर देव का धर्मोपदेश सुनने के लिए वहाँ महती परिषद एकत्र हुई। वहां का चक्रवर्ती भी आया। उसने एक जगह नारद को खड़ा देखा। उसे बड़ा कुतूहल हुआ। कहां तो विदेह के मनुष्यों की पाँच सौ धनुष की काया और कहां नारद का उनके मुकाबिले में छोटासा शरीर! नारदजी ऐसे जान पड़ते थे जैसे नर के आकार के छोटे-से कीट हो।

जैसे मनुष्य कीड़े को हथेली पर उठा लेता है, उसी प्रकार चक्रवर्ती ने नारद मुनि को अपनी हथेलीपर रख लिया। वह नारदजी को चकित भाव से, बड़े गौर के साथ देखने लगा।

कहने लगा—यह अनोखा प्राणी कौन है और किस क्षेत्र का है? इसकी छोटी-सीं काया बड़ी ही सुहावनी लगती है !

अपने कुतुहल को शान्त करने के लिए चक्रवर्ती ने, तीर्थंकर भगवान से पूछा-प्रभो ! इस जन्तु का वृत्तान्त बताने की कृपा कीजिए ?

तीर्थंकर ने फरमाया—चक्रवर्त्तिन् ! यह जन्तु नहीं, मनुष्य ही है, मनुष्य भी साधारण नही, भरतक्षेत्र के नारद मुनि है। यह शीलवान, विद्यावान् और गुणवान् है। द्वारिका नगर से यहां आये हैं! द्वारिका के अधिपति वासुदेव श्रीकृष्ण हैं। उनकी पटरानी रुक्मिणी के ऊपर इनकी प्रीति है। इन्हीं ने श्रीकृष्ण के साथ उसका विवाह कराया था।

इस प्रकार रुक्मिणी और सत्यभामा की होड़ से लेकर कुमार के अपहरण तक का समस्त वृत्तान्त सुनाकर अन्त में सीमन्धर स्वामी ने कहा-नारदजी ने अपहृत कुमार को खोज निकालने की प्रतिज्ञा की है, परन्तु उसका कहीं पता न पानेसे यहां आये है। यहां मुझसे पूछकर पता लगाना चाहते हैं।

तीर्थंकर भगवान की यह वाणी सुनकर चक्रवर्ती ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—देवाधिदेव ! यह वृत्तान्त सुनने के लिए मेरे मन में भी बड़ी उत्कंठा उत्पन्न हुई है। उस नवजात कुमार का अपहरण किसने किया है? किस कारण से किया है? और वह कुमार अब वहाँ और किस हालत मे हैं? उसका अपने माता-पिता से संगम होगा या नहीं? होगा तो कितने

समय के पश्चात् होगा ? माता और पुत्र के इस विछोह का कारण क्या है ? हे प्रभो ! अनुग्रह करके मेरा संशय निवारण कीजिए । इस वृत्तान्त को सुनकर जनता पाप-कर्म के बन्ध से भयभीत होगी । जगत का महान् कल्याण होगा ।

: ६ :

अपहरण का कारण

तीर्थंकर भगवान ने अपनी मेघ-गम्भीर ध्वनि में कहना आरम्भ किया-चक्रवर्त्तिन् ! सुनो । और नारद ! तुम भी सुनो । संसारी जीव किस प्रकार कर्मों का बन्ध करता है और किस प्रकार उनका फल उसे भुगतना पड़ता है, यह मैं तुम्हे सुनाता हूं ।

कौशल नगर के राजा का नाम पद्मनाभ था । धारिणी उसकी रानी थी । राजा और रानी दोनों उत्तम गुणों से विभूषित थे । एक बार धारिणी राणी के उदर में, स्वर्ग से च्युत होकर दो जीवों ने प्रवेश किया । यथा समय युगल के रूप में उनका जन्म हुआ । बड़े का नाम मधु और छोटे का नाम कैटभ रखा गया । दोनों भाई भाग्यवान थे । बाल्यावस्था मे उन्होने विद्या और कलाओं में कुशलता प्राप्त की ।

जब उन्होंने यौवन मे प्रवेश किया तो अनुरूप कन्याओं के साथ उनका विवाह हुआ। दोनों राजकुमार राजसी वैभव को भोगते हुए सुख में अपना समय व्यतीत करने लगे।

कुछ समय के अनन्तर राजा पद्मनाभ के अन्तःकरण में विरक्ति जागृत हुई। प्राचीन काल के राजा अपने जीवन के अन्तिम श्वास तक भोगोपभोगों मे नही फसें रहते थे। संसार-व्यवहार के अनन्तर वे आत्मा के कल्याण के हेतु संयम ग्रहण कर लेते थे। अणगार वृत्ति अंगीकार करके तपोमय जीवन यापन करते हुए शम, दम, नियम के साथ अपना अन्तिम जीवन सफल बनाते थे। राजा पद्मनाभ ने भी यही विचार किया। अपने ज्येष्ठ पुत्र मधु को राज्य देकर और लघुपुत्र कैटभ को युवराज पद देकर उन्होंने दीक्षा धारण कर ली। मुनि बनकर पद्मनाभ ने खूब ज्ञान-ध्यान किया, उग्र तपश्चरण किया। अल्प काल में ही उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई।

मधु और कैटभ बड़े तेजस्वी थे। दोनों की जोड़ी बड़ी सुहावनी थी। ऐसे लगते जैसे सूर्य और चन्द्रमा हो! दोनों बलशाली थे और परस्पर प्रीति पूर्वक रहते थे।

एकबार नगर मे कोलाहल सुनकर मधु ने अपने सेवक से कारण पूछा। सेवक ने बताया—राजा भीमसेन अपनी फौज लेकर नगर के बाहर खड़ा है। जो मनुष्य नगर के बाहर जाता है उसे लूट लेता है, और अपने राज्य में ले जाता है। उसके त्रास से प्रजा परेशान है!

भीमसेन के दुस्साहस की बात सुनकर राजा मधु को बहुत क्रोध आया। उसने उसी समय सेना को तैयार होने का आदेश दिया। सेना सजाकर उसने शत्रु पर हमला कर दिया। पृथ्वी को थर्राता हुआ और दुश्मन के दिल को दहलाता हुआ मधुराज, ज्यों ही भीमसेन का सामना करने चला, भीमसेन भाग खड़ा हुआ। मगर मधुराज सहज ही उसका पिण्ड छोड़ने वाला नही था। उसने भीमसेन का पीछा किया। आगे-आगे भीमसेन भागा जा रहा था और पिछे-पिछे मधु चल रहा था।

मार्ग में वटपूर नगर पड़ा। वहाँ का राजा हेमरथ, मधु को सन्मान के साथ अपने महल में ले गया। यथायोग्य स्वागत-सत्कार किया। भोजन का समय हुआ तो हेमरथ ने अपनी रानी इन्द्रप्रभा से कहा—प्रिये ! महाराज मधु सौभाग्य से अपने अतिथि बने हैं। तुम स्वयं उन्हे भोजन परोसना।

रानी ने उत्तर दिया—स्वामिन् ! आपकी यह आज्ञा नीति के विरुद्ध है। राजाओं की दृष्टि अच्छी नही होती। अतएव उनके सामने मेरा आना उचित नही है। इस बात को टाल देना ही हितकर है।

वास्तव मे इन्द्रप्रभा अत्यंत सुन्दर थी। उसका रुप-लावण्य असाधारण था। परन्तु हेमरथ चिढ़ कर बोले—तुम व्यर्थ अभिमान कर रही हो। राजा मधु के अन्तःपुर में तुम्हारे समान तो दासियाँ मौजूद है।

आखिर राजा के हट के सामने इन्द्रप्रभा को झुकना पड़ा। वह भोजन परोसने को तैयार हो गई। मगर इसका परिणाम अच्छा नही हुआ। मधु रानी के रूप-लावण्य को देख कर मुग्ध हो गया।

राजा मधु अपनी सेना के साथ वहाँ से रवाना हुआ, मगर उसका मन वटपुर मे रह गया। उसे अन्यमनस्क देखकर मन्त्री ने कारण पूछा। तब राजा ने अपने मन की बात खोल कर कही। राजा बोला—मंत्री, तुम बुद्धीमान् हो, चतुर हो। कोई ऐसा उपाय करो, जिससे इन्द्रप्रभा का मेरे साथ समागम हो सके। उसके बिना मेरा जीवन प्रथम तो रहेगा ही नही और कदाचित् रह गया तो नीरस, शुष्क और व्यर्थ होगा।

मन्त्री सचमुच चतुर था। उसने कहा—महाराज! अभी आपको शत्रु का सामना करना है इस समय आपको वीररस मे रंगना चाहिए, परन्तु आप मोह में फँस रहे हैं—श्रृंगाररस मे डूब रहे हैं। वीररस और श्रृंगाररस के परस्पर विरोधी भाव मे पड़ कर आप न इधर के रहेंगे और न उधर के रहेंगे। जरा विचार तो कीजिए कि आप किस हेतु से निकले हैं? पहले अपने प्रयोजन को सिद्ध कीजिए और फिर दूसरी बात सोचिए। हाँ, आप जैसे प्रतापी नरवीर के लिए कोई भी पदार्थ दुर्लभ नही है। इसका उत्तरदायित्व आप मेरे ऊपर छोड़ दीजिए।

मन्त्री का कथन-सुनकर राजा को कुछ तो अपने तात्कालिक कर्त्तव्य का भान हुआ कुछ विश्वास हो गया कि

मन्त्री इन्द्रप्रभा से मेरा मिलाप करा देगा। अतएव वह निश्चिन्त-सा हो गया।

आखिर मधु राजा ने भीमसेन से युद्ध किया और उसके राज्य को जीतकर अपनी विजय का नगाड़ा बजवाया। इस कार्य से फारिग होते ही इन्द्रप्रभा की रूपराशि उसकी आँखों के आगे नाचने लगी। उसने सेना कौशल नगर भेज दी और मन्त्री के साथ वटपूर जाने की तैयारी की। मंत्री दीर्घदृष्टि तो था ही, उसने चतुराई से काम लिया। भुलावे में डालकर वह राजा को वटपुर के बदले कौशलपुर ले गया! जब राजा को पता चला तो वह बोला—अरे, तुमने मेरे साथ छल किया! विश्वासघात किया! निश्चित समझो, मन्त्री! उस सुन्दरी के बिना मेरा जीवन व्यर्थ है!

मन्त्री—महाराज! मैं क्षमा चाहता हूँ आपके हित के लिए ही मैंने ऐसा किया है। मेरा अनुरोध है कि आप इस विचार को मन से निकाल दें। परस्त्री सेवन दुःखदायी है। यह सबसे बड़ा पाप है। इस पाप के पापी को इस जीवन में अपयश मिलता है तिरस्कार और घृणा का पात्र होना पड़ता है, लांछना भुगतनी पड़ती है। परस्त्रीगामी पुरुष सबकी नजरों में गिर जाता है। उसकी प्रतिष्ठा धूल मे मिल जाती है। कोई भी उसका आदर-सन्मान नहीं करता। उसकी जिन्दगी निन्दित हो जाती है। महाराज! परस्त्रीलम्पट पुरुष अपने आसपास के वायुमण्डल को भी अपवित्र बना डालता है। वह अपने परिवार के लोगों के समक्ष कुत्सित उदाहरण पेश करता है। अपनी सन्तान के सामने नीच आदर्श रखता है।

महाराज! आप राजा है। प्रजा के लिए आदर्श है। जब आप ही परस्त्री का सेवन करेंगे तो प्रजा की क्या दशा होगी? आपके इस व्यवहार को देखकर आपकी प्रजा भी सदाचार से गिर जायगी। आप परस्त्रीलम्पट और व्यभिचारी पुरुषों को किस प्रकार दण्ड दे सकेंगे? जो स्वयं दुराचारी है, वह दूसरों को कैसे सदाचार के मार्ग पर चला सकता है?

राजन्! इस घोर पातक का फल परलोक मे भी भोगना पड़ता है। यह नरक का मार्ग है। व्यभिचारी पुरुष को नरक में जाकर बड़ी ही दारुण दातनाएं सहन करनी पडती है। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप अपने अन्तकरण से, उत्पन्न हुए इस अनर्थकारी संकल्प को शीघ्र ही बाहर निकाल दे। क्षणिक आनन्द के लिए अपने इस लोक को और परलोक को न बिगाडे। अपनी सन्तान परम्परा को लज्जित होने का अवसर न आने दे। नीति शास्त्र कहते है :—

वेश्यावत्परकीयदारगमनं शास्त्रे निषिद्धं भृशम्,
यस्मात्तद्वितनोति दुःखमनिशं मानप्रतिष्टापहम्।
शुद्धे चापि कुले कलंकनिकरं विस्तारयत्यञ्जसा,
बैरं वर्द्धयते भयं च कुरुते, हन्त्यात्मनः सद्गतिम्॥

अर्थात्—जैसे वेश्यागमन शास्त्रों में निषिद्ध ठहराया गया हैं, उसी प्रकार परदारागमन भी अतीव निषिद्ध है। परस्त्रीगमन अनेक दुःखों और संकटों को जन्म देता है। मान और प्रतिष्ठा को नष्ट कर देता है। निर्मल कुल में भी कलंक की कालिमा पोत देता है। जिस कुल की स्त्री के साथ दुराचारी गमन

करता है, उस कुल के साथ उसका घोर बैर बढ़ जाता है। उस कुल के पुरुष उसको मार डालने का अवसर खोजते रहते है। व्यभिचारी अपने वर्तमान जीवन को कलंकित करके जब मरता है, तब दुर्गति मे जाता है और इस प्रकार भव-भव मे उसकी आत्मा को अपने पाप का फल भोगना पड़ता है। सद्गति तो उससे दूर ही रहती है।

मन्त्री फिर कहता है—महाराज! परस्त्री-सेवन करने वाले पुरुषों की क्या गति हुई है, इस पर भी विचार कीजिए। शास्त्रों में ऐसे अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। यथा—

हा नष्टः सह लंकया जितबलः सीतारतो रावणः,
द्रौपद्याः हरणेन दुःखमधिकं प्राप्तश्च पद्मोत्तरः।
भ्रातृस्त्री निरतो मृतो मणिरथो हत्वा निजं भ्रातर-
मन्यस्त्रीरमणोद्यता हतनया ध्वस्तो महान्तो न के?॥

अर्थात्—सोने की लंका का अधिपति, परम प्रतापशाली रावण सीता पर मोहित हो गया। परिणाम क्या आया? उसकी लंका नष्ट हुई, उसका परिवार परम धाम को पहुँचा और अन्त में वह स्वयं भी मारा गया। सती द्रौपदी का अपहरण करके राजा पद्मोत्तर को कितना महान् कष्ट भोगना पड़ा था? अपने छोटे भाई की पत्नी मदनरेखा पर मोहित हुए राजा मणिरथ ने भाई का वध कर दिया। परन्तु क्या उसकी अभिलाषा पूर्ण हुई? नहीं। उसे आनन्द न मिला बल्कि उसका फल उसे मिल गया! उसे कुत्ते की मौत मरना पड़ा।

अभिप्राय यह है कि परस्त्रीलम्पट पुरुष, चाहे वह कितना ही महान् क्यो न हो, वह नाश को प्राप्त होता है, वह अन्यायी है। अतएव—

परदारा न गन्तव्यो, पुरुषेण विपश्चिता।
यतो भवन्ति दुःखानि, नृणां नास्त्यत्र संशयः॥

अर्थात्—बुद्धिमान् पुरुषों को परस्त्री के साथ गमन नही करना चाहिए, क्योंकि इससे विविध प्रकार के दुःखों की उत्पत्ति होती है। यह एक ऐसी सचाई है, जिसमे लेशमात्र भी संशय नही किया जा सकता।

मन्त्री ने फिर कहा—पृथ्वीनाथ ! मेरी प्रार्थना है कि आप अपने इस कुविचार को त्याग दें और अपनी तथा अपने पूर्वजों की कीर्ति को अक्षुण्ण रखें।

राजा मधु अपने नीतिनिपुण मन्त्री का परामर्श सुनकर भी सही राह पर नही आया। वास्तव में जब मनुष्य कामान्ध हो जाता है, विषय-वासना से उसकी विचारशक्ति नष्ट हो जाती है, तब उसे भला-बुरा मार्ग नहीं सूझता। उसकी सद्-भावनाएँ नष्ट हो जातीं है और वह हितकर वचनों पर भीं कान नहीं देता। राजा मधु बोला—मंत्री, तुम्हारा कहना उचित है, किन्तु टोल पर टाँची नही लगती ! मेरा मन उस सुन्दरी में अनुरक्त हो चुका है। किसी न किसी उपाय से उसे प्राप्त करना ही होगा। उसके बिना मैं जीवित नही रह सकता।

राजा का यह उत्तर सुनकर मन्त्री चुपचाप अपने घर चला गया। राजा रात-दिन इसी चिन्ता में लीन रहने लगा। एक-एक घड़ी उसे एक-एक युग के समान प्रतीत होने लगी। धीरे-धीरे वसन्त ऋतु का आगमन हुआ। राजा ने वसन्त महोत्सव मनाने की आयोजना की। उसने राजा हेमरथ को सपत्नीक आने का आमंत्रण भेजा और आग्रह तथा अनुरोध भी किया। राजा हेमरथ, मधु का आमंत्रण पाकर प्रसन्न हुआ। उसने रानी इन्द्रप्रभा को तैयारी करने की सूचना की। रानी को आशंका हुई कि इसमे मधु की कोई दुरभिसंधि है। अतएव उसे बड़ी चिन्ता होने लगी। उसने कौशलपूर न जाने का विचार किया। परन्तु हेमरथ नही माना। रानी के बहुत समझाने पर भी उसने अपना हट नहीं छोडा। आखिर राजा और रानी कौशलपुर आ पहुँचे।

वसन्तोन्सव समाप्त होने पर मधु ने कोई बहाना करके इन्द्रप्रभा को वहीं रख लिया और हेमरथ को विदा दे दी। मानव मन बड़ा निर्वल होता है। नीचे गिरते उसे विलम्ब नहीं लगता। मधु ने किसी प्रकार इन्द्रप्रभा को फुसला लिया और अपनी पटरानी बना लिया। अब वह निश्चिन्त होकर उसके साथ भोग भोगता हुआ रहने लगा।

विना विचारे कार्य करने वाले हेमरथ को जब इस घटना का पता लगा तो मोह के कारण वह विक्षिप्त-सा हो गया। राज-पद की मर्यादा और लज्जा को त्यागकर वह वटपुर से रवाना हो गया! कौशल पुर मे आकर 'प्रिया! हाय प्रिया!

मेरी प्यारी' आदि बड़बड़ाता हुआ वह गलियों में चक्कर काटने लगा। लोगों ने पगला समझकर उसकी ओर ध्यान नही दिया। वह जिधर भी जाता, लड़कों की टोली उसके पीछे हो जाती थी। वह 'प्रिया-प्रिया' की धुन लगाये इधर-उधर भटकता फिरता था। उसके बाल और नाखून वढ़ गये थे, कपडे चिथड़े-चिथड़े हो गये थे, शरीर पर मैल के पलस्तर जम गये थे! उसे देखकर कोई कल्पना भी नही कर सकता था कि यह राजा हेमरथ है! वह अब साधारण पागलों की श्रेणी में आ गया था!

कौशलनगर की गलियो में चक्कर लगाता-लगाता हेमरथ एक दिन राजमहल के पास से निकला। रानी की नजर उस पर पड़ गई। उसने अपने स्वामी को पहचान लिया और दासी को भेजकर अपने पास बुलवा लिया। राजा हेमरथ, अपने प्रियतम, की यह दशा देखकर रानी को वहुत दुःख हुआ वह मार्मिक आघात से विकल हो उठी। उसे अपने ऊपर तीव्र घृणा हुई। मगर जो कुछ हो चुका था, उसे बदलना सम्भव नही था। इन्द्रप्रभा ने हेमरथ से कहा राजन्! अब वृथा भटकने से क्या लाभ है? मैंने पहले आपको बहुत समझाया था। मगर आपने मेरी एक न मानी। इसी कारण यह दुःख भुगतने का अवसर आया है। अब पिछली बातों को भूल जाना ही हितकर है। इस असार और क्षणभंगुर संसार में न कोई किसी का प्रिय है, न कोई किसी की प्रिया है। इस प्रकार पागलों की भांति घूमने से कोई लाभ नहीं है। अपनी जगह चले जाओ और शान्ति पूर्वक रहो। बीती को भूलो। राजा मधु को

तुम्हारा इस प्रकार घूमना सहन नही होगा। मालूम होने पर तुम्हें प्राण गँवाना पडेंगे।

इन्द्रप्रभा की बातों से हेमरथ समझ गया कि अब इस जीवन में वह मुझे नही मिल सकती। उसकी वाणी में स्नेह और ममता नहो है; रुखाई है और धमकी है! अतएव वह अत्यन्त क्रोध में बड़बड़ाता हुआ वहां से चल दिया। अब उसने नगर में चक्कर काटना बंद कर दिया। वन में जाकर तापस हो गया।

इधर राजा मधु, इन्द्रप्रभा रानी पर अत्यन्त आसक्त हो रहा था। वह क्षण भर के लिये भी उसका संग नही छोड़ता था उसने राज-काज की भी उपेक्षा कर दी थी। इसी समय एक घटना घटी।

एक दिन मधुराज का 'तलवर' एक जार पुरुष को पकड़कर लाया। मधु के सामने उसे पेश किया गया। व्यभिचार करनें के अपराध में राजा ने उसे फांसी की सजा दे दी।

इन्द्रप्रभा ने राजा से प्रश्न किया—महाराज! इस पापी ने परनारी की लज्जा लूटी है। वह व्यभिचारी है। व्यभिचार अठारह पापों मे घोर पाप है। व्यभिचार से समाज मे अशांति भी वढ़ती है। इसी कारण इसे प्राणदण्ड दिया गया है।

इन्द्रप्रभा—महाराज! पाप सवके लिए पाप है या नही? अगर सवके लिये पाप है तो फिर वड़े आदमी उसका दण्ड क्यों नही भोगते? क्या निर्धनों और निर्वलों के लिए ही पुण्य-पाप की व्यवस्था है? क्या सवल पुरुष इस व्यवस्था से परे

मधु–तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?

इन्द्रप्रभा–मेरा अभिप्राय तो स्पष्ट ही है महाराज ! मैं भी परस्त्री हूं। आप दूसरों का न्याय करते है। दूसरों का अपराध देखते हैं तो अपना भी अपराध क्यों नही देखते ?

इन्द्रप्रभा के वचन मधु के कलेजे मे तीर की तरह चुभ गये। इन्द्रप्रभा पर क्रोध नही आया, अपने प्रति ही घृणा उपजी। वह सोचने लगा–वास्तव मे मैं बड़ा अधम हूं ! मैंने परस्त्रीगमन करके अपनी आत्मा को कलुषित किया है ! अपने कुल की विमल कीर्ति में कालिमा लगा दी है ! पूर्वजों के यश को मलीन किया है ! राजा को प्रजा के समक्ष आदर्श उपस्थित करना चाहिए था, परन्तु मैंने अत्यंत अवांछनीय उदाहरण उपस्थित किया है ! मैं कलंकी हूं, मुझे धिक्कार है ! !

इस प्रकार मधु ने आत्मनिन्दा करके लम्पटता का परित्याग किया। वह जिन धर्म की ओर आकृष्ट हुआ। मधु ने सोचा–वीतराग प्रभु के द्वारा उपदिष्ट धर्म ही पतितों को पावन बनाने वाला है। उसी की आराधना करके पापों का क्षय किया जा सकता है। अपनी आत्मा का उद्धार करने के लिए जिनधर्म की शरण मे जाना ही उपयुक्त है।

इसी बीच एक दिन राजमहल में मुनिराज भिक्षा के लिए पधारे। मधुराज ने पवित्र और उदार भाव से उन्हें निर्दोष भिक्षा दी। आहार-दान देने मे उसे महान पुण्य का बंध हुआ। उसने अपना जीवन धन्य माना। सोचने लगा-आज का दिन मेरे जीवन में धन्य है ! मुनिराज भिक्षा ग्रहण करके अपने स्थान पर चले गये।

दूसरे दिन राजा मधु अपने छोटे भाई कैटभ के साथ मुनिराज को वन्दना करने गया। मुनिराज ने प्रभावशाली शब्दों में उपदेश सुनाया। उस उपदेशका दोनों भाइयों पर गहरा असर पड़ा। दोनों को वैराग्य हो गया। विरक्त भाव धारण करके दोनों वापिस लौटे। ज्येष्ठ पुत्र को राज्य-भार सौंप कर और दुनिया से नाता तोड़कर, दीक्षा धारण करके मुनि बन गये।

पुण्यवान पुरुष कर्म के प्रबल उदय से कभी गिर जाते हैं तो उठने में भी उन्हें देरी नही लगती। राजा मधु को भोगी से योगी बनते देर नहीं लगी। वह पहले जैसे भोग में आसक्त थे, वैसे ही अब योग में आसक्त हो गये। अब मधु मुनि शुद्ध संयम का पालन करते हुए ज्ञान ध्यान में लीन रहने लगे। कैटभ अणगार भी इसी प्रकार संयम का पालन करते रहे। अन्त में आलोचना करके और संथारा धारण करके बारहवें देवलोक में देवरुपसे उत्पन्न हुए।

रानी इन्द्रप्रभा ने भी दीक्षा अंगीकार कर ली। वह साध्वी हो गई और साध्वी-धर्म का पालन भी करने लगी, मगर उसके अन्तःकरण में कपट का अंश विद्यमान रहा फिर भी तपस्या के प्रभाव से उसे भी देवगति और दिव्य ऋद्धि प्राप्त हुई।

राजा मधु का जीव देवलोक के अनुपम सुखों को भोगने के पश्चात् पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रभावसे रुक्मिणी के उदर से

उत्पन्न हुआ है। मुनि को आहार-दान देने के कारण उसे उदार और विपुल वैभव की प्राप्ति होगी। मगर विरक्ति के संस्कार विद्यमान होने से वह अंत में संयम धारण करके संसार-सागर से तिर जायगा, असीम, अव्याबाध सुखमय मोक्ष को प्राप्त करेगा।

कैटभ का जीव जाम्ववती की कूंख से पुत्र रूप में उत्पन्न होगा और प्रद्युम्न का मित्र होगा।

इन्द्रप्रभा का जीव विद्याधरों की श्रेणी में, यमसंवर विद्याधर की पत्नी के रूप मे जन्म लेगा। उसका नाम 'कनकमाला' होगा। हेमरथ का जीव क्रोध के आवेश में मृत्यु को प्राप्त होकर संसार-भ्रमण करता-करता तापस होकर कायाक्लेश के प्रभाव से असुरकुमार देवता हुआ है। उसका नाम 'धूमकेतु' है।

: ७ :

उद्धार

असुर धूमकेतु एक बार अपने विमान में बैठकर सैर करने निकला। घूमता-फिरता वह रुक्मिणी के महल के ऊपर होकर जाने लगा तो उसका विमान अचानक ही स्तंभित हो गया। विमान को रुका हुआ देखकर धूमकेतु चौंक उठा। वह

सोचने लगा—मेरी विद्या का अपहरण कैसे हो गया? क्या यहां मेरा कोई शत्रु विद्यमान है? अथवा कोई साधु, सती या केवली हैं? उसने अवधिज्ञान का प्रयोग किया और उसे पता चल गया कि मधु राजा का जीव यहां रुक्मिणी के गर्भ से जन्मा है! यह मेरा पूर्वभव का शत्रु है! इसने मेरी पत्नी का मुझसे वियोग कराया था तो मैं इसकी माता से इसका विछोह कराकर बदला क्यों न लूं? उसे सभी पुरानी बातें स्मरण हो आईं। क्रोध के कारण उसका खून खौलने लगा। आँखें लाल हो गईं। मधु का व्यवहार उसके हृदय में भाले की नोंक की तरह चुभकर व्यथा पहुंचाने लगा। उसका क्रोध भयानक हो उठा। वह काल की तरह विकराल बन गया।

धूमकेतु फिर सोचने लगा—इस पापी ने मेरी प्रिया का हरण किया था और मुझे घोर वेदना पहुंचाई थी। इसने मुझे सताने में कुछ कसर नही रक्खी। अब यह मेरे वश मे है। मैं इसे ऐसी पीड़ा पहुंचाऊंगा कि व्याज समेत बदला चुक जाय!

इस प्रकार सोचकर और क्रोध के अधीन होकर धूमकेतु रुक्मिणी के महल में पहुंचा। अदृश्य होकर उसने कुमार का अपहरण किया और वहां से चल दिया। कुमार के अपहरण की बात किसी ने जान ही नहीं पाई।

आकाश में जाते जाते धूमकेतु उस कुमार से कहने लगा-'रे दुष्ट! अधम! पापी! अब अपनी करतूत का फल चखता। पहले तो तू समर्थ था और मैं बदला नहीं ले सकता था।

परन्तु अब मैं तेरा काल हूं। तू मेरी मुट्ठीमें है। तेरी ऐसी दुर्गति करूंगा कि याद रक्खेगा!'

धूमकेतु कुमार को वैताढ्य गिरि की ओर ले गया। वैताढ्य की तलहटी में एक लम्बी-चौड़ी झाड़ी थी। उसमें खूब गहरा गढ्हा खोद कर उसने कुमार को रख दिया। ऊपर से बावन हाथ की भारी शिला रख दी। इस प्रकार कुमारको गहरा गाड़कर वह बोला—ले बच्चू अपने किये का फल भोगो! तुमने जो बीज बोया है, उसके फल चखो!'

सचमुच कर्म बड़े कठोर है। वे किसी का लिहाज नही करते। कहा है–।

अवश्यं ह्यनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

जिस जीव ने शुभ या अशुभ जैसे भी कर्म किये है, उनका फल उसे भोगना ही पड़ता है। फल भोगे बिना छुटकारा नही।

'कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।'

देखो, प्रद्युम्न परम प्रतापी, तीन खण्ड के अधिपति और प्रचण्ड शक्ति से सम्पन्न वासुदेव श्रीकृष्ण का पुत्र है। फिर भी उसके अशुभ कर्मो ने उसे नही छोड़ा। शत्रु के हाथ में पड़कर माता-पिता से उसे वियुक्त होना पड़ा और संकट में पड़ना पड़ा। मगर पाप के पश्चात् उसने धर्म और पुण्य का भी खूब उपार्जन किया था। उसके प्रताप से उसे पूर्णायु की प्राप्ति हुई थी। वह चरम शरीरी जीव था। चरम शरीरी जीव की असमय

में मृत्यु नही होतीं। कुमार के पुण्यप्रताप से वह दैत्याकार शिला भी फूल के समान हल्की हो गई। शिला के नीचे कुमार किलोलें करने लगा। कुमार के श्वासोच्छ्वास के कारण वह शिला हिलने लगी।

रजतगिरि की दक्षिण श्रेणी में मेघकूट नामक शहर है। वहां का विद्याधर राजा यमसंवर था। उसकी पत्नी का नाम कनकमाला था। राजा और रानी अपने विमान में बैठकर सैर करने निकले और उड़ते-उड़ते मानो कुमार के पुण्य से ही आकृष्ट होकर उसी अटवी में आ पहुँचे। उन्होंने दूर से ही हिलती हुई शिला देखी। उनके आश्चर्य का पार न रहा। इतनी भारी शिला का अपने आप हिलना अद्भुत बात थी। अतएव उनका चकित हो जाना भी स्वाभाविक ही था।

राजा और रानी को शिला के हिलने का कारण जानने की बड़ीं उत्कंठा हुई। दोनो शिला के पास पहुँचे। खूब गौर से आस पास देखने पर भी कुछ समाधान नही हुआ। आखिर राजा ने उस शिला को हटाया तो उसके नीचे किलोल करते हुए एक नवजात बालक को देखा, बालक बड़ा ही मनोहर और सुन्दर था, इतना सुन्दर कि मानों साक्षात् कामदेव ही हो! वह तरह तरह की क्रीड़ाएं कर रहा था। उसकी मनोहारिणी क्रीड़ाएँ देखकर राजा और रानी को अपूर्व हर्ष हुआ। उनके नेत्र निहाल हो गये जीवन धन्य हो गया। वे आपस में एक दूसरे से कहने लगे-अद्भुत रूप है! अद्भुत घटना है। यहां सभी कुछ अद्भुत है! न जाने यह पुण्यशाली बालक कौन

परन्तु अब मैं तेरा काल हूं। तू मेरी मुट्ठीमें है। तेरी ऐसी दुर्गति करूंगा कि याद रक्खेगा !'

धूमकेतु कुमार को वैताढ्य गिरि की ओर ले गया। वैताढ्य की तलहटी में एक लम्बी-चौड़ी झाड़ी थी। उसमें खूब गहरा गढ्हा खोद कर उसने कुमार को रख दिया। ऊपर से बावन हाथ की भारी शिला रख दी। इस प्रकार कुमारको गहरा गाड़कर वह बोला—ले बच्चू अपने किये का फल भोगो ! तुमने जो बीज बोया है, उसके फल चखो !'

सचमुच कर्म बड़े कठोर है। वे किसी का लिहाज नही करते। कहा है—।

अवश्यं ह्यनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

जिस जीव ने शुभ या अशुभ जैसे भी कर्म किये है, उनका फल उसे भोगना ही पड़ता है। फल भोगे बिना छुटकारा नही।

'कडाण कम्नाण न मोक्ख अत्थि।'

देखो, प्रद्युम्न परम प्रतापी, तीन खण्ड के अधिपति और प्रचण्ड शक्ति से सम्पन्न वासुदेव श्रीकृष्ण का पुत्र है। फिर भी उसके अशुभ कर्मो ने उसे नही छोड़ा। शत्रु के हाथ में पड़कर माता-पिता से उसे वियुक्त होना पड़ा और संकट में पड़ना पड़ा। मगर पाप के पश्चात् उसने धर्म और पुण्य का भी खूब उपार्जन किया था। उसके प्रताप से उसे पूर्णायु की प्राप्ति हुई थी। वह चरम शरीरी जीव था। चरम शरीरी जीव की असमय

में मृत्यु नहीं होती। कुमार के पुण्यप्रताप से वह दैत्याकार शिला भी फूल के समान हल्की हो गई। शिला के नीचे कुमार किलोलें करने लगा। कुमार के श्वासोच्छ्वास के कारण वह शिला हिलने लगी।

रजतगिरि की दक्षिण श्रेणी में मेघकूट नामक शहर है। वहां का विद्याधर राजा यमसंवर था। उसकी पत्नी का नाम कनकमाला था। राजा और रानी अपने विमान में बैठकर सैर करने निकले और उडते-उड़ते मानो कुमार के पुण्य से ही आकृष्ट होकर उसी अटवी में आ पहुँचे। उन्होंने दूर से ही हिलती हुई शिला देखी। उनके आश्चर्य का पार न रहा। इतनी भारी शिला का अपने आप हिलना अद्भुत बात थी। अतएव उनका चकित हो जाना भी स्वाभाविक ही था।

राजा और रानी को शिला के हिलने का कारण जानने की बड़ी उत्कंठा हुई। दोनो शिला के पास पहुँचे। खूब गौर से आस पास देखने पर भी कुछ समाधान नही हुआ। आखिर राजा ने उस शिला को हटाया तो उसके नीचे किलोल करते हुए एक नवजात बालक को देखा, बालक बडा ही मनोहर और सुन्दर था, इतना सुन्दर कि मानों साक्षात् कामदेव ही हो! वह तरह तरह की क्रीड़ाएं कर रहा था। उसकी मनोहारिणी क्रीडाएँ देखकर राजा और रानी को अपूर्व हर्ष हुआ। उनके नेत्र निहाल हो गये जीवत्त धन्य हो गया। वे आपस में एक दूसरे से कहने लगे-अद्भुत रूप है! अद्भुत घटना है। यहां सभी कुछ अद्भुर्त है! न जाने यह पुण्यशाली बालक कौन

है ? कहाँ का है ? इस प्रकार कहते हुए उन्होंने बालक को अपनी छाती से लगा लिया।

बालक का सर्वाङ्गीण सौन्दर्य अत्यन्त हृदयहारी था। उसके बाल भौरे के समान कृष्णवर्ण, बहुत बारीक, कोमल और दक्षिणावर्त्त थे। मस्तक के ऊपर वे अपूर्व शोभा दे रहे थे। उसका भाल अष्टमी के चन्द्रमा जैसा था। काली-काली भौंहे कमान की भांति नमी हुई थी। कान कदम्ब के फूल के आकार के और नयन कमल पत्र के समान लम्बे-लम्बे थे। बालक की नाक कीर के समान सरल और तीखी थी। मुख पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान सौम्य और प्रशस्त था। उसके होंटो में अपूर्व लालिमा थी। वह कंबु-ग्रीव, उन्नत-वक्षस्थल, और लम्ब बाहु था। उसकी जंघाएं हाथी की सूंड सदृश थी। अभि-प्राय यह कि बालक के शरीर का एक भी अंग अनिष्ठ या अप्रशस्त नहीं था। शरीर का वर्ण सुनहरा था। नवनीत के समान मृदुल स्पर्श था। उसकी सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता।

बालक में सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार सभी प्रशस्त लक्षण विद्यमान थे। कही किंचित् भी न्यूनता नजर नही आती थी। बालक को देखकर सभी का मन आकृष्ट हो गया है, फिर वह बालक तो असाधारण, अनुपम और अद्वितीय सुन्दर तथा मनोहर था। रानी कनकमाला उसे देखकर सर्वतोभावेन समर्पित हो गई। उसकी मातृ-हृदय की सुकोमल भावनाएं जागृत हो गई। बालक को उठा कर कंठ से लगा लिया और उसके कपोलों

को एवं मस्तक को बार-बार चूमने लगी। उसे चूमते-चूमते तृप्ति ही नही होती थी।

उस समय राजा बोला–प्रिये ! यह बालक तुम्हारे लिए दैवी उपहार है। इसे आत्मीय रूप में ग्रहण करो। यह तुम्हारी समस्त सौतों के पुत्रों में शिरोमणि है। इससे हमारे कुल की परम्परा, प्रतिष्ठा और कीर्ति में वृद्धि होगी। इतना कहकर राजा ने उसी समय उसे युवराज का पद प्रदान कर दिया। रानी कनकमाला के हर्ष की सीमा न रही। उसने अपने आपको धन्य समझा।

कनकमाला ने चिन्तामणि रत्न के समान उस बालक को ग्रहण किया। उसे अपूर्व शान्ति और तृप्ति की अनुभूति हुई।

आखिर राजा और रानी बालक को लेकर वहां से रवाना हुए। बालक की प्राप्ति को गुप्त रखकर उन्होंने यह जाहिर कर दिया कि रानी गूढगर्भिणी थी। उसके गर्भ के लक्षण प्रकट नही हुए थे। अब उसने पुत्र का प्रसव किया है।

इस घोषणा के पश्चात राजा ने पुत्र-जन्म का उत्सव मनाया। बन्दियों को कारागार से मुक्त कर दिया और याचकों को मनमाना दान दिया। सर्वत्र हर्ष और आनन्द की लहरे लहराने लगी। बारहवें दिन राजाने अपने पारिवारिक जनों को आमन्त्रित करके भोजन आदि से उनका यथायोग्य सत्कार किया और 'यह बालक अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे' इस शुभ कामना के साथ बालक का नाम 'प्रद्युम्न' रखा।

इस आशय का वृत्तान्त सुनाकर अन्त मे केवली भगवान बोले–सोलह वर्ष व्यतीत हो जाने पर, सोलह लाभ प्राप्त करके

वह बालक अपने माता-पिता से मिलेगा। कुमार जब माता-पिता से मिलने वाला होगा, तब यह लक्षण प्रकट हो जाएंगे—सूखा तालाव जल से परिपूर्ण हो जायगा, कमलों पर भ्रमर गुञ्जार करने लगेंगे, सूखे वृक्ष हरे-भरे हो जाएंगे और विना ऋतु के भी फलों-फूलों के भार से नम्र हो जाएंगे। मयूर नृत्य करने लगेंगे और कोकिला अपनी कर्णकान्त कूक से दिग-दिगन्त में माधुरी बिखेरने लगेगी। गूंगों को स्वतःवाणी प्राप्त हो जायेगी और अंधों को नेत्र मिल जायेंगे। कुरूप व्यक्ति सुरूप बन जायेंगे। खेत मे धान्य लहलहाने लगेंगे। कुमार पर नजर गिरते ही माता के स्तन दूध से भर जाएंगे। हे ऋषि नारद ! और हे चक्रवर्त्तिन् ! यह लक्षण कुमार प्रद्युम्न के आगमन की सूचना देंगे।

तीर्थंकर की यह वाणी सुनकर भव्य जीवों को प्रतिबोध की प्राप्ति हुई। उन्होंने वैर-विरोध का त्याग करके आपस में क्षमा का आदान-प्रदान किया। सीमन्धर स्वामी का जय-जयकार होने लगा। प्रभु संशय का उसी प्रकार निवारण करने वाले थे, जैसे सूर्य अंधकार का निवारण कर देता है। प्रद्युम्न का पुण्य चरित्र सुनकर सभी श्रोता उल्लास का अनुभव करने लगे।

नारद ने तीर्थंकर को यथाविधि वन्दन-नमस्कार किया। उन्हें कुमार को देखने की उत्कंठा उत्पन्न हुई और उसी समय वहां से उड़कर राजा यमसंवर और रानी कनकमाला के पास पहुंचे। रानी और राजा ने ऋषि के चरणों में पुनः पुनः प्रणाम किया। तत्पश्चात नारद ने कहा—बहिन,

गूढ गर्भ से तुमने जिस पुत्र को प्रसव किया है उसे मैं देखना चाहता हूं।

कनकमाला ने प्रद्युम्न को नारद के चरणों में रखते हुए कहा—यह आपके चरणों का प्रसाद है।

प्रद्युम्न के शरीर के लक्षण और तिल-मस आदि व्यंजन देखकर नारद ऋषि अतीव प्रसन्न हुए। उन्होंने बालक को आशीर्वाद देते हुए कहा—चिरंजीव रहो अपनी माताकी कामना पुर्ण करो।

इसके अनन्तर नारद मुनि आकाश-मार्ग से वहाँ से रवाना होकर द्वारिका आ पहुंचे। हरि और रुक्मिणी के लिए पल-पल युग के समान प्रतीत हो रहा था। नारद के आते ही उनकी उत्कंठा प्रबल हो उठी। नारद ने प्रद्युम्न के पूर्वभव से लेकर अन्त तक का समस्त वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। वृत्तान्त सुनकर दम्पती को अपूर्व हर्ष हुआ। पुत्र-मिलन की आशा से उनमे जैसे नवीन चेतना जागृत हो गई।

आशा जीवन जगत मे, आशा थी सुख होय।

संसारी प्राणी आशा का अवलम्बन करके महान से महान् विपत्ति को हंसते-हंसते सह लेते है। आशा के सहारे ही उनका जीवन-सूत्र अखण्डित रहता है। संकट के समय मे, जब मनुष्य चारों ओर से अन्धकार मे डूब जाता है, भविष्य की आशा का प्रकाश ही उसका पथ-प्रदर्शन त

है। रूक्मिणी भी आशा के आधार पर ही अपना कालक्षेप करने लगी। वह एक-एक दिन की गणना करने लगी। उसे ऐसा लगने लगा कि कब सोलह वर्ष पूरे हों और कब में अपने लाल का मधुर मनोहर मुखड़ा देखूं। उधर कुमार आनन्द-पूर्वक दूज के चन्द्रमा के समान वृद्धि करने लगा।

: ८ :

बाल्यकाल

कनकमाला राजा यमसंवर की छोटी रानी थी और राजा उसे सब से अधिक चाहता था। कुछ तो इस कारण और फिर प्रद्युम्न स्वयं ही अत्यन्त पुण्यवान् और सुन्दर था, इस कारण भी राजा को वह प्राणों से भी अधिक प्रिय लगता था। प्रद्युम्न के पुण्य प्रताप से राज्य की वृद्धि हो रही थी। गज और बाजि बढ़ते जा रहे थे, शत्रु दबते जा रहे थे। कुमार का रूप-वैभव देखकर सज्जनों का चित्त स्वतः उनकी ओर आकृष्ट हो जाता था और बहुत प्रसन्न होता था।

जब बालक का शैशव-काल समाप्त हो गया और उसमे समझ आगई तो कलाचार्य के पास भेजकर उसे कलाओं की शिक्षा दी गई। थोड़े ही दिनों में कुमार कलाओं में कुशल हो गया। उसने पुरुष की बहत्तर कलाओं में प्रवीणता

प्राप्त कर ली। गहरी लगन के साथ राजनीति और धर्मनीति का अध्ययन किया। अठारह प्रकार की लिपियाँ सीखीं। इस प्रकार वह शास्त्रविद्या में भी पारंगत हो गया।

शनैः शनैः प्रद्युम्न कुमार ने कुमारावस्था को भी पार करके युवावस्था की प्रथम सीढ़ी पर पांव रक्खा। माता-पिता उसके विवाह के मंसूबे करने लगे। प्राचीन काल मे इस बात का ध्यान रक्खा जाता था कि पुत्र का विवाह सम्बन्ध समान रूप, समान गुण और समान शील वाली कन्या के साथ ही किया जाय। आजकल की भांति धन-सम्पत्ति की विवाह में प्रधानता नही थी। उस समय के लोग जानते थे कि अनुरूप साथी से ही जीवन सुखमय बन सकता है। पति को विरुद्ध स्वभाव वाली पत्नी और पत्नी को विपरीत स्वभाव वाला पती मिल जाय तो शान्ति और सुख की संभावनाएँ नष्टप्रायः हो जाती हैं। प्रभूत धन और वैभव भी उस स्थिति में मनुष्य को सुखी नही बना सकता।

यह ठीक है जब नर और नारी आपस में दाम्पत्य के बंधन में बंध चुके हों तब उनमें से प्रत्येक का कर्त्तव्य है कि वह अपने साथी के अनुरूप बनने का प्रयत्न करे, एक दूसरे को प्रीतिपूर्वक निभाने की सर्वतोभावेन चेष्टा करे। ऐसे करने से ही दोनों का जीवन सुखमय और शान्तिमय बन सकता है। किन्तु माता-पिता का कर्त्तव्य तो यही है कि वे धन या दहेज की लालसा को दबा कर अपनी सन्तान के लिए अनुरूप वर या वधू का ही चुनाव करें।

प्रद्युम्नकुमार के माता-पिता उसके लिये योग्य कन्या की खोज करने लगे ! प्रद्युम्न जैसे असाधारण बेटे के लिए वैसी ही कन्या का मिलना सहज बात नही थी। फिर भी उनकी आकांक्षा तो यह थी कि अधिकसे अधिक योग्य कन्या की तलाश की जाय।

इसी बीच कुमार ने एक दिन राजा यमसंवर के पास जाकर कहा—'पिताजी, मैं दिग्विजय करना चाहता हूँ मुझे सेना दीजिए। मेरी तीव्र अभिलाषा है कि मैं आपको विजयपताका फहराकर आपके यश और राज्य का विस्तार करूं। उसी पुत्र का जीवन सफल है जो अपने पिता की मौजूदगी में ही अपनी कलाओं का प्रदर्शन करता है और अपने माता पिता को संतोष पहुंचाता है।'

यमसंवर–कुमार! अभी तुम्हारी उम्र थोड़ी है। तुम्हारा शरीर सुकुमार है। युद्ध करना सरल नही है, बड़ा ही दुष्कर कार्य है। जल्दी क्या है ? थोड़ा और बड़ा होने पर दिग्विजय करना। अभी सुख से रहो।

प्रद्युम्न—पिताजी, उम्र मे छोटा होने पर भी आपके अनुग्रह से बुद्धि और बल विक्रम मे छोटा नही हूँ। आप आज्ञा दीजिए और देखिए कि मै बड़े बड़े भूपालों के भाल आपके चरणों मे झुकवाता हूँ या नही ! मै सभी श्रेणियों को अपने आधीन करुंगा, तभी अपनी माँ का सुपूत कहला सकूंगा।

यमसंवर कुमार की वीरतापूर्ण वाणी सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट और प्रसन्न हुआ। उसने हर्षित होकर कहा—वत्स,

तुम्हारे ओजस्वी वचन और उन्नत मनोरथ मेरे लिए आनन्द दायक है। भले जाओ और अपने मनोरथ सिद्ध करो! जितनी सेना चाहो, ले जाओ। तुम्हारा पथ प्रशस्त हो। तुम्हारी कामना सफल हो!

'एवमस्तु' कहकर कुमार ने पिता का शुभाशीर्वाद शिरोधार्य किया और प्रसन्न होकर सेनापति को बुलाया। कुमार ने उसे सेना को सुसज्जित करने का आदेश दिया।

शुभ मुहूर्त में प्रद्युम्नकुमार ने अपनी विशाल और सबल सेना के साथ दिग्विजय के लिये प्रयाण कर दिया। जयनाद से गगन मण्डल को गुंजित करती हुई सेना रवाना हुई। गजराज अपनी मस्त चाल से चलते हुए चिंघाड़ रहे थे। घोड़े हिनहिनाहट करके प्रद्युम्न की विजय की सूचना दे रहे थे। रथों की झंकार अलग ही सुनाई पड़ती थी। पैदल सेना जय-जयकार कर रही थी। उस विपुल सैन्य के भार को वहन करने मे असमर्थ-सी बनी हुई पृथ्वी थर-थर कांप रही थी। धूल से आकाशमण्डल व्याप्त हो गया था और सूर्य ढंक गया था। सेना की विशालता का अनुमान इसी से किया जा सकता हैं कि जहां सेना पहुंचती, वहां के तालाब भी सूख जाते थे।

कुमार ने दिग्विजय का कार्य प्रारम्भ कर दिया। जिन राजाओं ने दूरदर्शिता से काम लिया और युद्ध किये बिना ही प्रद्युम्न की अधिनता स्वीकार करली, उनका राज्य कायम रह गया। प्रद्युम्न ने उन्हें केवल अधीनता स्वीकार करवाकर, छोड़ दिया और सन्तुष्ट किया। मगर जिन्होंने हेकड़ी दिखाई उनकी दुर्गति

हुई। कुमार जहां पहुँचता, अपने दूत को भेजकर पहले ही सन्देश पहुंचा देता था की–या तो हमारी अधीनता अंगीकार करो या अपनी शक्ति का प्रदर्शन करो। मन की हवस मन मे मत रखना।

कई शक्तिशाली राजा उसका सामना करने आये, अपना दल-बल लेकर उससे जूझे। मगर प्रद्युम्न के सामने कोई भी नही टिक सका। उसकी बिजली की तरह चमकती हुई तलवार के आगे सभी चौंधिया गये। आखिर प्रद्युम्न माधव का बीज था। उसमें कमी क्या हो सकती थी? वह बड़ा शूरवीर और साहसी था। उसने जबरदस्त शत्रुओं का भी शान के साथ मुकाबला किया और उन्हें खदेड़ दिया। शत्रु राजा कुमार के अमित तेज, असाधारण पराक्रम और अनुपम युद्ध कौशल को देखकर चकित रह जाते थे। मन ही मन सोचते थे---यह बालक, बालक क्या युद्ध की ज्वाला हैं।

इस प्रकार अनेक संग्राम करके कुमार ने कितने ही राजाओं को बाँध लिया, कितनेक को अपने चरणों मे झुकाया और कितनेक को काल के गाल मे पहुँचा दिया। उसने अपनी समस्त सीमाओं पर विजय प्राप्त की और प्रचंड शक्तिशाली राजाओं को भी पराजित किया। अपने पिता की आन बचाई और प्रतिष्ठा मे चार चाँद लगाये। पिता की ऋद्धि की वृद्धि की और सेना की भी वृद्धि की।

इस प्रकार विजय प्राप्त करके वीर शिरोमणी प्रद्युम्न वापिस लौटा। अपनी विजय के नगाड़ो की ध्वनि से आकाश

को पूरित करता हुआ कुमार अपनी नगरी के समीप आ पहुचा।

राजा यशसंवर को कुमार के आगमन का समाचार मिला तो उनके आनन्द का पार न रहा। हर्ष से हृदय भर गया। गर्व से छाती फूल उठी, सचमुच वे पुरुष धन्य है जिन्हें ऐसे शूरवीर और सद्गुणी पुत्र प्राप्त होते हैं। जिसे एक भी ऐसा सुपुत्र प्राप्त हो जाता है, वह जगत् मे अतीव भाग्यशाली है। नीतिकार कहते हैं—

एकोऽपि गुणवान पुत्रो, निर्गूणैः किं शतैरपि।
एकश्चन्द्रो जगच्चक्षुर्नक्षत्रैः किं प्रयोजनम्?

निर्गुण पुत्र अगर सौं हो तो उनसे क्या लाभ है? एक पुत्र यदि गुणवान् है तो बस है। अकेला चन्द्रमा जगत मे अपूर्व प्रकाश प्रसारित कर देता है नक्षत्र बहुत होते हैं, पर वे किस काम के? और भी—

एकेनापि सुपुत्रेण, सिंही स्वपिति निर्भयम्
सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति रासभी॥

सिंहनी एक ही पुत्र को प्रसव करके भी उसके बल पर निर्भय होकर सोती है—निडर रहती है। मगर उस गर्दभी को तो देखो जिसने दस बच्चे एक साथ पैदा किये हैं और जो उनके साथ ही बोझा ढोती रहती है!

जिस पुत्र के उत्पन्न होने पर माता-पिता के मन मे निश्चिन्तता नही आई, जो अपने जनक और जननी को सन्तुष्ट

न कर सका, उस पुत्र का जन्म लेना निरर्थक है। इसके विरुद्ध वह पुत्र वास्तव मे सुपुत्र है और उसका जन्म सार्थक है, जो अपने बल-पराक्रम से अपने सद् व्यवहार से और अपनी बुद्धि के वैभव से माता-पिता को सन्तुष्ट ओर प्रसन्न करता है।

प्रद्युम्नकुमार अन्तिम श्रेणी मे प्रथम गणना करने योग्य सुपुत्र था। उसके कार्य-कलाप माता-पिता को आनन्द देने वाले थे। राजा यमसंवर को ज्योंही विजय लक्ष्मी के साथ प्रद्युम्न के आगमन का संवाद मिला, वह तत्काल उसके सामने चल दिया। उसे बहुमूल्य मोतियों से बधाया ! प्रीतिपूर्वक छाती से लगाया। कुमार ने शान-शौकत के साथ नगर मे प्रवेश किया। नगर-निवासीजन कुमार के अपूर्व तेज को देखकर वाह-वाह करने लगे, सभी कुमार की यशोगाथा गाने लगे।

इस प्रकार जब दूसरे लोक भी कुमार को देख-देख कर प्रसन्न हो रहे थे तो माता-पिता का तो कहना ही क्या है ? वास्तव मे यह सब पुण्य की महिमा है। पुण्य के प्रताप से मनुष्य जहाँ कहो भी जाता है, सर्वत्र आदर पाता है। सभी उसकी प्रशंसा करते है। वह सभी के लिए स्पृहणीय हो जाता है।

राजा यमसंवर ने विचार किया—यद्यपि कुमार को बन मे युवराज पद दिया जा चुका है, तथापि जब सर्वसाधारण के समक्ष, प्रजा के पदाधिकारियों की और परिवारिक जनों की साक्षी से भी उसे युवराज पद प्रदान करना उचित है। इस प्रकार विचार करके कुमार को खूब आडम्बर के साथ—बड़ी

धूमधाम के साथ—राजा ने युवराज-पद प्रदान कर दिया। राज्य का उत्तरदायित्व उसके हाथों मे सौंप दिया गया। इस आनन्द-अवसर पर याचकों को विपुल दान दिया गया और इस कारण याचकों मे भी कुमार की कीर्ति फैल गई।

कुमार प्रद्युम्न के सद्‌गुणों का सौरभ दिनोदिन फैलता जा रहा था। उसके रूप, तेज, बल-पराक्रम और उदारता आदि गुणों की महिमा समस्त राज्य मे फैल गई थी। जहां देखो वहीं कुमार लोगों की चर्चा का विषय बन रहा था। क्या याचक-जन और क्या सुजन, सभी कुमार की भूरि, भूरि प्रशंसा करते थे।

प्रद्युम्न कुमार की पाँच सौ सौतेली माताएं थी और पांच सौही उसके सौतेले भाई थे। उसके यश और गुणों की प्रशंसा से अगर कोई प्रसन्न नही था तो बस यही लोग! सौतेली माताएं सोचती थी-देखो, हमारे कुमार को कोई टके सेर भी नही पूछता है और प्रद्युम्न की सभी प्रशंसा करते है! उनके मन मे ईर्षा की आग प्रज्वलित हो गई। ज्यों-ज्यों कुमार की प्रतिष्ठा और प्रशंसा मे वृद्धि होती जाती थी, त्यों-त्यों उनकी ईर्षाग्नि प्रज्वलित होती हुई बढती जा रही थी। ठीकही कहा हैः—

दह्यमानाः सुतीव्रेण नीचा परयशोऽग्निना।
अशक्तास्तत्पदं गन्तु, ततो निन्दा प्रकुर्वते॥

निम्न श्रेणी के लोग जब किसी की बराबरी मे असमर्थ होते है तब दूसरे के यश रूपी अत्यन्त तीव्र आग से जलते हुए

उसकी निन्दा करने मे तत्पर हो जाते है। जो स्वयं उच्चता नही पा सकते वे उच्चता पाने वाले की निन्दा करके ही सन्तोष मान लेते है।

विवेकशील पुरुष कभी ईर्षा नही करते। वे किसी को अपने से अधिक गुणवान्, ज्ञानवान्, वैभववान्, सुन्दर या सदाचारी पाते है तो उसे देखकर प्रमोद-भाव धारण करते है व हर्ष मानते है। ऐसा करने से उनके अन्तःकरण को शान्ति प्राप्त होती है और गुणों के प्रति प्रीतिभाव धारण करने से उनको भी गुणों की प्राप्ति होती है। किन्तु अविवेकी और क्षुद्र आशय वाले जीव व्यर्थ ही ईर्षा की ज्वालाओं मे अपनी शान्ति और सुख को भस्म करके संतप्त होते है।

प्रद्युम्न कुमार के प्रति ईर्षा का भाव जागृत होने पर उसकी सौतेली माताओं ने अपने-अपने पुत्रों को बुलाकर कहा—देखो, यह प्रद्युम्न थोड़े ही दिनों मे युवराज बन बैठा है और निश्चितरूप से उसी को राज्य मिलने वाला है। प्रद्युम्न राजा होगा और कनकमाला को राजमाता की प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। तुम और हम सब मुंह ताकते रह जायेंगे! तुम भी तो राजकुमार हो, सब एक ही बीज से उत्पन्न हुए हो! फिर निरुत्साह और निराश क्यों हो रहे हो? मन मे कायरता धारण किये क्यों बैठे हो? इस प्रकार लांछीत होकर, नगण्यों की श्रेणी मे अपना नाम लिखवाकर जीवित रहनेवाले धिक्कार के योग्य हैं।

गुणिगणगणनारम्भे, न पतति कठिनी सुसम्भ्रमाद्यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी, वद वन्ध्या कीदृशो नाम ?॥

गुणीजनों की गणना करते समय जिस पुरुष के ऊपर गणना करने वाले की उंगली नही पड़ती, अर्थात् जो गुणियों की गिनती मे नही गिना जाता ऐसे पुत्र को जन्म देकर अगर माता पुत्रवती कहलाती हो तो बताओ वन्ध्या किसें कहते है ? सारांश यह है कि उस पुत्र का जन्म लेना और न लेना बराबर ही हैं ?

इस प्रकार अपनी माताओं के द्वारा भड़काये हुए राजकुमार किस मार्ग का अवलम्बन करते हैं और उसका क्या परिणाम निकलता है, यह वृत्तान्त आगे के पृष्ठों मे अंकित किया जायेगा।

: ९ :

सफलता का श्री गणेश

प्रद्युम्न कुमार की कथा एक प्रकार से पुण्य के प्रबल परिपाक से मनुष्य की क्या स्थिति होती है और संकटों के समय पुण्य किस प्रकार सहाय्यक होता है, यह बात प्रद्युम्न के चरित से एकदम स्पष्ट हो जाती है। उसके जीवन पर यह उक्ति सोलहों आना चरितार्थ होती है—

अरक्षितं तिष्टति दैवरक्षितं ।
सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ।।

पुण्य जिसका रक्षक है वह विना रक्षा के भी सुरक्षित रहता है, और जिसका पुण्य क्षीण हो गया है या जिसने पुण्य का उपार्जन ही नही किया है, उसके सहस्त्रो रक्षक हो तो भी वह विनष्ट हुए बिना नही रह सकता ।

राजा यमसंवर के दूसरे पुत्र और प्रद्युम्न के सौतेले भाई अपनी-अपनी माता के द्वारा उत्तेजना पाकर ईर्षा की अग्नि-ज्वालाओं मे दग्ध होने लगे । वे बोले—माता, प्रद्युम्न कुमार जैसे आपके हृदय मे चुभ रहा है, उसी प्रकार हमारे हृदय मे भी चुभ रहा है । वह हमारे हृदय मे चुभा हुआ तीक्ष्ण काँटा है । उसे नष्ट करके ही दम लेंगे । यदि हम इस संकट को दूर न कर सके तो अपने बाप के बेटे नही ! हम आपको अपना मुंह नही दिखलायेंगें ! !

अहा ! कितनी विपरीत विचार धारा है ! कैसा अविचार पूर्ण निर्णय है ! अगर यह कुमार सद्गुण प्राप्त करने की भावना को लेकर प्रद्युम्न की प्रतिस्पर्धा करते तो उनका कल्याण हो जाता ! उन्होंने सोचा होता कि हम प्रद्युम्नकुमार की अपेक्षा अधिक वीरता और धीरता प्राप्त करके उससे भी अधिक प्रशंसा और प्रतिष्ठा के पात्र बनने का उद्योग करेंगे तो कितना अच्छा होता ! उनका भी जीवन उच्च, पवित्र और यशपूर्ण वन जाता ! मगर उन्होने विपरीत ही

रास्ता पकड़ा। वे प्रद्युम्न का अनिष्ट करने के लिए उद्यत हुए।

सब कुमारों ने मिलकर प्रद्युम्न का प्राण लेने का संकल्प किया। यो तो वे उसका कुछ बिगाड़ नही सकते थे, अतः कपट का आश्रय लेने का मार्ग उन्होंने अपनाया। कायर हृदय कपट को ही अपना हथियार बनाता है। वे लोग योजना निश्चित करके प्रद्युम्न के पास पहुचे। उससे बोले—बन्धुवर ! आप युवराज हैं। अतएव हमारे स्वामी के समान हैं। आप बुद्धि और बल के भण्डार हैं। हम सब आपके दास के समान हैं। हमपर सदा दयाभाव रखना।

प्रद्युम्न ने कहा—बन्धुओ ! तुम्हारे और मेरे बीच कोई अन्तर नही है। हम सब भाई भाई है। सब एक दूसरे के लिए प्राणों के समान प्रिय होने चाहीए। युवराज-पद का उत्तरदायित्व मुझपर डाला गया है, मगर उस पद के गौरव मे आप सब का समान अधिकार है।

इस प्रकार मीठी-मीठी बातें करके दूसरे राजकुमार प्रद्युम्न के संसर्ग मे रहने लगे। सभी उसके फर्माबरदार बन गये। वह जो भी कुछ कहता, तत्काल 'जो आज्ञा' कह कर वे उसे स्वीकार करके और अत्यन्त नम्रतापूर्ण प्रदर्शन करते। साथ-साथ सैर करने जाते। मगर उनकी गुप्त कारवाइयां चालू ही थीं। भोजन-पानी मे वे विष को मिलाकर प्रद्युम्न को खिला-पिला देते थे। मगर—

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षतं !

सौभाग्य जिसका सहायक हो, उसका कौन क्या बिगाड़ सकता है ? प्रद्युम्न के लिए विष भी पीयूष के रूप मे परिणत हो जाता था ! मगर उससे प्रद्युम्न का किंचित् भी अनिष्ट नही होता था। कई बार गाढ़ निद्रामे सोये हुए प्रद्युम्न पर शस्त्रों का प्रहार किया गया, मगर शस्त्र भी उसके लिये पुष्प के रूप मे परिणत हो गये ! जब कुमारो ने देखा कि इस वज्र-कुमार पर शस्त्र प्रहार भी निरर्थक सिद्ध हो रहा हैं तो उन्होंने मांत्रिकों की सहायता ली। मगर मंत्र भी उस पर नही चल सके। भूत, प्रेत आदि व्यन्तर भी प्रद्युम्न कुमार के प्रकृष्ट पुण्य के आगे नतमस्तक और पराजित हो गए।

इस प्रकार द्वेष–दग्ध राजकुमारो ने प्रद्युम्न के प्राण लेने के सभी उपाय किये, मगर उन्हें सफलता नही मिल सकी। उनके मंसूबे मिट्टी मे मिल गये। अपनी असफलता देखकर और प्रद्युम्न के पुण्य की प्रबलता का विचार करके वे चकित रह गये। फिर भी वे अपनी दुष्टता से बाज न आये। उन्होंने अप्रशस्त मार्ग छोड़ कर प्रशस्त मार्ग की ओर अपने पैर नही बढ़ाये। बल्कि दुष्टता की पराकाष्ठा पर पहुँचने का सकल्प किया।

सभी कुमारों ने मिलकर इस बार बड़ा ही भीषण षड्यन्त्र रचकर उसे कामयाब करने की तरकीब भी सोच ली।

सभी कुमार मिलकर युवराज प्रद्युम्न के पास पहुंचे और उनके सामने कन्दुक-क्रीड़ा (गेंद खेलने) का प्रस्ताव उपस्थित

किया। युवराज तैयार हो गये। सब गोपुर गुफा के पास आये। एक तरफ अकेले प्रद्युम्न और दूसरी तरफ पाँचसौ राजकुमार मिलकर गेंद खेलने लगे।

प्रद्युम्न ने गेंद मे ज्यों ही डण्डा लगाया, गेंद गोपुर गुफा मे चला गया। उसके विरोधी कुमार यही चाहते थे। उनकी योजना यही थी की प्रद्युम्न को किसी बहाने गुफा मे भेजा जाय। गुफा मे घुसने के पश्चात वह वापिस नही लौट सकेगा। गुफा का निवासी राक्षस उसे यमलोक पहुंचा देगा। अब, जब कि गेंद गुफा मे चला गया तो सभी राजकुमार कहने लगे--आपने गुफा मे गेंद डाला है, इसलिए आप ही लाइए।

प्रद्युम्न निर्भय वीर थे। गुफा मे क्या, पाताल लोक तक जाने में भी वे डरते नही थे। अतएव बिना आनाकानी किये वे गुफा मे घुस पड़े। गुफा अत्यन्त भीषण थी और उसमे रहनेवाला राक्षस तो साक्षात् यमराज मालूम होता था। कुमार ने ज्यो ही गुफा मे प्रवेश किया और राक्षस को पता चला कि वह भयानक गर्जना करता हुआ और ताल ठोंकता हुआ कुमार की ओर दौड़ा। साधारण व्यक्ति होता तो राक्षस का डरावना रूप देखते ही चेतना हीन हो जाता, प्राण छोड़ देता मगर प्रद्युम्न सच्चा मर्द था और आदर्श क्षत्रिय था। क्षणभर के लिये भी वह भयभीत नही हुआ। वह वीरता के साथ राक्षस से भिड़ गया। दोनो मे घोर युद्ध होने लगा। कुमार ने अपनी भुजाओं का बल,-विद्या बल और पुण्य के बल से राक्षस को नीचे गिरा दिया और उसकी छाती-

पर चढ़ बैठा। राक्षस प्रद्युम्न का अलौकिक बल और साहस देखकर चकित हुआ। उसने दीनतापूर्वक कहा—अब मैं आपका दास हूं। कृपा कर के मुझे छोड़ दीजिये।

कुमार ने राक्षस को उसी समय छोड़ दिया। राक्षस अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। राक्षसने कुमार को मन्त्र, भण्डार, राजमुकुट तथा आभूषण भेंट रूप मे दिये। इस प्रकार गेंद और राक्षसका उपहार लेकर कुमार सकुशल वापिस लौट आया। उसके विरोधियों की आशाएं धूल मे मिल गई।

मगर वे लोग भी सरलतासे मानने वाले नही थे। उन्होने इसी प्रकार दुसरा कंट रच कर प्रद्युम्न को दूसरी गुफा मे भेजा। वहाँ भी उसे एक असुर से युद्ध करना पडा। इस असुर ने भी पराजित होकर कुमार कोभेंट रुपमें वहुमूल्य वस्तूएं प्रदान की। इसने एक सुन्दर छत्र, शाही चामर का जोडा और सदैव खिले रहने वाले फूलों का वस्त्र दिया। यह चार चीजें लेकर कुमार फिर लौट आया।

कपटी कुमार इतने करने भी शान्त नही हुअे। उन्होंने अब की बार तीसरी गुफा में उसे भेजा। उनका ख्याल था कि इस वारि प्रद्युम्न अवश्य मारा नायगा। मगर 'जाको राखे साँइया, मार सके नही कोय।' पुण्य जिसकी रक्षा करता है उसे मारने की शक्ति जगत् मे किसी मे नही है।

हाँ तो कुमार तीसरी गुफा मे बेधड़क चला गया। उसमे नागराज का निवास था। प्रद्युम्न को देखते ही नाग ने भीषण

फुत्कार मारी। नाग की विषमयी फुत्कार से वायुमंडल विषैला हो गया, मगर चरमशरीरी प्रद्युम्न का बाल भी बाँका न हुआ। वह मुस्कराता हुआ ज्यों का त्यों खड़ा रहा। नागराज ने समझ लिया कि यह कोई साधारण मानव नही है। यह अपूर्व पुण्य का पुतला कोई असाधारण पुरुष है। नागराज प्रद्युम्न की निर्भयता, साहसिकता और धीरता देखकर परम प्रसन्न हुआ। उसने कुमार को दिव्य सिंहासन दिया, बहुमूल्य वस्त्र तथा आभूषण दिये और दो विद्याएँ प्रदान की। एक विद्या सुन्दर भवन निर्माण कर लेने की और दूसरी विद्या सेना की रक्षा करने की दी। तत्पश्चात् कुमार हर्षित होता हुआ वहाँ लौट आया जहाँ दूसरे कुमार खेल रहे थे।

इस प्रकार चौथी बार उन्होंने प्रद्युम्न को एक वापी मे भेजा। प्रद्युम्न वापी मे चला गया और जितनी गहराई मे जाना संभव था, चलता ही गया। वहाँ मकरध्वज नामक एक असुर निवास करता था। उसने कुमार के प्रखर पुण्य से प्रभावित होकर मकर चिन्ह वाली ध्वजा उपहार मे दी। उसी समय से प्रद्युम्न 'मकरध्वज' कहलाने लगे। प्रद्युम्न जब मकरध्वज होकर सकुशल और सानन्द लौट आया तो उसके भाइयों के आश्चर्य का पार न रहा।

इस बार कुमारों ने मिलकर आपस मे यह निश्चय किया कि हम लोग अग्निकुण्ड वाली गिरि पर खेलने चलें और जो हार जायगा उसे उस अग्निकुण्ड मे गिरना पड़ेगा। प्रद्युम्न ने यह शर्त स्वीकार कर ली। अब तक उसे जो सफलताएँ मिली थीं, उनसे उसे असीम साहस और अमित

बल प्राप्त हो गया था। अतएव वह इस कठोर शर्त को स्वीकार करने मे तनिक भी नही झिझका। यही नही, उसे अग्निकुण्ड मे कूदने की लालसा भी हुई। संभवत: इसी कारण कुमार हार गया। हार कर वह अग्निकुण्ड मे प्रविष्ट हुआ। वहां भी एक देवता को सन्तुष्ट करके उसने कनक-वस्त्रों का एक जोड़ा प्राप्त किया इन वस्त्रों की विशेषता यह थी कि उन्हें पहन लेने पर शरीर पर आग का असर नही होता था।

इसी प्रकार छठी बार वह मेषाकार कूट मे गया। वहां गेंद खेलने मे हारने पर साहस पूर्वक उसके बीच मे से निकला। कुमार की शीघ्रता देखकर देवता प्रसन्न हुआ और उसने कुण्डलों की जोड़ी भेंट की।

सातवी बार कुमार एक आम्र-वृक्ष पर चढ़ा। वहां एक असुर से युद्ध करके और उसे पराजित करके उसने खड़ाऊं उपहार मे प्राप्त की। उस खड़ाऊँ की करामात यह थी कि उसे पहन लेने पर वह आकाश मे उड़ सकता था।

आठवी वार मे प्रद्युम्न एक वन मे गया। वहाँ हाथी का रूप धारण किये हुए एक असुर से उसका सामना हुआ। असुर पराजित हो गया। वह कुमार के अधिन होकर बोला---आप जब कभी मुझे स्मरण करेंगे मै आपकी सेवा मे उपस्थित हो जाऊँगा।

नौवीं बार कुमार ने एक पर्वत पर आरोहण किया। वहां भुजंग-सुर के साथ उसकी भिड़न्त हो गई। कुमार

विजयी हुआ । सुर ने संतुष्ट होकर उसे एक अश्वरत्न प्रदान किया और शरीर की अमोघ रक्षा के लिये एक दिव्य कवच भी दिया । उसने जगत मोहिनी एक मुद्रिका भी भेंट की । वह वस्तुएँ पाकर कुमार वापिस लौट आया ।

दशवी बार मे कुमार नें श्रावमुख नामक पहाड़ के ऊपर एक दैत्य को पराजित किया । उसने रत्नमय कंठी और करधनी (कटिसूत्र) उपहार मे देकर अपना सन्तोष प्रकट किया ।

ग्यारहवी बार कुमार ब्रहान नामक वन मे गया । वहां उसे पुष्प-धनुष्य की प्राप्ति हुई और शत्रुओं को उद्विग्न व भय-भीत कर देने वाले जय-शंख की प्राप्ति हुई ।

बारहवीं वार कुमार पंकजवन मे पहुँचा। वहाँ एक विद्याधर निवास करता था। उसे पराजित करके कुमार ने बाँध लिया। मुक्ति की प्रार्थना करने पर कुमारने उसे छोड़ दिया। उसने इन्द्राणी के समान अपनी सुरूपवती कन्या प्रद्युम्न कुमार को ब्याह दी। साथ ही दो विद्याएँ भी दहेज के रूप में दी। उनमे एक विद्या रूप बदलने की थी। दूसरी भी इसी प्रकार की थी। हार पहनकर वह मन चाहा रूप वना सकता था।

तेरहवी वार कुमार ने काल-वन दैत्य पर विजय प्राप्त की। दैत्य ने उसे पुष्पमय धनुष्य और वाण प्रदान किया। साथ ही युवती जन में उन्माद पैदा करने वाला, ज्वरादि

ताप नाश करने वाला, कामदेव को वश करने वाला, मनमोहन रूप देनेवाला,मनमोहिनी वाणी प्रदान करने वाला पाणी भी प्रदान किया। यह भेट पाकर प्रद्युम्न साक्षात् कामदेव के रूप मे प्रकट हुए। तभी से प्रद्युम्न का नाम 'मदनकुमार' विख्यात हो गया।

चौदहवी वार कुमार भीम गुफा मे गये। वहां उन्हें कीर्तिकारक पुष्पमय शय्या और पुष्पमय छत्र की प्राप्ति हुई।

प्रद्युम्न कुमार को जो दिव्य वस्तुएँ प्राप्त हुई, सव पुण्य के प्रताप से ही। इस जगत् मे पुण्य की महिमा असीम है। अतएव जो जीव सुख की अभिलाषा करते हैं, उन्हें पाप का परित्याग करके पुण्य का संचय करना चाहिए। लोग समझते हैं कि धन-सम्पत्ति, सेना, परिवार के लोग और नौकर-चाकर हमारी रक्षा करते हैं, किन्तु यह उनका भ्रम है। वास्तव मे पुण्य ही एक मात्र रक्षक हैं। पुण्य जव प्रवल होता हैं तो देवता भी कुछ नही विगाड़ सकते और जब पुण्य क्षीण हो जाता है तो हितैषी भी शत्रु बन जाते हैं और कोई भी भौतिक शक्ति काम नही आती। कहा भी है:—

विपिन वन्हि जलनिधि विषें, पुण्य एक रखवाल।
जिण संच्यो सुकृत सिरे, तिणथी डरपै काल॥

पुण्यात्मा पुरुष चाहे अटवी मे चला जाय, वन्हि के कुण्ड मे प्रवेश कर जाय अथवा समुद्र में चला जाय, उसका वाल भी वाँका नही हो सकता। जिन्होने प्रवल पुण्य का उपार्जन किया है, उनसे यमराज भी भयभीत होता है!

प्रद्युम्न को उसके शत्रु कुमारो ने ऐसे स्थानो पर भेजा, जहाँ यमराज का नृत्य हो रहा था, मगर वहाँ से वह असाधारण वस्तुएं उपहार में लाया। उसके लाभ को देख-देख कर शत्रुओं के हृदय मे दाह उत्पन्न होने लगा।

फिर भी उसके शत्रुओं की आँखें न खुली। दुष्ट लोग अपनी दुष्टता से उपरत न हुए। प्रद्युम्न को छलने के लिए उन्होंने जो नीचतापूर्ण कृत्य किये, उनका दिग्दर्शन आगे कराया जायगा।

: १० :

पाणिग्रहण

विपुल नामक वन अत्यन्त भयानक था। इतना भयानक कि जो भी भुल-चूक से वहां जा पहुँचा, वापिस नही लौटा। उसे यमलोक का ही रास्ता पकड़ना पड़ा। प्रद्युम्न कुमार पन्द्रवी वार इसी वन में कन्दुक क्रीड़ा करने गया। उसके अशुभ-चिन्तक भाइयों ने सोचा—इस वार प्रद्युम्न अवश्य मारा जायेगा और हमारे रास्ते का काँटा सदा के लिये दूर हो जायेगा।

प्रद्युम्न भाइयों के साथ वहाँ पहुँचा। खेल आरम्भ हुआ। गेंद उछल कर वड़ी दूर चला गया। निर्भय प्रद्युम्न किसी प्रकार

का संकोच किये विना ही गेंद के पीछे लपका। उसे विपुल वन की भयानकता का भली-भाँति पता था, फिर भी वह साहसी वीर उसमे बेधड़क चला गया।

उस वन मे नगाजयंती नाम की एक नदी थी। नदी के किनारे एक विशाल वृक्ष था। उस वृक्ष के नीचे, शिला पर एक ध्यान-मग्न बाला बैठी थी। वह असाधारण सौन्दर्य सम्पत्ति से सुशोभीत हो रही थी। नवयौवन के झूले में झुल रही थी। ऐसी रूपवती थी कि इन्द्र का मन हरण करने वाली शची भी उसके सामने तुच्छ थी। साक्षात् रति की प्रतिकृति थी। चन्द्रबिम्ब के समान सौम्य मुख और गौर वर्ण उसकी शोभा बढा रहा था! उसके सिर के बाल खुले हुए थे। वह श्वेत स्फटिक की शिला पर बैठी हुए थी और श्वेत वस्त्रों से ही उसका शरीर वेष्टित था। दाहिने हाथ मे स्फटिक की माला लिये वह रूपराशि अनिन्द्य-सुन्दरी कुमारी किसी प्रयोजन से उस वीहड़ एकान्त मे तपश्चर्या मे लीन थी। उसका असदृश सौन्दर्य बड़ा ही मनोहर था।

कुमार प्रद्युम्न संयोगवश उसके निकट जा पहुँचा। सुन्दरी पर दृष्टि पड़ते ही प्रद्युम्न पंचशर-काम से आहत हो गया। उसका मुख मण्डल देखते ही वह बेसुध हो गया।

कुमार का आगमन और काम से पीड़ित होना देख एक विद्याधर वहाँ पहुँचा। उसने कुमार को 'जुहारु' करके शिष्टाचार का पालन किया। कुमार दूसरे पुरुष को अपने सामने देखकर और अपनी स्थिति का विचार करके कुछ

लज्जित हुआ । वह अभी तक उस सुन्दरी को अनिमेष दृष्टि से देख रहा था, अब उसने दूसरी और दृष्टि घुमाई । तब विद्याधर ने कुमार से निवेदन किया–हे पुण्य के अक्षय कोष ! आपके लज्जित और संकुचित होने का कोई कारण नही । यह बाला आपके लिए ही हैं ।

प्रद्युम्न ने फिर भी लज्जाते हुए कहा—अनुग्रह कर यह तो बतलाइये कि यह सुन्दरी किस उद्देश्य से यहाँ ध्यान कर रही है ?

विद्याधर बोला—सुनिए, आपको समग्र वृत्तान्त बतलाता हूं ।

इतना कहकर विद्याधर ने वृत्तांत सुनाना आरम्भ किया–नगपुर के अधीश्वर, विद्याधरों के राजा प्रभंजन हैं । उनकी पटरानी का नाम वागदेवी है ! यह सुन्दरी उनकी कन्या है ।

एक बार राजा प्रभंजन के दरबार मे अष्टांगनिमित्त के वेत्ता एक विद्वान का आगमन हुआ । राजा ने अपनी कुमारी के वर के विषय मे उनसे प्रश्न किया । तब निमित्तवेत्ता ने कहा–विपुल वन मे गेंद खेलते हुए प्रद्युम्न कुमार आएंगे और वही इस कुमारी के वर होंगे । उन्होंने तिथि, वार, नक्षत्र और आने के सूचक लक्षण–सभी कुछ बतला दिया था । इस प्रकार यह बाला पति-प्राप्ति की कामना से, स्थिर-चित्त होकर साधना कर रही है । इसके पुण्य के उदय से, बतलाये हुए लक्षणों के अनुसार आपका पदार्पण हुआ है । नही कहा जा सकता

कि इसका पुण्य आपको यहां खींच लाया है अथवा आपका पुण्य इसे यहाँ ले आया है ? कुछ भी हो, यह सुन्दरी आपके सर्वथा योग्य है। आप महाराजा प्रभंजन के नगर मे पधारीये और इसे विधिपूर्वक अंगीकार करके हम सबको उपकृत कीजिए।

विद्याधर की बात सुनकर प्रद्युम्न को अत्यन्त हर्ष हुआ। वह विद्याधर के साथ ही नगपुर की ओर रवाना हो गया।

प्रद्युम्न को वन मे गये काफी समय हो चुका था। उसके भाइयों ने सोचा—वह अब तक नही लौटा है तो अब कभी नही लौटेगा। वह निश्चित ही यमधाम पहूंच चुका है ! चलो, इतने दिनों का परिश्रम सार्थक हुआ। अभीष्ट सिद्ध हो गया। हमारे रास्ते का रोड़ा हट गया ! हाथ खून से रंगे बीना ही दुश्मन का विनाश हो गया।

इसी प्रकार की कल्पनाएं करके वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्हे ऐसा हर्ष हुआ, मानो गंवाया हुआ राज्य फिर मिल गया हो ! वे प्रसन्न होते हुए नगर मे पहुंचे। सबने अपनी-अपनी माता के पास जाकर अपनी सफलता की घोषणा कर दी। उनकी माताओं को भी असीम आनन्द हुआ।

कनकमाला के पास भी यह दुःसंवाद पहुंचा। इसे सुनते ही वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ी। होश आया तो 'प्रद्युम्न' के नाम को रटने लगी और बिना पानी की मछली के समान तड़फड़ाने लगी। उसकी वेदना का पार न रहा।

राजा यमसंवर को कनकमाला का हाल मालूम हुआ तो वह दौड़े हुए आए। उन्होंने रानी को आश्वासन देते हुए कहा—प्रिये ! चिंता करने का कोई कारण नही है। आंसू बहा कर अमंगल मत करो। प्रद्युम्न महान् पूण्यशाली है। निश्चित समझो कि वह मारा नही जा सकता, उसका रंचमात्र अनिष्ट भी नही हो सकता वह जहां कही भी होगा, सकुशल होगा, आनन्द मे होगा। शीघ्र ही तुम उसे देख सकोगी। वह कोई साधारण व्यक्ति नही है जो अकाल मे ही काल के गाल मे चला जाय।

अपने पति से इस प्रकार आश्वासन पाकर रानी कनकमाला को कुछ धीरज बंधी, फिर भी उसका हृदय शान्त नही हो सका। उसका एक-एक क्षण युग के समान व्यतीत होने लगा। वह प्रद्युम्न को देखने के लिए अतीव आतुर रहने लगी।

उधर प्रद्युम्न जब नगपुर पहुंचे तो राजा प्रभंजन का समस्त परिवार उन्हें देखकर हर्षित हो उठा। शुभ मुहूर्त मे उनका पाणिग्रहण संस्कार किया गया। कामदेव और रति की जोड़ी मिल गई। कुमारी के माता-पिता की अभिलाषा पूर्ण हुई। उन्हें जैसा जामात चाहिए, वैसा ही मिल गया !

कुछ दिन नगपुर मे निवास करके प्रद्युम्न पत्नी आदि परिवार के साथ वापिस लौटा। लौटते समय उसी भीम वन से विश्राम लेने के लिए ठहरा। तब उस वन का स्वामी शकटासुर उस पर कुपित हो उठा व दोनों मे युद्ध ठन गया। आखिर शकटासुर को पराजित होना पड़ा। शकटासुर, कुमार

की वीरता, धीरता और गुणगरिष्ठता देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने प्रेम-भाव से कुमार को दो उत्तम पदार्थ भेंट मे दिये-एक दूध पीने के लिए कामधेनु और दूसरा पुष्पों का सुन्दर रथ !

प्रद्युम्न अपनी नव-वधू के साथ पुष्प-रथ पर आरूढ़ हो कर आगे बढ़े और अपनी नगरी के बाहर आकर ठहर गये। उसने अपने मन्त्री को पिता के पास भेजा। मन्त्री ने राजा यमसंवर के दरबार मे उपस्थित होकर प्रद्युम्नकुमार के आगमन का संवाद सुनाया और पिछला समग्र वृत्तान्त भी कह सुनाया। उस समय दरबार मे जितने भी लोग उपस्थित थे, सब को अपूर्व हर्ष हुआ, फिर माता-पिता के हर्ष का तो कहना ही क्या था ! उनके लिए तो प्रद्युम्न प्राणों से भी अधिक प्यारा था। उसके सकुशल और सफलता के साथ आने का समाचार सुनकर कनकमाला के हृदय मे हर्ष की हिलोरे उठने लगी। राजा भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

सभी ने कुमार को स्वागत के साथ नगर मे लाने का निश्चय किया। चतुरंगी सेना सजाई गई। सैनिकों और नागरिकों मे सजावट को लेकर होड़-सी मच गई। समग्र नगर ध्वजापताका आदि से सजाया गया। क्या नर और क्या नारी, हर्ष की उत्ताल तरंगो में बहने लगे। बाजों की ध्वनि से दूर-दूर तक वायुमण्डल ध्वनित हो उठा। सब लोग बड़े ठाठ के साथ कुमार का स्वागत करने के लिए रवाना हुए। कुमार ने माता, पिता, नगर-निवासियों और सैनिकों को आते देखा

तो वह भी आगे बढ़ा। माता-पिता के चरणों मे प्रणाम किया और सब के प्रति यथोचित शिष्टाचार प्रदर्शित किया।

उस समय प्रद्युम्न के साथ जो वैभव था, उसे देखकर सब लोग आश्चर्यान्वित हो गये! कोई मन ही मन और कोई वाणी से उसके पुण्य की सराहना करने लगे। किसी ने कहा—कुमार के माता-पिता धन्य है, जिन्हें ऐसे पुण्यशाली पुत्र की प्राप्ति हुई है! कोई बोला-यह सब पुण्य का प्रभाव है! जो प्राणी पूर्व मे पुण्य का संचय करके आया है, उसी को इस प्रकार का असाधारण वैभव प्राप्त होता है। अतएव संसार मे सुखी रहने के लिए पापाचार से बच कर पुण्य का उपार्जन करना ही योग्य है।

: ११ :

पानी में भी आग

कुमार प्रद्युम्न एक विशाल शाही जुलुस के साथ नगर मे प्रविष्ट हुए। प्रशस्त मुहूर्त मे पुष्परथ पर आरूढ़ होकर, मदन, रति के साथ देव की भांति सुशोभित हो रहे थे। विद्याधर सुन्दरियाँ उनके सिर पर चँवर ढुला रही थी, एक सुंदरी छत्र लिये खड़ी थी। किसी ने जल की झारी ले रक्खी

थी, कोई फुलों के गुलदस्ते लिए थी। तम्बोली पान के वीड़े बना रहा था। सामने की ओर छड़ीदार और चोवदार खड़े-खड़े जय-विजय की ध्वनि का उच्चारण कर रहे थे।

प्रद्युम्न के पांच सौ भाई भी साथ थे। शिष्टाचार का प्रदर्शन करने और अपनी उत्कंठा को तृप्त करने के लिए वे कुमार के सामने गये थे। प्रद्युम्न का असीम और विस्मय जनक वैभव देख-देख कर उनके मन मे कुढ़न हो रही थी। उनका चेहरा मुरझाया हुआ था।

आगे वढ़ता हुआ जुलूस नगर मे प्रविष्ट हुआ और बाजार के बीच मे होकर जाने लगा। नर-नारी कौतुक देखने लिए अपने-अपने मकानों के छज्जों पर इकट्ठे हो गये। बाल, वृद्ध और तरुण रमणियों के झुण्ड दोनों ओर जमा हो गये। उत्कंठा की प्रबलता इतनी थी कि उन्हें अपने तन और वसन की भी सुध नही रही। कोई घाघरा सिर पर और ओढ़नी कमर पर पहनकर छज्जे की ओर दौड़ी। जो आभुषण पहन रही थी उनमे से किसी ने करधनी गले में और हार कमर मे लटका लिया। जल्दबाजी के कारण किसी का हार टूट गया और मोतियों के दाने धरती पर बिखर गये। किसी किसी ने आँखों मे कुंकुम और ललाट पर काजल लगा लिया। कोई कोई तो कपड़ा पहने बिना ही लाज-शर्म भूल कर प्रद्युम्न को देखने के लिए दौड़ पड़ी। जो पति को जिमा रही थी, वे यों हीं दौड़ आई—पति को परोसना भूल गई। किसी-किसी का बालक रोता ही रह

गया। कोई कोई घर द्वार उघाड़ा छोड कर भागी। एक चाहती थी—मैं आगे निकल जाऊँ और दूसरी चाहती थी कि मैं उससे भी पहले पहुँच जाऊँ! प्रद्युम्न कुमार को देखकर कितनीक स्त्रियां इतनी विमुग्ध हो गई कि उन्हें श्वसुर, जेठ, देवर आदि की उपस्थिति का भान ही नही रहा।

इस प्रकार नगर के बाजार मे एक अपूर्व और अद्भुत दृश्य दिखाई देने लगा। प्रद्युम्न के पूर्वाजित पूण्य के प्रभाव ने, क्या नर और क्या नारियाँ, सभी को विस्मय-विमुग्ध कर दिया। स्त्रियों पर जैसे जादू चल गया। वे एक दूसरी पर गिरने पड़ने लगीं, एक दूसरी के आगे होने का प्रयत्न करने लगीं। कोई-कोई कहने लगी—अहा! यह रमणीरत्न रति धन्य है जिसे मदन के समान पति की प्राप्ति हुई हैं। किसी ने कहा—मदन कुमार भाग्यशाली हैं जिन्हें रति के सदृश पत्नी प्राप्त हुई हैं! इस प्रकार आपस मे तरह तरह की बातें करती हुई स्त्रियां प्रद्युम्न की सराहना करने लगी। रास्ता और छज्जे भीड़ से भरे हुए थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानों समग्र नगर उसी राजपथ पर जमा हो गया है। नर-नारियों के ठठ्ठ के ठट्ठ लगे थे। सभी निर्निमेष दृष्टि से प्रद्युम्न और रति के अनुपम सौन्दर्य को देख रहे थे।

इस तरह ठाठ के साथ चलता हुआ जुलूस धीरे-धीरे राजद्वार पर आ पहुँचा। प्रद्युम्न राजसभा मे पहुँचे। पिता ने उन्हें सिंहासन पर बिठलाया। उस समय प्रद्युम्न विनय

के वश होकर फिर पिता के चरणों मे नतमस्तक हुए। पिता ने उन्हें छाती से लगा लिया और प्रेम तथा हर्ष से विभोर होकर चुम्बन किया! चिरंजीव होने का आशिवाद दिया।

माता कनकमाला की उस समय की स्थिति का वर्णन करना सम्भव नही है। उसे मानो गये हुए प्राण वापिस मिल गये। उसका हृदय हर्ष की अधिकता को संभालन मे असमर्थसा हो गया! जिस समय कुमार ने माता के चरणों मे नमस्कार किया, माता ने इन्द्राणी को भी अपने सामने तुच्छ समझा! उसने प्रद्युम्न को अपने हृदय से चिपका लिया! कुमार भी माता की अद्भुत ममता देखकर गद्गद हो उठा। वह माता के पास ही एक किनारे बैठ गया।

किसी कवि ने यथार्थ ही कहा है—

न कठोरं न वा तीक्ष्णमायुधं पुष्पधन्वनः।
तथापि जितमेवासीदमुना भुवनत्रयम् ॥

अर्थात्—कामदेव का हथियार न कठोर है और न तीखा ही है, फिर भी उसने समस्त संसार को पराजित कर दिया है।

वास्तव में काम-वासना प्राणी की सब से बड़ी वैरिन है। इसके वशीभुत होकर मनुष्य विवेक से विकल हो जाता है। काम-वासना की प्रवल वन्हि विवेक रूपी वाटिका को दग्ध कर डालती है। प्राणी मात्र इसके वश में होकर घोर यातनाएँ सहन करता है। कहा है—

खणमित्त-सुक्खा बहुकालदुक्खा,
पगाम दुक्खा अणिगामसुक्खा।
संसार-मोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाणा उ कामभोगा॥

कामभोग क्षणिक सुख देने वाले हैं किंतु दीर्घकाल पर्यन्त घोर दुःख प्रदान करते हैं। थोड़े सुख और बहुत दुःख के कारण हैं। जन्म--जरा-मरण से छुटकारा पाने में बाधक है। कहाँ तक कहा जाय यह अनर्थों की खान है !

मनुष्य के अन्तःकरण मे जब वासना की तीव्र ज्वाला जलने लगती है तो वह कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, उचित, अनुचित, निन्दनीय, अनिन्दनीय का भेद समझने मे असमर्थ हो जाता है। उसकी बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है। कुल और धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करने मे संकोच नही करता।

कनकमाला जैसी विवेकवती नारी को भी काम-वासना ने गिरा दिया। प्रद्युम्न कुमार के अनुपम और सजीव सौन्दर्य को वह अपलक दृष्टि से देखने लगी। उसने देखा—अनुपम रूप है, नवयौवन से समस्त शरीर खिला हुआ है, तन पर के सुन्दर आभुषण उस रूप को और अधिक विकसित कर रहे है, सिर पर मुकुट सजा हुआ है, साँवला सलोना रूप असाधारण है ! दोनों नयन कमल-पत्र के समान आयताकार हैं, कंबुग्रीव है, मुख-मण्डल चन्द्रमा के समान सौम्य और देदीप्यमान हैं, भौंहें कमान की तरह बाँकी हैं, अधरों की अरुणता अपनी निराली छटा दिखला रही है।

दन्तावली मुक्तावली का उपहास कर रही है ! निकलती हुई छोटी-छोटी मूंछे अनूठी सुन्दरता को प्रकट करती है।

प्रद्युम्न कुमार के अंग-अंग मे सौन्दर्य समाया हुआ था। उसकी नाक तोते की नाक कें समान थी। मुख से निकलने वाली वाणी ऐसी मधुर थी मानो इक्षुरस हो ! वक्षस्थल चौड़ा था, भुजाएँ लम्बी थीं और नाखुन रक्तवर्ण थे। उरुयुगल हाथी की सूंड से सदृश थे। जंघाएँ परिपुष्ट और बलिष्ठ थी। समस्त शरीर स्वर्ण की भाँति दमकता था ! उसका रूप सौन्दर्य विस्मय और विमोह को उत्पन्न करने वाला था !

कनकमाला कुमार की यह सुन्दरता देखकर उन्मत्त हो उठी। वह मन ही मन कुमार की प्रशंसा करने लगी। उसकी सद्बुद्धि विलीन हो गई और मन दुर्भावनाओं से अभिभूत हो गया। रानी ने विचार किया वह धन्य है, उसका नारी जीवन सफल है, जो कुमार के साथ रमण करती है और अपनी इच्छाओं को तृप्त करती है ! इस प्रकार विचार करके कनकमाला अपनी आन्तरिक दुष्ट अभिलाषा की शिकार हो गई !

आह ! मनुष्य का मन कितना चंचल है ! वह कहां से कहां ले जाता है ! मनुष्य को किस सीमा तक पतित कर देता है ! कनकमाला काम के तीक्ष्ण बाणों से बिंध गई। उसी समय उसका चेहरा उदास हो गया। वह अपने कपोल को हथेली पर रखकर जमीन की ओर देखने लगी। उसके

नेत्रों से नीर प्रवाहीत होने लगा। लम्बी-लम्बी सांसे लेने लगी। आंखे लाल हो गई।

माता का यकायक परिवर्तित हुआ यह ढंग देखकर कुमार को बहुत विस्मय हुआ। वह समझ नही सका कि माता को क्या हो गया है? उसने आशंका के साथ पूछा—माताजी, क्या बात है? आपकी ऐसी स्थिति क्यों हो रही है?

कुमार के इस प्रश्न का उत्तर देना कनकमाला के लिए बड़ा ही कठिन काम था! लज्जा की मारी वह अपने अन्तःकरण की भावनाको व्यक्त नही कर सकती थी। अतएव वह मौन ही रही। कटाक्ष करके कुमार की ओर देख भर लिया।

मगर वासना-विहीन कुमार को कनकमाला की वास्तविक भावना की कल्पना तक नही हो सकती थी! अतएव उसने सोचा—जान पड़ता है, माता का शरीर स्वस्थ नही है। यह सोचकर कुमार वहाँ से उठकर अपने महल मे चला गया। उसे क्या पता था कि पानी में आग लग रही हैं।

द्वितीय स्कन्ध

: १ :

धिक्कार !

कुमार प्रद्युम्न जब कनकमाला के पास से उठकर अपने महल मे चला गया तो कनकमाला के चित्त मे काम की ज्वाला और भी उग्र हो उठी। वह बिना पानी की मछली के समान तड़फने लगी ! मन ही मन दु:ख का अनुभव करने लगी। उसे रात मे नींद नही आती थी और दिन मे सुहाता नही था! खाने-पीने की रुचि चली गई थी। उठते-बैठते प्रत्येक समय, बस गहरी साँसे लेती रहती थी। उसके नेत्र लाल-लाल बने रहते थे, शरीर उष्ण रहता था और बार-बार जँभाई लिया करती थी उसने सुन्दर वस्त्रों का और समस्त आभूषणों का परित्याग कर दिया। मतवाली-सी फिरने लगी।

जैसे ग्रीष्म ऋतु की लता दिन-दिन सूखती जाती है, उसी प्रकार कनकमाला दिनों दिन सूखती जा रही थी। वासना की वन्हि उसे सुखा रही थी। बावन चन्दन के लेप

से भी उसका दाह शान्त नही होता था ! अन्तरिक दाह बाह्य लेप से शान्त भी कैसे होता ?

काम-वासना अशान्ति उत्पन्न करने वाली है। उससे मनुष्य का मन बेचैन और व्याकुल बन जाता हैं। कनकमाला निरन्तर उद्विग्न, अशान्त और अतृप्त रहने लगी। वह कभी महल मे जाती और वहाँ मन न लगता तो उद्यान को ओर चल देती ! उद्यान से चित्त ऊबता तो वाटिका की शरण लेती ! वहाँ भी चित्त शान्त न होता तो आकाश-बिहार के लिए चल पड़ती थी। मगर चैन कही न पाती !

अज्ञानी जीव समझते हैं कि संसार के पदार्थों मे सुख-प्राप्त करने की क्षमता है ! इसी भ्रम से प्रेरित होकर वे सुख शांति प्राप्त करने के लिए वाह्य पदार्थों का संयोग खोजते फिरते है। किन्तु ज्ञानी पुरुषों का कथन है कि वास्तविक सुख और शान्ति का आगार तो मनुष्य का अन्तःकरण ही है ! सुख आत्मा का निज गुन है और ज्यों ज्यों पर-पदार्थोंसे सम्पर्क हटाकर आत्मा अपने आप मे निरत होती जाती है, त्यों-त्यों सुख की अनुभूति वढ़ती जाती है ! अतएव सच्चा सुख प्राप्त करने के लिए पर पदार्थों की ममता का परित्याग करके आत्मोन्मुख होना चाहिए। जो मनुष्य ऐसा नही करते और संसार के पदार्थों मे सुख की गवेषणा करते हैं, उन्हें सुख के वदले दुःख की ही प्राप्ति होती है।

कनकमाला ने अज्ञानियोंका मार्ग पकड़ा। उसने विलास मे सुख की कल्पना की । परिणाम यह हुआ कि उसे जो सुख

पहले प्राप्त था, वह भी नष्ट हो गया । वह दु:ख के दावानल मे जलने लगी । उसे कहीं भी, कभी भी, किसी भी पदार्थ से शान्ति नही मिलने लगी । सारा संसार उसे दु:खमय प्रतीत होने लगा । उसकी व्याकुलता ने उसे अत्यन्त बेचैन बना दिया ।

राजा यमसंवर ने अपनी प्रेयसी रानी की यह हालत देखी तो उसे बहुतही चिन्ता हुई । राजा ने कुशल वैद्यों को बुलवाया । वैद्यकशास्त्र मे अत्यन्त निपुण अनेक राजवैद्य आये । उन्होंने मल, मूत्र, नेत्र, गंध, वस्त्र, जिव्हा, गला और नाड़ी की सावधानी के साथ परीक्षा की । किन्तु रानी के रोग का निदान कोई न कर सका । किसी भी वैद्य को बीमारी का कारण ज्ञात न हो सका ! उन्होंने अनेक औषधियां खिलाई, पिलाई, मगर कोई कारगर नही हुई ।

जब औषधोपचार सफल न हुआ तो मन्त्र-तन्त्रका उपचार किया गया । बड़े-बड़े मन्त्रवेत्ता आये, फिर भी अभिष्ट परिणाम नही निकला । अन्तत: समस्त वैद्य और मांत्रिक निराश होकर चले गये । रानी की अवस्था मे किंचित भी परिवर्तन नही हुआ ।

ज्यों-ज्यों रानी की अवस्था गिरती जाती थी और दुर्बलता बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों राजा यमसंवर की बेचैनी भी बढ़ती जा रही थी । एक दिन राजा ने कुमार को अपने पास बुला कर कहा—वत्सा, तुम्हारी माता की हालत दिनोंदिन बिगड़ती जा रही है । वह बहुत दुखी है ।

उसका एक-एक दिन एक-एक कल्प के समान कट रहा है ! और तू अपने सुख मे मग्न है। तू ने अपनी माता का समाचार तक नही पूछा ! साता पूछने भी नही आया ! तू अत्यन्त बुद्धिशाली है। कोई ऐसा उपाय निकाल, जिससे माता का दुःख दूर हो जाय।

कुमार ने हाथ जोड़ कर कहा---पिताजी, मुझे माताजी की अवस्था का पता ही नही था। मैं माताजी को देवता के समान समझता हूँ। संसार मे माता के समान उपकारक और कौन है ? यह अंग ओर यह जीवन माता की ही अनुपम देन है। लोग कहते हैं कि ब्रह्मा सृष्टि रचता है, मगर वह ब्रह्मा तो कपोल कल्पित है। माता ही है। माता की अनुकम्पा से ही बालक के जीवन का निर्माण होता है ! माता ममता की मूर्ति है, अनुकम्पा की साक्षात प्रतिमा है, उसमे वात्सल्य और उदारता का अद्‌भुत संमिश्रण होता है। पुत्र के लिए घोर कष्ट सहन करती है। सवा नौ मास तक गर्भ मे धारण करके और फिर जन्म देने के बाद पालन-पोषण करके माता अपनी सन्तान पर असीम उपकार करती है। माता के सुख के लिए पुत्र अपने शरीर को निछावर कर दे तो भी वह उऋण नही हो सकता !

इस प्रकार अपनी मनोभावना व्यक्त करके प्रद्युम्न उसी क्षण माता के निकट पहुंचा। माता की अवस्था देखकर कुमार को गहरी चिन्ता हुई। चरणों मे नतमस्तक होकर और आँखों से आँसू वहा कर, गद्‌गद् कंठ से कुमार ने

कहा——हा दैव ! यह क्या हुआ ? मेरी माता का शरीर क्यों सूख कर कांटा हो गया है ।

कुमार फिर सोचने लगा—जैसे इस देह को दोनों नेत्रों का आधार है, उसी प्रकार मुझको माता और पिता का आधार है । मैं माता को औषध के द्वारा अथवा मन्त्रप्रयोग के द्वारा बहुत शीघ्र स्वस्थ कर दूंगा !

तत्पश्चात कुमार ने माता का हाथ अपने हाथ मे लिया । नाड़ी पर तीन उंगलियाँ रक्खीं । बहुत देर तक सोच-विचार करता रहा खूब उपयोग लगाया । परन्तु उसे नाड़ी मे किसी भी रोग का आभास नही हुआ । हृदय की वह बीमारी नाड़ी से मालूम भी कैसे पडती !

कुमार चकित रह गया । वात, पित्त, कफ आदि मे से किसी की न्यूनता या अधिकता नही प्रतीत हुई । तब कुमार बोला—माताजी आपको क्या कष्ट प्रतीत होता है ? बिना कहे तो कोई बीमारी समझ मे नही आती । आप बतलाएँगी तभी पता चलेगा और तभी उसका ठीक तरह उपचार किया जा सकेगा ।

कनकमाला—— सबके सामने मैं अपने कष्ट की बात नही कहती । सबको यहाँ से अलग कर दो तो अपनी पीड़ा मैं बतला सकूँगी ।

वहाँ जो लोग उपस्थित थे कुमार का संकेत पाते ही बाहर चले गये । रानी और कुमार के अतिरिक्त वहाँ कोई नही

रहा। उस समय रानी के चेहरे पर एक आनोखा भाव प्रकट हुआ-कुछ रौनक-सी दिखलाई दी ! रानी ने निर्लज्जता धारण करके अँगड़ाई ली, लम्बी जँभाई ली और कटाक्ष किया। वह अपने गले मे अत्यन्त मधुरता लाकर स्नेहपूर्वक बोली–'प्राणेश'! मेरी बीमारी तन की नही, मन की है। वह वात, पित्त या कफ के प्रकोप से नही, तुम्हारे इस दिव्य सौन्दर्य से उत्पन्न हुई है इस बीमारी को दूर करने के लिये तुमही वैद्य हो और तुम्ही औषध हो। यह और किसी से मिटने वाली नही है। प्रियतम ! तुम्हारे विरह ने मेरे शरीर मे भयानक संताप उत्पन्न कर दिया है। उस संताप मे मैं जल रही हूँ, बचाना चाहो तो बचा सकते हो !'

रानी की यह अटपटी बात सुनकर कुमार हतबुद्धि हो गया। उसे अपने कानों पर विश्वास नही हुआ। मैं माता के मुख से यह क्या सुन रहा हूँ ! यह सोचकर वह चकित रह गया !

कनकमाला फिर कहने लगी–'कुमार ! [illegible] पदार्पण करके मुझ पर अत्यन्त उपकार [illegible] मेरे स्वामी हैं, मैं आपके चरणों [illegible] पूर्वभव के पति है। पुरातन [illegible] उठे हैं और आपने मेरा मन [illegible] यह है कि मैं आपके विना [illegible] विरहमे मेरे लिए महल [illegible] प्रतीत होता है। वस्त्र [illegible]

सुध-बुध भूल गई हूँ। आज आपको अपने निकट पाकर प्राणों को शान्ति मिली है। प्रियतम ! मुझे प्रणय की भीक्षा दो। मेरी बाँह पकड़ो। दासी की आशा पुरी करो। मैं आपका हृदय चाहती हूँ और अपना हृदय आपको देना चाहती हूँ।'

कवि ने ठीक ही कहा है—

विवेकभ्रष्टानाँ भवती विनिपात: शतमुख:।

मनुष्य का विवेक जब तक कायम रहता है तभी तक वह मर्यादा मे स्थिर रहता है । विवेक से भ्रष्ट होने पर उसका अध:पतन हो जाता है। एक बार जो अध:पतन आरम्भ हुआ सो फिर वह रुकता नही . विवेक-हीन व्यक्ति नीचे ही नीचे गिरता चला जाता है।

रानी कनकमाला विवेक से भ्रष्ट होकर चरम सीमा की निर्लज्जता पर उतर आई। उसे इतना भी भान न रहा कि मैं किसके समक्ष कैसा प्रस्ताव उपस्थित कर रही हूँ !

कुमार प्रद्युम्न ने कनकमाला की बेहयाई से भरी बाते सुनकर कानों मे उंगलियां डाल ली और आंखे बन्द कर ली। लज्जा के मारे उसका मस्तक नीचे झुक गया।

कुमार के मुख से सहसा निकल पड़ा—धिक्कार है माता! तुझको! तू वेभान होकर क्या कह रही है? माता !

तू मेरे लिए तीर्थ के समान परम पवित्र और पूज्य है। मैं तेरा बालक हूँ। तेरे अन्तःकरण में ऐसी दुर्बुद्धि कैसे जागृत हुई? तूने लोकलाज का भी ध्यान न रक्खा व कुल की मर्यादा को भी विस्मरण कर दिया! मैं अपनी माता के इस घोरतर पतन की कल्पना भी नहीं कर सकता था!

कनकमाला—आप ठीक कहते हैं कुमार! वास्तव में न मैं आपकी माता हूँ और न आप मेरे पुत्र हैं। आप मुझे जंगल में पड़े मिल गये थे। मैं उठा लाई। मैंने आपका पालन-पोषण किया है। वास्तव में आपकी वड़भागिनी माता कोई दूसरी ही है। मैंने जो अमृत-वल्लरी बोई उसका फल चखने की अधिकारिणी मैं ही हूँ। अमृत-फल चखने का समय अब आ पहुँचा है। उससे मुझे वंचित करना मेरे प्रति अन्याय करना होगा। प्राणेश! अब अधिक विचार न करो। संकल्प-विकल्प में मत पड़ो। मेरी प्रणय याचना को सहर्ष अंगीकार करो। अन्यथा मैं जीवित नहीं रह सकूंगी। मैंने आपके जीवन की रक्षा की है, अतः आपके जीवन पर मेरा अधिकार है। जीवन रक्षा के वदले क्या मेरे जीवन का हनन करना उचित होगा?

कुमार—माता! मैं हाथ जोड़ता हूँ। तनिक विचार करो, कुल की मर्यादा का खयाल करो। आपका विचार अत्यन्त गर्हित है, कुल को कलंकित करने वाला है इससे इस लोक में निंदा होगी और परलोक में नरक की अत्यन्त भीषण

यातनाएँ सहन करनी पड़ेगी। माता ! सम्यग् ज्ञान के अंकुश से अपने मन रूपी मत्तंग को वश मे करो !

माता ! मैं समझ गया कि तुम मेरी जननी नही हो, तथापि पालन-पोषण करने के कारण तुम मेरी माता ही हो। मै कृतज्ञ हूँ कि तुमने मेरे प्राणोंकी रक्षा की है। मै तुम्हारा ऋणी हूँ। उस ऋण को चुकाने के लिए चाहो तो मेरे प्राण ले लो, मगर धर्म नही ले सकती।

शास्त्र मे कहा है कि माता के महान् उपकार का वदला नही चुकाया जा सकता। अलबत्ता उसे चुकानेका उपाय माता को धर्म-मार्ग पर आरूढ़ कर देना हैं। ऐसी स्थिति मे मैं तुम्हे घोर पाप के गड़हे मे गिराकर तुम्हारे महान् उपकार का बदला किस प्रकार चुका सकता हूँ ? मुझे अपने प्राणों का परित्याग कर देना और जीवन का सहर्ष अन्त कर देना स्वीकार है, मगर पाप की प्रचण्ड ज्वालाओं मे गिरना स्वीकार नही है।

माता ! इस कलंकमय दुष्ट विचार को अपने मन से निकाल दो। यह अमंगल विचार है। इससे बड़ा पातक और कोई नही हो सकता।

इस प्रकार समझाने पर भी जव कनकमाला की बुद्धि ठिकाने न आई तो कुमार वहाँ से उठकर चल दिया। घृणा और क्षोभ से उसका हृदय व्याप्त हो गया।

कनकमाला निर्लज्ज भाव से, सतृष्ण नयनों से कुमार की और देखती ही रह गई। कुमार ने दृष्टि उठाकर एकवार

भी उसकी ओर न देखा। उसका हृदय बोल उठा—'धिक्कार!'

———

: २ :

रहस्य का उद्घाटन

कुमार प्रद्युम्न कनकमाला के प्रति घृणा और निन्दा की तीव्र भावना लेकर रवाना हुआ। कनकमाला की नीचता का विचार करते-करते उसे स्त्री-जाति के प्रति भी तिरस्कार उत्पन्न हुआ। वह तरह-तरह के विचार करता हुआ नगर के बाहर एक उद्यान में जा पहुंचा।

उस उद्यान मे चरण-करण के आगार एक मुनि स्फटिक शिलापर विराजमान और कायोत्सर्ग में लीन दिखलाई पड़े। पुण्यशाली पुरुष धर्मात्माओं को देखकर प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, फिर मुनिराज के दर्शन की बात क्या? कुमार की दृष्टि मुनिराज पर पड़ी तो उसके रोम-रोम मे हर्ष व्याप गया। वह भक्ति-भाव से प्रेरित होकर मुनि के निकट पहुंचे। अत्यन्त विनम्र होकर उसने मुनिराज को विधि पूर्वक वन्दना की। तत्पश्चात् कुमार ने प्रार्थना की—तपोधन! अनुग्रह करके ध्यान को पार लीजिए।

मुनिराज प्रकृति से ही करुणा-निधान होते हैं। वे अवसर के ज्ञाता और जगत् के उपकारक हैं। कुमार की नम्र प्रार्थना श्रवण कर मुनिराज ने फर्माया-देवानुप्रिय ! दया पालो।

तत्पश्चात् मुनिराज कुमार को उपदेश देते हुए बोले—कुमार ! इस मानव भव की सार्थकता धर्म और नीति का आचरण करने मे ही है। तुम अनीति से दूर रहकर धर्म का आचरण करना !

कुमार—गुरुदेव ! आपके वचन तथ्य हैं। मैं अपनी शक्ति के अनुसार और धर्म और नीति का अनुसरण करने के लिए प्रयत्नशील रहूँगा। किन्तु दयामय ! मेरी एक जिज्ञासा है। अनुग्रह करके उसका उपशमन कीजिए। मैं जानना चाहता हूं कि मेरे रूप को देखकर मेरी माता के मन मे दुर्भावना क्यों उत्पन्न हुई।

मुनि—साधारण व्यक्ति की दृष्टि इहलोक तक ही सीमित रहती है, परन्तु ज्ञानी-जन अपनी दीर्घ दृष्टि से आगे-पीछे की बातों का भी विचार करते है। कोई भी जीव जब नवीन जन्म ग्रहण करता है तो वह पहले के अनेक भवों के संस्कार साथ मे लाता है। वे संस्कार उसके वर्तमान जीवन को प्रभावित करते रहते हैं। तुम्हारी माता के विषय मे भी यही बात है। पूर्वभव मे तुम्हारी माता राजा हेमरथ की पत्नी इन्द्र-प्रभा थी। तुम राजा मधु थे। मद और मोह से तुम मतवाले हो रहे थे। तुमने इंद्रप्रभा का शील भंग किया था।

वही इन्द्रप्रभा अब कनकमाला के रूप मे जनमी है। इस प्रकार पुरातन संस्कारों के कारण तुम्हारे प्रति उसे मोह उत्पन्न हुआ है।

कुमार–भगवन्! मेरे असली माता-पिता कौन हैं और कहां है?

मुनि–असली माता-पिता की बात पूछते हो कुमार? असल मे तो यह आत्मा अजन्मा है और अमर है। न कभी उत्पन्न होता है और न मरता है। अतएव पारमार्थिक दृष्टि से संसार से कोई किसी का पिता, माता या पुत्र नही है। परन्तु कर्मोदय के कारण जीव जन्म-मरण का पात्र बनता है। अनादि काल से वह जन्म-मरण कर रहा है। संसार के अनन्तानन्त जीवों मे एक भी ऐसा नही है, जिसके साथ जीव के सभी प्रकार के सम्बन्ध न हो चुके हो!

है असार संसार न करना पल भर राग सयाने।
यहां जीव ने अब तक पहने हैं कितने ही बाने।
सब जीवों से सब जीवों के सब सम्बन्ध हुए हैं,
लोक-प्रदेश असंख्य जीव ने अगणित बार छुए हैं॥

x x x x

एक जन्म की पुत्र मर कर, है पत्नी बन जाती,
फिर आगामी भाव में माता बनकर पैर पुजाती।
पिता पुत्र के रूप जन्मता, वैरी बनता भाई,
पुत्र त्याग कर देह कभी बन जाता सगा जमाई॥

कुमार ! संसार की असली स्थिति तो यह है ।

कुमार—कृतार्थ हुआ भंते ! आपने सत्य का प्रकाश किया है । तथापि अपने इस जन्म के माता-पिता का नाम जानने की मेरी वड़ी उत्कण्ठा है । कृपा करके उसे शान्त कीजिए ।

कुमार की तीव्र इच्छा जानकर मुनिराज ने उसके माता-पिता का नाम प्रकट कर दिया । द्वारिका के वासुदेव श्रीकृष्णजी की ऋद्धि का भी विस्तार पूर्वक वर्णन सुनाया । कहा—तुम श्रीकृष्ण के पुत्र और उनकी पटरानी रुक्मिणी के आत्मज हो । राजा हेमरथ की पत्नी को छीन लेने के कारण उसे तुम्हारे प्रति तीव्र विद्वेष हुआ । उन्हीं संस्कारों के साथ हेमरथ देवता के रूप मे उत्पन्न हुआ और उसने तुम्हारा अपहरण किया । किस प्रकार उसने शिला के नीचे दबा दिया और किस प्रकार यमसंवर ले आया आदि-आदि समग्र वृत्तान्त मुनि ने कुमार को कह सुनाया ।

कुमार—दीनानाथ ! कृपा करके यह भी बतलाइये कि किस कर्म के उदय से मुझे माता का वियोग सहन करना पड़ा ?

मुनि—राजकुमार ! यह भी सुनो । कौशम्बीनगरी के राजा महीश्वर थे । मोहिनी या मोहनावती उनकी रानी थी । राजा और रानी में प्रगाढ़ प्रेम था । दोनों आनन्द में अपना समय व्यतीत करते थे । खाते खेलते और धन तथा यौवन का मजा लूटते ।

एक बार बसन्त ऋतु का आगमन हुआ। राजा और रानी ने वसन्त-क्रीड़ा करने का विचार किया। दोनों एक सुन्दर रथ पर आरुढ़ होकर मनोरम नामक उद्यान में पहुँचे। उद्यान मे जाकर उन्होंने मनोज्ञ भोजन किया। फिर एक हौज मे रंग भरवा कर दोनों ने फाग खेली। फाग खेलते-खेलते थक गये तो एक दूसरे के हाथ मे हाथ मिलाकर उमंग के साथ वनभूमि मे विचरण करने लगे।

उद्यान के एक किनारे, एकान्त मे मोरनी ने अंडे दिये थे। राजा और रानी को उसी ओर आते देख, आतंकित होकर मयूरनी ने केका-रव किया। राजा-रानी को उसकी आवाज सुनकर कुछ विस्मय हुआ और वे दोनों उसी ओर आगे बढ़े। उन्हे बिलकुल निकट आया देख मयूरनी भयभीत हुई। माता को अपनी सन्तान प्यारी होती हैं। परन्तु अपने प्राण सन्तान से भी अधिक प्यारे होते हैं। मयूरनी संकट की कल्पना करके वहाँ से उड़ी और पास ही एक पेड़ की डाल पर बैठ गई।

राजा-रानी अंडों के पास पहुँचे। देखा, वहाँ दो अंडे थे। रानी ने कुतूहल से प्रेरित होकर एक अंडा अपने हाथ में उठा लिया। रानी फाग खेलकर आई थी और उसके हाथों में रंग लगा हुआ था। हाथ का रंग अंडे में लग गया और इस प्रकार अंडे का स्वाभाविक रंग बदल गया! जब रानी ने अंडा हाथ मे उठाया तब मयूरनी ने अत्यन्त करुण चीत्कार किया। उसके दर्दभरे चीत्कार को सुनकर राजा-रानी का दिल दया

से द्रवित हो उठा .रानी ने उसी समय अंडा यथास्थान रख दिया ।

राजा रानी वहाँ से चल दिये। ज्यों ही वे कुछ दूर पहुँचे कि मयूरनी फिर अंडो के पास पहुँची। मगर रानी का रंगभरा हाथ लगने से जिस अंडे का रंग बदल गया था, उसे मयूरनी पहचान न सकी। उसे भ्रम हो गया और उसने उस अंडे का सेवन नहीं किया।

सोलह घड़ियाँ बीत गई। संयोगवश आकाश में मेघ मंडराये और गहरी वर्षा हुई। वर्षा की बूंदों ने अंडे का रंग धो दिया। अंडा अपने असली रूप में प्रकट हो गया। मयूरनी ने तब अंडे को पहचान लिया और उसका सेवन किया। इस प्रकार अंडे को सोलह घड़ी का अन्तराय हुआ।

जीव कुतूहल से प्रेरित होकर, हँसी-हँसी में कर्म बन्ध कर लेता है, परन्तु उस कर्म का विपक दुस्सह हो जाता है। हँसकर बाँधे हुए कर्म रो-रोकर भुगतने पड़ते हैं। इसी कारण ज्ञानी-जनों का उपदेश है कि विना विचारे कार्य करना योग्य नही है।

इस प्रकार राजा-रानी आनन्द-विनोद में अपना समय यापन कर रहे थे। एक वार विमल सती का उपदेश सुनकर रानी को विरक्ति हुई। उसने संसार के भोगों को दुःख का कारण समझकर त्याग दिया। वह दीक्षा लेकर आर्यिका हो गई। आर्यिका के योग्य उग्र तपश्चरण करके और अन्त में एक

मास का संथारा करके मोहिनी सती बारहवें देवलोक मे उत्पन्न हुई ।

देवलोक की स्थिति पूर्ण होने पर मोहिनी के जीव ने रुक्मिणी के रूप में जन्म ग्रहण किया और श्रीकृष्ण की वल्लभा पटरानी का पद प्राप्त किया ।

रुक्मिणी को सोलह वर्ष तक पुत्र-वियोग की पीड़ा सहनी पडी, इसका कारण यही हैं की उसने पूर्वभव मे सोलह घड़ी का अंडे को अन्तराय लगाया था ।

कुमार ! उपार्जित कर्म भोग बिना नही छूटते । अतएव जो कर्मों के दुर्विपाक से वचना चाहता है, उसे कर्मों के वन्धन से वचने का प्रयत्न करना चाहिए । सुख के वदले सुख और दुःख के वदले दुःख प्राप्त होता है !

अन्त मे मुनिराज वोले—कुमार ! कनकमाला के पास रोहिणी और प्रज्ञप्ति नामक दो विद्याएँ है । वे दोनों तुम्हारे भाग्य मे हैं । उनकी सहायता से चिन्तित कार्य की सिद्धी होती है । कनकमाला मोह के वशीभूत होकर दोनों विद्याएँ तुम्हें दे देगी ।

कुमार—अनाथों के नाथ ! आपने मेरा संशय निवारण करके अत्यन्त अनुग्रह किया है । मैं कृतज्ञ हूँ ।

इस प्रकार कहकर और वन्दना करके वह चल दिया । कुमार दोनों विद्याएँ ग्रहण करने की उत्कंठा से कनकमाला के पास पहुँचा । इस बार उसने कनकमाला को न प्रणाम किया,

न विनयभाव ही व्यक्त किया। उसके सामने जाकर सिर्फ खड़ा हो गया और उसका मुख-चन्द्र देखने लगा।

: ३ :

विद्या-दान

प्रद्युम्न को सामने खड़ा देख कनकमाला का हृदय बाँसों उछलने लगा। उसने सोचा—कुमार मेरे रूप पर मुग्ध हो गया है। अव वह मेरी अभिलाषा अवश्य पूरी करेगा। इस प्रकार सोचकर वह बोली—हे पुरन्दर! आपने यहाँ पधारकर मुझे कृतार्थ किया। मेरा तन, मन और धन सर्वस्व आपको समर्पित हैं। मैं आपकी आज्ञाकारिणी दासी होकर रहूँगी।

कुमार—देखो, यह घटना साधारण नहीं है। यह वात प्रगट हो जायगी तो भारी तहलका मच जायगा। समस्त राजपरिवार मेरे विरुद्ध हो जायगा। उस समय मैं अकेला बालक किस प्रकार सबका मुकाबिला कर सकूँगा?

कनकमाला—कुमार! इसकी चिन्ता न करो। मेरे पास दो विद्याएँ हैं जो तीनों लोकों में दुर्लभ हैं। उन्हें पाकर आप इतने सामर्थ्यवान् बन जाएंगे कि आपका कोई बाल भी बाँका नही कर सकेगा। मेरी अभिलाषा पूरी करोगे तो वह दोनों विद्याएँ मैं आपको दे दूंगी।

कुमार–कौन कौन सी विद्याएँ हैं आपके पास ?

कनकमाला—–रोहिणी और प्रज्ञप्ति। रोहिणी विद्या के प्रभाव से नाना प्रकार के अभीष्ट रूप बनाये जा सकते हैं और प्रज्ञप्ति विद्या के वल से मनचाही सेना का निर्माण किया जा सकता है। यह दो विद्याएँ प्राप्त हो जाने पर किसी की शक्ति नहीं जो आपका कुछ भी विगाड़ कर सके।

प्रद्युम्न, रानी की विद्याएँ ग्रहण करने के अभिप्राय से मीठी-मीठी बातें करने लगा। बोला मै आपका किंकर हूँ। आज तक मैनें आपकी कोई आज्ञा नहीं टाली है। यदि आप दोनो विद्याएँ मुझे देने को तैयार हैं तो आपका सेवक हूँ।

कामान्ध कनकमाला विवेकभ्रष्ट हो ही चुकी थी। उसने प्रद्युम्न की बात सुनकर और अपना मनोरथ पूर्ण हुआ समझकर विधि-सहित दोनों विद्याएं कुमार को सिखला दीं।

कुमार ने कहा–अभी मै जाता हूं और दोनों विद्याएं सिद्ध करके शीघ्र ही आपके पास आऊंगा। फिर आपका आज्ञाकारी होकर रहूँगा।

तत्पश्चात् कुमार एकान्त मे चला गया। वह महान् पुण्यशाली और शीलवान् था। पुण्य की प्रवलता के कारण थोड़ी ही देर में दोनों विद्याएं सिद्ध हो गई।

उधर कनकमाला अत्यन्त आतुरता के साथ कुमार की बाट जोह रही थी। एक एक पल उसे एक एक संवत्सर के समान प्रतीत हो रहा था। दोनों विद्याएं सिद्ध करके कुमार प्रसन्न-चित्त होकर कनकमाला के पास जा पहुंचा। उसके चरणों में प्रणाम करके वह बोला—आपकी मुझपर असीम कृपा है। आपकी कृपा से मैंने दोनों विद्याएं सिद्ध कर ली हैं। अब आप आज्ञा दीजिए, वही करूंगा।

कनकमाला के पैरों तले की जमीन खिसक गई! कुमार ने उसे जो प्रणाम किया, उससे वह घबरा उठी। फिर बोली —मैं तो आपकी दासी हूं। दासी के पैरों में गिरना आपको शोभा नही देता!

कुमार—मैंने अपनी माता को कभी आंखों नही देखा। अतः आप ही मेरी माता हैं। आपने मातृ धर्म का पालन करके मेरे जीवन की रक्षा की है। मैं आपका पुत्र हूं। पुत्र के समक्ष माता को इस प्रकार बोलना उचित नहीं है। जरा सोच विचार कर बोलिए।

कनकमाला के मंसूबों का महल ढहने लगा। वह क्या सोच रही थी और क्या घटित हो रहा है? उसके हृदय को भारी आघात लगा। दोनो हाथ जोड़कर अत्यन्त दीनभाव से वह कहने लगी-प्यारे! अपनी प्रतिज्ञा का पालन करो। बात कहकर बदल जाना उचित नहीं है। प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए रामचंद्रजी ने बनवास अंगीकार किया था। अपनी बात को रखने के लिए अनेक पुरुषों ने घोर से घोर कष्ट सहन

किये हैं। आप अपनी वात पर दृढ़ रहेंगे तो आपको तो कोई दु:ख होने वाला नही है, उलटा सुख ही प्राप्त होगा ! फिर कहकर क्यों बदलना चाहते है ? उत्तम पुरुष वही है जो की हुई प्रतिज्ञा से विचलित न हो। कहा भी है—

न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः।

धीर-वीर पुरुष एक वार निश्चित की हुई वात को छोड़ते नहीं हैं। अतः हे प्रियतम ! अब अधिक खींचतान न करो। मेरी मनोकामना पूरी करो।

प्रद्युम्न—महारानीजी ! इस समय आपकी विवेक बुद्धि लुप्त हो रही हैं। इसी कारण आप मुझें दोष दे रही हैं। मैं अपनी प्रतिज्ञा को भंग नहीं कर रहा हूँ। मैंने जो प्रतिज्ञा की है, प्राण देकर भी उसका पालन करने को उद्युत हूँ और रहूँगा। मैने आपका सेवक होकर रहने का वचन दिया है। सेवक का धर्म सेवा करना है और मैं उसके लिए तत्पर हूँ। अपने स्वामी अथवा स्वामिनी को धर्म से भ्रष्ट करना सेवक का धर्म नहीं। सेवक का धर्म स्वामी को ऊंचा उठाना है, गिराना नहीं। अतएव मैं ऐसा कोई कार्य नहीं करुंगा जिससे आपका अधःपतन हो।

कनकमाला—इसमे अधःपतन का प्रश्न ही नही उठता। स्वयं सुख का अनुभव करना और दूसरे को सुख पहुँचाना क्या अधःपतन है ? ब्रम्हा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र, वृहस्पति आदि सभी प्रणय के पाश मे बंधे थे। सभी ने ऐसा किया है। हमारी तुम्हारी गिनती ही क्या !

प्रद्युम्न—ठीक है, लेकिन आपने कभी यह भी सोचा है कि व्यभिचार का फल उन्हें किस प्रकार भुगतना पड़ा? अनुचित विषयवासना के प्रभाव से चन्द्रमा कलंकयुक्त हुआ, बृहस्पति का मान भंग हुआ, इन्द्र को दण्ड भोगना पड़ा और ब्रम्हा का खर मुख हुआ! रावण जैसे प्रचण्ड शक्ति सम्पन्न राजा को नरक का अतिथि बनना पड़ा! व्यभिचार की बदौलत आज तक किसने सुख पाया है? माता! यह घोर पातक है। इहभव और परभवको बिगाड़ने वाला है। व्यभिचारी पुरुष और स्त्री इहभव मे घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाते है और मरने के पश्चात दुर्गति पाकर भीषण यातनाएँ भोगते हैं।

महारानी! भले ही आपने मुझे जन्म नही दिया है, मगर दूध तो पिलाया है। इसलिए आप मेरी माता हैं। फिर विद्याएँ देने के कारण आप गुरुणी भी बन गई हैं। इस प्रकार मैं आपके चरणों का चाकर हूँ, आपकी गोदी का बालक हूँ। मै हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ कि मुझसे कोई अयोग्य बात न कहिए।

कुमार की बात सुनकर कनकमाला के चित मे घोर निराशा छा गई। निराशा की दशा मे मनुष्य कभी-कभी अत्यन्त विकराल हो उठता है। कनकमाला ने भी व्याघ्री की तरह विकराल रूप धारण किया। वह क्रोध से कापने लगी। अंग-अंग में ज्वालाएँ उठने लगी। उसके नेत्र जलने लगे। वह अपने आसन से उठकर कुमार के निकट आई और कुमार का पल्ला पकड़ने लगी। कुमार पल्ला छुड़ाकर बाहर भाग गया और अपने महल मे पहुंच गया।

कुमार को भाग गया देख कनकमाला की जो हालत हुई, उसका शब्दों द्वारा वर्णन नही किया जा सकता। वह तत्काल धरती पर गिर पड़ी। जोर-जोर से चिल्लाने लगी। हाथ मसलने लगी, छाती पीटने लगी और सिर धनने लगी। हाय दुर्दैव !' कह-कह कर चीत्कार करने लगी। उसका हृदय पश्चाताप की ज्वालाओं से दग्ध होने लगा। सोचने लगी– हाय ! मेरे जन्म को धिक्कार हैं ! मैने अपनी लज्जा भी त्यागी और मनोरथ भी पूरा नही हुआ। उस छलिया ने मुझे छल लिया। प्रद्युम्न ने मुझे धोखा दिया। मेरे साथ विश्वासघात किया ! मैंने अपनी विद्याएं भी गंवा दी। हाय ! अव मै किस प्रकार जीवित रह सकुंगी और कैसे किस को अपना मुंह दिखलाऊँगी।

कनकमाला फिर सोचने लगी–प्रद्युम्न ने मेरे साथ कपट किया है। इसका वदला न लिया तो फिर मै विद्याधरी ही कैसी ? मै भरपूर वदला लूंगी। प्रद्युम्न को वेईमानी का मजा चखाऊँगी। उसे भयंकर विपत्ति मे डालूंगी। तभी मेरे मन का सन्तोष होगा।

इस प्रकार का दुष्ट संकल्प करके कनकमाला ने त्रियाचरित करने का निश्चय कर लिया। उसने सोच लिया कि किसी भी उपाय से प्रद्युम्न के प्राणों का विनाश करना ही उचित होगा। ऐसा किये विना न मेरी लज्जा रहेगी और न मुझे सन्तोष ही होगा।

: ४ :

षड्यन्त्र

स्त्रियो ह्यकरुणा:क्रूरा, दुर्मर्षा प्रियसाहसा: ।
घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं, पतिं भ्रातरमप्युत ॥

स्त्री जब निर्दय हो जाती हैं तो भयानक क्रूर रूप धारण कर लेती है। उसका प्रतिकार करना कठिन हो जाता है, बिना सोचे समझे किसी भी कार्य को करने मे वह हिचकती नही और साधारण से प्रयोजन के लिए भी अपने पति या भ्राता का घात करने मे भी नही चूकती।

कवि का यह कथन कनकमाला के सम्वन्ध मे पूरी तरह सत्य उतरता है। वह थोड़ी देर पहले प्रद्युम्न कुमार पर जान देने को तैयार थी, अव थोड़ी देर वाद ही उसके प्राण लेने को तैयार हो गई! उसने देखा कि कुमार किसी प्रकार भी मेरे चंगुल में नही फंसता तो उसने उसे घार संकट मे फंसाने का निश्चय कर लिया।

कनकमाला का रुदन और चित्कार सुनकर आसपास के दास, दासियाँ और परिवार के लोग दौड़े आये। उसकी कई सौते भी आ पहूंची। सवने रोने का कारण पूछा, वार-वार

आग्रह करके कारण जानना चाहा, मगर कनकमाला को रोने और चिल्लाने से फुर्सत ही कहाँ थी कि किसी से बात करती ! वह अविश्रांत रूप से रोने लगी।

कहा जाता है स्त्री का फंदा बड़ा ही बिकट होता है। विवेकवान् पुरुष को उसमें फंसना नहीं चाहिए। नारी की प्रकृति बहुत कुछ कुक्कुरी के समान होती है। कुक्कुरी रीझने पर चाटती है और खीझने पर काटती है। इसी प्रकार स्त्री का तोप और रोष दोनों ही पुरुष के लिए हानिकारक होते हैं।

कनकमाला को, वहां उपस्थित सभी ने बहुत समझाने का प्रयत्न किया मगर वह कब मानने वाली थी ? आखिर एक दासी राजा यमसंवर के पास दौड़ी-दौड़ी गई। उसने राजा को सब वृत्तान्त बतलाया। राजा भी सब काम-काज छोड़कर उसी समय कनकमाला के पास आया। राजा को आता देख रानी और भी अधिक चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगी। रानी की यह स्थिति देखकर राजा के हृदय को तीव्र आघात लगा। वह वेदना से उद्विग्न होकर रानी से रोने का कारण पूछने लगा। रानी थोड़ी देर रोती रही। अनेक बार पूछने पर उसने कहा—'प्रियतम ! मेरा स्पर्श मत कीजिए मैं तो आपके पुत्र की प्रियतमा हूं—पुत्रवधू हूं !'

राजा चकित रह गया। रहस्य उसकी समझमें में नहीं आया। आखिर रानी से पूछा—स्पष्ट कहो, बात क्या है ?

V.

रानी–बात क्या है ? बेटे को सिर पर चढ़ाने का फल भुगतना पड़ रहा है ! आपने सिर चढ़ाया, मुझे फल भोगना पड़ा ! आज आपके लाडले लाल ने मेरी आबरू लेली ।

राजा––किस लड़के ने क्या किया है ? किस प्रकार तुम्हारी आबरु ली है ? झट बतलाओ, मै अभी-अभी उसकी चमड़ी उधड़वा लूंगा ।

रानी–परदेशी पंछी कभी अपना नही होता ! प्राणेश ! जिसे अपने पेट जाये पुत्र की भांति पाला-पोसा, प्यार किया, बड़ा किया, वही आज मेरी बेइज्जती का कारण बन गया ! किसे पता था कि हम अपने हाथों विष-वृक्ष को रोप रहे है और उसके फल हमारे प्राण ले लेंगे ? हमने प्रद्युम्न को क्या पाला, काले नाग को पाला ! यह तो गनीमत हुई कि आपकी कृपा से मेरे शील की रक्षा हो गई, मगर उसने अपनी तरफ से कुछ भी कमी नही रक्खी । ऐसे दुष्ट और पापी के प्राणों का हरण न किया गया तो मेरा जीवन किस काम का ?

राजा–हा ! प्रद्युम्न इतना नीच और जघन्य हैं, यह तो कल्पना भी नही की जा सकती थी ! यदि यह बात प्रकट हो जायगी तो हम लोग मुंह दिखलाने योग्य ही नही रहेंगे ! अतएव उसे गुप्त रूप से मरवा डालना ही योग्य है। प्रिये ! विश्वास रखो, प्रद्युम्न को शीघ्र ही तुम निष्प्राण हुआ देखोगी ।

इस प्रकार रानी को आश्वासन देकर यमसंवर ने अपने पांच सौ पुत्रों को एकांत मे बुलाकर कहा–पुत्रगण ! प्रद्युम्न

कुमार को मैंने तुम लोगों का अधिकार छीनकर युवराज वना दिया हैं। उसके जीतेजी युवराज पदवी छीन लेना उचित नही है। तुम किसी उपाय से उसे मार डालो तो तुम्हारे रास्ते का काँटा दूर हो जायगा। तुम मे से ही किसी को मैं युवराज-पदवी देना चाहता हूँ। मगर एक वात ध्यान मे रखना। इस रहस्य का किसी को पता नही लगना चाहिए। उसे मार डालने की वात प्रकट हो जायगी तो हम सव की घोर निन्दा होगी और प्रजा भी असन्तुष्ट हो जायगी क्यों कि उस धूर्त ने प्रजा के मन को मोह लिया है। वोलो यह काम तुमसे हो सकेगा ?

कुमारों को पिता की वात सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वे समझते थे कि पिताजी प्रद्युम्न को ही सव से अधिक चाहते हैं। किन्तु पिता के मुख से आज यह वात सुनकर उनकी प्रसन्नता का पार न रहा वे स्वयं जो करना चाहते थे, पिता का आदेश भी वही करने को मिल गया, इससे अधिक खुशी की वात और क्या हो सकती है ? उन्होंने सहर्ष स्वीकृति दी और राजा वहां से चल दिया।

कुमारों का हर्ष उनके हृदय मे समाता नही था। वे आपस मे मिलकर प्रद्युम्न को मार डालने का उपाय खोजनें लगे। आखिर उन्होंने कपटी मित्र वनकर उसके प्राण लेने का निश्चय किया।

मगर पुण्य की महिमा असाधारण है। पुण्य जिसका मित्र हो, उसका शत्रु कुछ भी विगाड़ नही सकते। विद्यादेवी ने कुमारों के कपट की वात तत्काल कुमार को प्रकट कर दी। कुमार सावधान हो गया और विद्यादेवी के कथनानुसार ही कार्य करने लगा।

सब कुमारो ने मिलकर खेल का कार्य-क्रम निश्चित किया। वे प्रद्युम्न को साथ लेकर एक अन्ध-वापिका मे खेल खेलने चले। सबने प्रद्युम्न को उस वापिकामे गिरा देने का निश्चय कर लिया था। किन्तु विद्या के प्रसाद से प्रद्युम्न उनकी इस योजना से परिचित हो गया था। उसने अपना दूसरा रूप बना लिया और उसी रूपसे वह कुमारों के साथ खेलने लगा। असली रूप मे अलग ही बना रहा।

खेल आरम्भ हुआ। सब कुमार एक बड़े पेड़ पर चढ़कर बावड़ी मे कूदे। बावड़ी मे वे प्रद्युम्न कुमार को खोजने लगे। उनकी योजना यही थी कीं प्रद्युम्न को इसी बावड़ी मे पकड़ कर दबोच लिया जाय। मगर प्रद्युम्न कुमार लापता था। इधर-उधर सब तरफ खोजने पर भी उसका कही पता नही चला।

उधर प्रद्युम्न ने कुमारों की दुष्टता का फल उन्हे चखाने के अभिप्राय से बावड़ी के नाप की एक बड़ी शिला की विक्रिया की और वह शिला बावड़ी पर ढक्कन की भाँति ढँक दी। फिर अपनी विद्या के बल से सब कुमारों के पैर उस शिला से चिपका दिये। सब चमगीदड़ की भांति उलटे लटक गये। दुःख और परेशानी के मारे वे चीखने-चिल्लाने लगे और प्रद्युम्न कुमार अलग बैठा तमाशा देखने लगा।

पांच सौ कुमार मे से सिर्फ एक कुमार किसी प्रकार बच रहा था। उसने अपने भाइयों की दुर्दशा देखी तो वह चीख मारता हुआ अपने पिता के पास गया। कहा—पिताजी, गजब हो गया! भारी अनर्थ हो रहा है! दौड़ीये जल्दी दौड़िये। भाइयों के प्राण बचाइए!

राजा यमसंवर ने पूछा—इतना क्यों घवड़ा रहा है ? क्या हुआ, साफ-साफ वतला तो सही ! तेरे और सव भाई कहाँ हैं ?

वह कुमार वोला—प्रद्युम्न कुमार ने सवको प्राण-संकट मे फँसा दिया है। वे वावड़ी मे थे, तव उसने एक भारी शिला से वावड़ी ढँक दी है। सव भाई उसके नीचे दवे चिल्ला रहे हैं !

यमसंवर के कोप का पार न रहा। क्रोध से काँपते हुए उसने कहा—वह अधम पापी प्रद्युम्न इतना सिर चढ़ गया है ? उसे विद्याओं का घमण्ड हो गया है ! दुष्ट कहीं का अपने भाइयों की जान लेने पर उतारू हो गया है ! उस धृष्ट छोकरे का पुण्य अव समाप्त हो चुका है ! उस कृतघ्न को समझ लेना चाहिए कि विद्याधरों का स्वामी उस पर कुपित हो गया है। अव उसकी खैर नही। अभी उसको करतूत का फल चखाता हूँ !

विद्याधरनाथ यमसंवर ने उसी समय सेनापती को वुलवा कर सेना सुसज्जित करने का आदेश दिया। कहा—इसी समय चतुरंगी सेना तैयार करो। यह आदेश मिलते ही सेना तैयार हो गई। यमसंवर हाथी पर सवार हुए। शूरवीर सैनिकों के साथ वह उसी ओर रवाना हुए जिस ओर वावड़ी थी। वावड़ी पर पहुँच कर यमसंवर ने कहा—दुराचारी मूर्ख ! अव विद्या की कुशलता से छिप क्यों रहा है ? अधम कीट ! अपने सहोदर भाइयों की जान लेने को तैयार हुआ है ? अव अपना कलंकित मुंह क्यों छिपाता है ? हिम्मत है तो सामने आ, मैं

तुझे तेरी करतूत का मजा चखाऊँगा। दूसरी माता का दूध न पिला दूं तो मेरा नाम यमसंवर नहीं! यमसंवर आज तेरे लिए यम का रूप धारण करके आया है! समझ ले, तेरा पुण्य क्षीण हो चुका है। अब तुझे पाप का फल भोगना पड़ेगा। कलंकी कपूत! आ, मेरे सामने आ!

: ९ :

पिता-पुत्र का युद्ध

पिता के हीनता से परिपूर्ण और चुनौती देने वाले वचन सुनकर प्रद्युम्न कुमार के अंग-अंग से क्रोध की चिनगारियाँ निकलने लगी। वह सोचने लगा—मैं सर्वथा निर्दोष हूँ। न्यायनीति और धर्म के पथ पर चल रहा हूँ। मैंने अपने और अपनी माता के शील की रक्षा की है। क्या यही मेरा अपराध है? शील की रक्षा करने के कारण ही मैं अधम और कलंकित हो गया हूँ! पाँच-सौ राजकुमार मिल कर मेरे प्राण लेना चाहते हैं। मैंने अपना बचाव किया और उन्हें सीख दी। क्या यह मेरा अपराध है? आखिर मैंने कौन-सा दुष्कर्म किया है, जिससे पिताजी भी इतनी बड़ी सेना लेकर चढ़ आये हैं और मुझे दूसरी माँ का दूध पिलाना चाहते हैं? पिताजी इन अनाचारी कुमारों का पक्ष लेकर आये है और एक प्रकार से अनाचार का पोषण करना चाहते हैं। अगर मैं इस समय

चुपचाप रहता हूँ तो असली बात प्रकट नही होगी और भविष्य अनर्थकारी होगा। उचित यही है कि अब इनका मुकाबला किया जाय और इन्हें अपनी शक्ति का तथा असलियत का परिचय दिया जाय।

इस प्रकार का संकल्प करके महाबली प्रद्युम्नकुमार ने विद्या के बल से उसी समय विराट सेना तैयार कर ली। पहाड़ सरीखे विशालकाय हाथी, वायुवेग के समान चंचल घोडे, सुदृढ एवं सुन्दर रथ तथा यमदूत के सुदृश बलवान पैदल सिपाही तैयार हो गये। कृष्ण वर्ण के हाथी मेघों की घटाओं के समान प्रतीत होते थे और उनके ऊपर स्वर्णमय हौदे ऐसे चमक रहे थे, मानों बिजली चमक रही हो ! उनके घण्टे मेघगर्जना के समान गम्भीर ध्वनि कर रहे थे। उत्तम जाति के घोड़े अपनी छटा अलग ही दिखला रहे थे। थेई-थेई करते हुए वे पृथ्वी पर नाच-से रहे थे। उन पर रणनिपुण शूरवीर सवार थे। रथ संग्राम के योग्य थे और उनमे सुन्दर और बलिष्ठ बैल जुते थे। उनकी घरघराट का शब्द शत्रुओं का दिल दहला रहा था। मदमाते पैदल युद्धोन्माद से मानों उन्मत्त हो रहे थे। उनके शरीर पर फौलाद के बख्तर सुशोभित हो रहे थे। ढाल तलवार आदि से सुसज्जित थे। वे वीर-रस की मूर्ति के समान जान पड़ते थे।

युद्ध का नगाड़ा बज उठा। सैनिकों का उत्साह सौ गुना हो गया। रण छिड़ गया। हाथी से हाथी, घोड़े से घोडे, रथ से रथ और पैदल से पैदल भिड़ गये। रक्त की न

लगी, मांस का कीचड़ हो गया। विकराल दृश्य दिखलाई देने लगा। उस दृश्य को देखकर कायरों का कलेजा कांपने लगा और शूरों का उत्साह बढ़ने लगा।

थोड़ी ही देर हुई थी कि प्रद्युम्न की सेना ने राजा यमसंवर की सेना का बहुत सा भाग मार गिराया। प्रद्युम्न अब राजा को पकड़ने के लिए आगे बढ़ा। राजा ने देखा कि अब मेरा बचाव होना कठिन है तो वह रणक्षेत्र से भागकर कनकमाला के पास पहुँचा। घबराये हुए राजा ने अपनी पटरानी से कहा—अपनी और हमारी कुशल-क्षेम चाहती हो तो अपनी दोनों विद्याएँ जल्दी से मुझे दे दो। उस महान् धूर्त व कृतघ्न प्रद्युम्न ने मेरी सारी सेना का सफाया कर डाला है। अब तुम्हारी विद्याओं के बल से ही हमारी आबरू कायम रह सकती है और मेरी प्रतिज्ञा पुरी हो सकती है।

राजा की बात सुनकर रानी की क्या दशा हुई होगी, यह कल्पना करना भी कठिन है। वह अत्यन्त चिन्तित, उद्विग्न और लज्जित होकर बोली—प्राणनाथ, विद्याएँ तो मेरे पास रही नही !

राजा—कहां गई ? तुमने किसे दे दी है ?

रानी लज्जा और पश्चात्ताप के कारण जमीन के ओर देखने लगी। वह प्रद्युम्न का नाम लेने मे झिझकने लगी। मगर चुप्पी साधने का समय नही था। अतएव उसने लजाते हुए कहा—स्वामिन् ! प्रद्युम्न महाधूर्त्त हैं। उसने मुझे ठग लिया हैं।

कनकमाला की चेष्टएँ देखकर राजा ने वास्तविक बात का अनुमान कर लिया। कनकमाला का कपटाचार उससे छिपा नही रहा। उसने अंगारों के समान दहकते हुए नेत्रों से रानी के चेहरे की ओर देखा। रानी उन नेत्रों का सामना न कर सकी वह सहम उठी और धरती की ओर देखने लगी।

राजा सुस्त हो गया। सब कुछ समझ गया। सोचने लगा—मैंने बिना विचारे कदम उठाया है! प्रद्युम्न महान पुण्यशाली हैं, भाग्यवान् है, सुशील और संतोषी है। वह कदापि दुष्कर्म नही कर सकता। वह विवेकवान कुमार मर्यादा को भंग नही कर सकता। यह कनकमालाही दुराचारिणी है। पुत्र के रूप पर मुग्ध होकर, काम से विव्हल होकर ही सने उसे विद्याएँ दे दी हैं। यह सब इसी की करतूत हैं। इसी ने त्रिया चरित किया है। वास्तव मे मैंने इसकी बात पर विश्वास करके बड़ी भूल की हैं। लेकिन अब क्या करना चाहिए? कुमार को जीतना सम्भव नही है और हारने से अपमान होता है।

इस प्रकार संकल्प विकल्प मे पड़ा हुआ यमसंवर फिर अपनी सेना की ओर चल पड़ा। मगर उसकी समस्या अनायास ही हल हो गई।

साधारण लोग स्थूल पदार्थों की शक्ति को लोहा मानते है किन्तु अन्तःकरण की भावना मे कितनी अद्भुत शक्ति निहित है, यह वे नहीं समझ पाते। वास्तव मे भावना बड़ी प्रबल होती है। दूसरों के दिल-दिमाग पर प्रभाव डालने की जितनी

क्षमता भावना मे है, उतनी जगत् के किसी भी अन्य पदार्थ मे नही है। हम प्रत्यक्ष देखते है कि परस्पर वार्तालाप करते हुए दो व्यक्तियों मे से जव एक कुपित होता है तो उसके क्रोधमय भाव का दूसरे पर तत्काल असर हो जाता है और दूसरा भी क्रुद्ध हो उठता है। यदि दूसरा व्यक्ति प्रवल उपशम भाव से विभूषित हो और सामने वाले के क्रोध करने पर भी क्षमा का त्याग न करे तो उस व्यक्ति का क्रोध भी उसी प्रकार शान्त हो जाता है—जिस प्रकार पानी मे गीरकर अग्नि शान्त हो जाती है। इसी कारण शास्त्रों मे भावना शुद्धि पर वहुत भार दिया गया है। प्रवल भावना से सम्पन्न व्यक्ति के लिए तीन लोक मे कुछ भी असाध्य नही रह जाता।

राजा यमसंवर की कुमार प्रद्युम्न पर अभी तक विरोधी भावना थी, मगर कनकमाला की चेष्टाओं को देखकर उसने सत्य का अनुमान कर लिया। उसे कुमार के सुशील होने का विश्वास-सा हो गया और इस कारण उसकी विरोधी भावना भी शिथिल पड़ गई। राजा की इस भावना का प्रभाव अज्ञात रूप से कुमार की भावना पर भी पड़ा।

कुमार विचार करने लगा—ओहो, मैंने आज कितना अविचारपूर्ण कृत्य कर डाला है! मैंने किसके साथ युद्ध किया? पिता के साथ? पिता तो प्रत्येक अवस्था में पूजनीक है। उनकी कृपा से ही मैं इस स्थिति पर पहूँचा हूँ। उनकी अनुकम्पा न होती तो मै असुर की प्रतिशोध-भावना का शिकार होकर जंगल मे शिला के नीचे ही दव कर मर गया होता!

उन्होंने मेरी प्राण रक्षा की, मेरा पालन-पोषण किया, मुझे स्नेह का दान दिया और युवराज वनाकर अपने राज्य का भावी स्वामी भी वना दिया ! ऐसे उपकारक और उदार पिता का सामना करना मेरे लिए अनुचित है। पिताजी से तो पराजित होने मे ही पुत्र की शोभा है शरीर मे नासिका का महत्वपूर्ण स्थान है। वह सभी अंगों की शोभा वढ़ाती है, फिर भी मस्तक के नीचे ही रहती है। इसी प्रकार मुझको भी पिता के सामने नम्र होकर ही रहना चाहिए।

इस प्रकार विचार करके कुमारने समस्त शस्त्रों का परित्याग कर दिया। निश्शस्त्र होकर पिता के समीप आकर कुमार पिता के पैरों मे गिर गया। वोला—तात, मैं आपका कपूत वेटा हुँ। मगर माता-पिता कपूत वेटे पर भी दया—भाव रखते है ! मेरे कृत्य के लिये इस वार क्षमा कीजिए।

इसके पश्चात् उसने अपने भाइयों को भी वन्धनमुक्त कर दिया। सव राजा के समीप आये और कहने लगे—अव हम प्रद्युम्न से कभी नही उलझेंगे—सदा दूर ही रहेंगे !

आखिर सव मिलकर नगर में आये। सव हिल-मिल कर रहने लगे। मगर उनके मन का मैल नही गया। एक वार हृदय फट जाता है तो फिर मिलना वड़ा ही कठीन होता है। इसके अतिरिक्त प्रजा मदनकुमार की प्रशंसा किया करती थी अपने भाइयों को और पिता को पराजित करने के कारण वह और अधिक प्रशंसनीय वन गया था। उनकी कीर्त्ति और अपनी अपकीर्ति सुन-सुन कर माता-पिता का मन मुरझाया रहता

था। प्रद्युम्न महलों मे आता जरूर था, किन्तु पहले के समान आदर उसे नही मिलता था।

यह नवीन परिस्थिति प्रद्युम्न कुमार के दिल मे शूल की तरह चुभ रही थी। किसी भी काम में उसका मन नही लगता था खाना-पीना आदि कुछ भी नही सुहाता था। दिन रात उदासी ही उदासी बनी रहती थी।

एक दिन प्रद्युम्नकुमार गम्भीर चिन्ता मे डूबे एक उद्यान मे बैठे थे। मन मे तरह-तरह के विचार आ रहे थे। सोचते थे---देखो, इतने विशाल संसार मे मेरा कोई अपना नही हैं–सभी मेरे लिए पराये है। सभी मुझे पराया समझते हैं। आत्मीयता के भाव से अपनाने वाला कोई नही है!

नारद ऋषि ने व्योम मे विचरण करते हुए पिता-पुत्र का संग्राम देखा था। रुक्मिणी के अंगजात की वीरता देखकर उन्हें आनन्द हुआ था। वही नारदजी अब घूमते-फिरते उस उद्यान मे आ पहुँचे। प्रद्युम्न को चिन्तातुर देखकर उन्होंने कहा–वत्स! तुम्हे किस बात की चिन्ता है? मेरे सामने कोई वात मत छिपाओ। जो मन मे हो, स्पष्ट कह दो।

ऋषि को देखकर प्रद्युम्न अतीव प्रमुदित हुआ। संभ्रम के साथ उठकर उसने नारदजी को नमस्कार किया। फिर दोनों हाथ जोड़कर वह बोला–ऋषिवर! मुझे चिन्ता इस बात की है कि इतने वड़े संसार मे मेरा कोई भी नही है! माता-पिता शत्रु वने हुए है और भाई निरन्तर प्राण लेने का अवसर ढूँढते

रहते हैं। कही स्नेह नही मिलता, आदर नही मिलता। जीवन मे जरा भी माधुर्य नही, रस नही। मैं अपने जीवन को बोझ की तरह ढो रहा हूँ। ऐसी जिन्दगी की अपेक्षा तो मृत्यु ही अच्छी है ! मुझे मे रूप है, मगर इस वक्र ने भी अनर्थ कर रक्खा है। मुझ सरीखे अभागी के लिए किसी के हृदय मे रंचमात्र भी स्थान नही है !

नारदजी का हृदय भर आया। वह बोले—वत्स ! ऐसा न कहो। तुम सरीखा सौभाग्यशाली पुरुष तीन खण्डों मे और कोई नही हैं। तुम पुण्य-पुरूष हो। विपुल ऋद्धि के स्वामी हो। मैं तुम्हारे परिवार का और तुम्हारी ऋद्धि का तुम्हें किंचित् परिचय देता हूँ।

: ६ :

प्रस्थान

नारद ऋषि ने अपने गले मे अधिक से अधिक मधुरता लाकर मदनकुमार से कहा—वत्स, सुनो। सौराष्ट्र जनपद मे स्वर्ग के समान सुशोभित द्वारिका नामक नगरी है। वहाँ अर्धचक्रवर्ती, महान् तेजस्वी वासुदेव श्रीकृष्ण प्रजा का पालन

था। प्रद्युम्न महलों मे आता जरूर था, किन्तु पहले के समान आदर उसे नही मिलता था।

यह नवीन परिस्थिति प्रद्युम्न कुमार के दिल मे शूल की तरह चुभ रही थी। किसी भी काम में उसका मन नही लगता था खाना-पीना आदि कुछ भी नही सुहाता था। दिन रात उदासी ही उदासी बनी रहती थी।

एक दिन प्रद्युम्नकुमार गम्भीर चिन्ता मे डूबे एक उद्यान मे बैठे थे। मन मे तरह-तरह के विचार आ रहे थे। सोचते थे---देखो, इतने विशाल संसार मे मेरा कोई अपना नही हैं– सभी मेरे लिए पराये है। सभी मुझे पराया समझते हैं। आत्मीयता के भाव से अपनाने वाला कोई नही है!

नारद ऋषि ने व्योम मे विचरण करते हुए पिता-पुत्र का संग्राम देखा था। रुक्मिणी के अंगजात की वीरता देखकर उन्हें आनन्द हुआ था। वही नारदजी अब घूमते-फिरते उस उद्यान मे आ पहुँचे। प्रद्युम्न को चिन्तातुर देखकर उन्होंने कहा–वत्स! तुम्हे किस बात की चिन्ता है? मेरे सामने कोई बात मत छिपाओ। जो मन मे हो, स्पष्ट कह दो।

ऋषि को देखकर प्रद्युम्न अतीव प्रमुदित हुआ। संभ्रम के साथ उठकर उसने नारदजी को नमस्कार किया। फिर दोनों हाथ जोड़कर वह बोला–ऋषिवर! मुझे चिन्ता इस बात की है कि इतने बड़े संसार मे मेरा कोई भी नही है! माता-पिता शत्रु बने हुए है और भाई निरन्तर प्राण लेने का अवसर ढूँढते

रहते हैं। कही स्नेह नही मिलता, आदर नही मिलता। जीवन मे जरा भी माधुर्य नही, रस नही। मैं अपने जीवन को बोझ की तरह ढो रहा हूँ। ऐसी जिन्दगी की अपेक्षा तो मृत्यु ही अच्छी है ! मुझ मे रूप है, मगर इस बल ने भी अनर्थ कर रक्खा है। मुझ सरीखे अभागी के लिए किसी के हृदय मे रंचमात्र भी स्थान नही है !

नारदजी का हृदय भर आया। वह बोले—वत्स ! ऐसा न कहो। तुम सरीखा सौभाग्यशाली पुरुष तीन खण्डों मे और कोई नही हैं। तुम पुण्य-पुरूष हो। विपुल ऋद्धि के स्वामी हो। मैं तुम्हारे परिवार का और तुम्हारी ऋद्धि का तुम्हें किंचित् परिचय देता हूँ।

: ६ :

प्रस्थान

नारद ऋषि ने अपने गले मे अधिक से अधिक मधुरता लाकर मदनकुमार से कहा—वत्स, सुनो। सौराष्ट्र जनपद मे स्वर्ग के समान सुशोभित द्वारिका नामक नगरी हैं। वहाँ अर्धचक्रवर्त्ती, महान् तेजस्वी वासुदेव श्रीकृष्ण प्रजा का पालन

करते हैं। वही वास्तव मे तुम्हारे पिता हैं। कृष्णजी की बत्तीस हजार रानियों मे अन्यतम पटरानी रुक्मिणी देवी हैं। वह तुम्हारी माता हैं। महाराजा वसुदेव तुम्हारे दादा होते हैं। बहत्तर हजार तुम्हारी दासियाँ हैं। बलदेवजी तुम्हारे ताऊ लगते हैं। तुम्हारे परिवार मे दस महाबली दशार्ह हैं, पाँच सौ महावीर हैं, साठ हजार दुर्दान्त है। तुम्हारा यह परिवार हैं!

बयालीस हज़ार हाथी, बयालीस हजार रथ और बयालीस हजार ही अश्व हैं। अड़तालीस हजार पैदल सैनिक है। छप्पन कोटि परिवार है। तुम्हारी ऋद्धि अत्यन्त विपुल है। यहाँ कीं ऋद्धि तो द्वारिका के ऋद्धि की तुलना मे अत्यन्त तुच्छ और नगण्य हैं। तुम्हारे माता-पिता तुम्हें देखने के लिए अत्यन्त आतुर हो रहे हैं।

वत्स प्रद्युम्न, यहाँ के राजपाट का मोह छोड़ो और शीघ्र ही द्वारिका के लिए रवाना हो चलो। वह तुम्हारा अपना घर है। पर-घर मे मौज मानना व्यर्थ है। मै तुम्हें लेने के लिए ही आया हूँ और एक महान अवसर देखकर आया हूँ। संसार मे अवसर का बड़ा महत्व हैं। अवसर पर ही महान् प्रयोजन सिद्ध होते हैं, अवसर पाकर ही मनुष्य अपनी योग्यता का सिक्का जमाता हैं, अवसर पर ही प्रतिष्ठा और आदर प ता है। अवसर चूका सो चूका। गई बाजी फिर हाथ नही आती।

कुमार प्रद्युम्न ने ऋषि से निवेदन किया—आप मेरे हितैषी हैं, आदरणीय हैं, पूजनीय हैं। आपके आदेश का उल्लंघन करना

मैं योग्य नही समझता। मैं द्वारिका चलने के लिए प्रस्तुत हूँ। किन्तु माता-पिता से आज्ञा प्राप्त किये बिना चलना उचित नही प्रतीत होता। आप अनुमति दे तो मैं उनकी आज्ञा ले लूँ।

नारदजी–वत्स, निःसन्देह तुम विनीत, विवेकवान् हो। माता पिता के समीप जाकर भले उनसे आज्ञा ले आओ। मगर विलम्ब न करना। जल्दी लौट आना। हमे विमान मे बैठकर शीघ्र द्वारिका पहुँचना है।

प्रद्युम्नकुमार नारदजी के पास से रवाना होकर पिता के पास पहुँचा। इस समय कुमार की अवस्था विचित्र-सी हो रही थीं। उसकी आंखे आसू बरसा रही थी। पिता के सामने जाते ही उसका हृदय विव्हल हो उठा। वह चरणों मे गिरकर बोला–पिताजी, मैं आपका कपूत बेटा हूँ। मैने आपको बहुतेरा क्लेश पहुँचाया है। मैं अपने समस्त अपराधों के लिए बार-बार क्षमा चाहता हूँ।

राजा यमसंवर भौंचक रह गये। इस समय अचानक प्रद्युम्न किस प्रयोजन से आया है और क्षमायाचना कर रहा हैं यह वात उनकी समझ में नही आई। आखिर प्रद्युम्न ने सव बात कह सुनाई और द्वारिका जाने का अपना संकल्प प्रकट कर दिया। यमसंवर प्रद्युम्न का संकल्प जानकर अत्यन्त दुखी हुए। उनके हृदय में ऐसी वेदना हुई, मानो एक साथ सैकड़ों बिच्छुओं ने डंक मारा हो।

पिता से मिलकर प्रद्युम्न माता कनकमाला के पास पहुँचा। माता के चरणों में प्रणाम करके, रुद्ध कण्ठ से, हाथ जोड़कर

कहने लगा माता ! आपने मेरी सब इच्छाएँ पूर्ण की हैं। मैं आपके असीम ऋण को चूकाने मे असमर्थ हूं और असमर्थ ही रहुंगा। आप माता-पिता के समान उपकारक तीन लोक मे और कोई नहीं हो सकता। मैं सुनसान जंगल मे विशाल शिला के नीचे दबा अपने जीवन की अन्तिम श्वांस ले रहा था, किन्तु आपने अनूकम्पा करके मेरे प्राण बचा लिये। सुख मे मेरा पालन पोषण हुआ। आपके प्रसाद से मुझे विपुल ऋद्धि की प्राप्ति हुई। औरस पुत्र न होने पर भी आपने अपनी उदारता से मुझे युवराज पद प्रदान किया। इन सब महान् उपकारों का बदला मैं जन्मा-जन्मन्तर में भी नहीं चुका सकता। अब मै अपने कुल में जाना चाहता हूँ। माता-पिता से दूर होते मेरा हृदय अत्यन्त व्याकुल हो रहा हैं, मगर भाग्य का विधान कौन टाल सकता है ? माताजी और पिताजी ! मुझे छाती से लगा लीजिए और चुम्बन लेकर मुझे आशीर्वाद दीजिये।

राजा यमसंवर और कनकमाला के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। प्रद्युम्न सदृश सुयोग्य पुत्र का वियोग कोई साधारण बात नही थी। उनकी छाती फटने लगी। कलेजा कटने लगा। मुख से बोल न निकला। वे सोचने लगे—आखिर पराया तो पराया ही रहा ! हाय, आज प्रद्युम्न हमे छोड़कर चलने को तैयार हो गया !

इसके बाद मदन ने अपनी पांच सौ माताओं को झुक-झुक कर प्रणाम किया और अपने अपराधों की क्षमा मांगी। सब भाइयों से भी विदाई ली और उन्हें सन्तोष तथा सान्त्वना

दी। फिर मन्त्रियों और सामन्तो के प्रति यथोचित शिष्टाचार प्रदर्शित किया उनके आगे मस्तक झुका कर कहा—मेरे अपराधों को क्षमा करना और कृपाभाव बनाये रखना। बदले मे सबने कुमार को दुःखित हृदय मे आशीर्वाद दिया। सभी लोग कुमार के रवानगी का समाचार जानकर अत्यन्त शोकाकुल थे। सभी के नेत्रों से आंसू बरस रहे थे। सब गद्गद् हो रहे थे। किसी के मुख से पूरा वाक्य नही निकलता था। सर्वत्र बेचैनी फैल रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि राजमहल की, नगर की और समस्त राज्य की श्री चली जा रही है। उस समय महल श्मशान की भांति भयानक प्रतीत होने लगा। समस्त प्रजाजन स्तब्ध रह गये!

कुमार राजमहल के समस्त दास-दासियों से भी प्रेम-पूर्वक मिले, सब को सान्त्वना दी और स्नेहभाव बनाये रखने का आग्रह किया।

सबके पश्चात कुमार अपनी पत्नियों के पास पहुंचे। उनसे कहा—प्रियाओ! संयोगवश मैं तुम से विदाई ले रहा हूँ। तुम सुख मे रहना। यहाँ मन न लगे तो अपने पीहर चली जाना। मैं अपने माता-पिता से मिल कर शीघ्र ही तुम्हें बुला लूंगा। किसी भी प्रकार की चिन्ता न करना बहुत जल्दी हमारा-तुम्हारा मिलाप होगा।

कुमार की पत्नियों ने अश्रुजल से कुमार का अभिषेक करते हुए कहा—प्राणनाथ! आपका पथ प्रशस्त हो! आपके समस्त मनोरथ सिद्ध हों। आप द्वारिका के लिये पदार्पण करते हैं

तो भले कीजिए, किन्तु वहां जाकर हमे भूल न जाना। कृपा करके शीघ्र ही दर्शन देना। आप ही हमारे प्राणधार हैं। इस जगत् मे सिवा आपके हमारा और कोई नही है।

इस प्रकार कुमार सब से मिल-जुल कर और विदा लेकर रवाना हुआ। उसे विदाई देने के लिए सब उसके साथ चले। नगर के मुख्य बाजार मे होता हुआ कुमार उसी उद्यान की ओर चला जिसमें नारदजी उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। नगर-निवासी कुमार को जाता देख चकित और विषण्ण हो रहे थे। कोई-कोई आपस मे पूछते—यह पुण्यवान कुमार कहां जा रहा है? इनके माता पिता कौन है?

आखिर कुमार नारदजी के समीप पहुंचा। नारदजी ने कुमार के माता-पिता आदि का परिचय दिया और द्वारिका ले जाने की बात कह कर सब की जिज्ञासा और उत्कण्ठा पूर्ण की।

कुमार ने पुनः माता-पिता को प्रणाम किया और सबसे आज्ञा ली। उस समय का दृश्य अद्भुत था। कुमार के वियोग की वेदना सभी लोगों को विमूढ़ बना रही थी। सब एकाग्र भाव से उसी की ओर टकटकी लगाकर देख रहे थे और आँसू बहा रहे थे। उसी समय नारदजी का संकेत पाकर कुमार प्रद्युम्न विमान पर आरूढ़ हुआ और पक्षी की भांति उड़ चला।

कुमार उड़ गया। लोग देखते रह गये। जब तक विमान आंखो से ओझल न हो गया, लोग खड़े खड़े उसी की ओर देखते रहे। उसके बाद ठगे हुए से, शोक और विषाद से

व्याकुल होकर रोने लगे। सबके हृदय मे प्रेम उमड़ आया विरह बढ़ गया; अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी सर्वत्र शून्यता का आभास होने लगा। बाजारों मे, गलियों मे, घरो और महलों मे, सर्वत्र कुमारकी चर्चा होने लगी। राजमहल और राज-सभा सुनसान दिखाई देने लगी। जैसे नाक के बिना देह और नमक के विना भोजन अच्छा नही लगता, चन्द्रमा के अभाव मे रजनी और जल के अभाव मे जलाशय सुहावना नही लगता उसी प्रकार कुमार के बिना नगर और विशेषत: राजमहल फीका जान पड़ता था। लोग प्रयत्न करके क्षण भर के लिए भी कुमार को भूल नही पाते थे। बार-बार स्मरण करके आँसू बहाते थे। ठीक ही है—सज्जन पुरुष का मिलना सुखद और विछुड़ना अत्यन्त दु:खद होता है।

: ७ :

द्वारिका के पथ पर

इधर नारदजी कुमार प्रद्युम्न का तेज देखकर प्रसन्न और प्रभावित हो रहे थे। वास्तव मे पुण्यवान् पुरुष का प्रभाव निराला होता है। पुण्यशाली पुरुष को पद-पद पर निधान

प्राप्त होते हैं। अपने घर तो सभी आदर और स्नेह पाते हैं, किन्तु पुण्यवान् पराये घर भी असाधारण आदर सम्मान पाता है ! प्रद्युम्न कुमार ने अव तक जो सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त की, वह सब उसके प्रकृष्ट पुण्य का ही प्रभाव था ! पुण्य के ही प्रभाव से नारदजी जैसे विरक्त महापुरुष भी कुमार की मन ही मन प्रशंसा करने लगे।

बूढ़े वावा नारदजी का विमान जीर्ण हो रहा था। कुमार ने उसे भली-भाँति देखा। इच्छा हुई, इसे तोड़कर वावाजी को नया विमान भेंट किया जाय। यह सोचकर कुमार ने विमान मे एक लात लगाई और विमान खण्ड-खण्ड हो गया। फिर नारदजी से कहा—बाबाजी, बड़े-बड़े राजाओं—महाराजाओं और विद्याधरों के पूजनीक होकर भी आपने यह सड़ा-गला विमान क्यों रख छोड़ा है ? इस प्रकार कह कर कुमार हँसने लगा।

नारद मुस्करा कर बोले—भाई, मे, बूढ़ा हो गया हूँ ! मेरे लिए अब अच्छा-बुरा सब समान है। बूढ़े आदमी को बूढ़ा विमान ही भला लगता है। तू जवान है और जवानी का जोर जतला रहा है। तन का और विद्या का वल तुझे प्राप्त है। जो इच्छा हो सो कर।

कुमार—मगर आपको ऐसा विमान सुहाता कैसे है ?

नारद—जैसा-तैसा काम तो दे रहा था ! तू ने तो काम ही अटका दिया ! अव ठिकाने पहुंचना भी दुर्लभ हो गया !

कुमार—चिन्ता न कीजिए। आप जैसा आदेश देंगे, वैसा ही विमान बन कर तैयार हो जायगा।

इस प्रकार कहकर कुमार ने तत्काल विद्या के योग से एक सुन्दर विमान बना दिया। उस विमान का तल अत्यन्त मजबूत और चित्रों से सुशोभित था। उसमें सुवर्ण के स्तम्भ चित्र-विचित्र मणियों और रत्नों से जडित थे। हारों और पुतलियों के चित्रों से वे शोभायमान थे। विमान मे चारों ओर पद्मवरवेदिका बनी थी। उसके नीचे की ओर झुके हुए छज्जे बहुत रमणीक थे। उसमे जगह-जगह वृषभ, हिरण, सर्प हाथी, अष्टापद, सिंह, शार्दूल आदि चतुष्पदों के तथा आम, जामुन, केला, कचनार अशोक पलाश आदि वृक्षों के चित्र सुशोभित हो रहे थे। कही कही इतिहास की घटनाएँ अंकित थीं। राम-रावण के युद्ध का दृश्य चित्त को अपनी ओर आकर्षित करता था तो कहीं कोई दूसरा दृश्य आंखो को अपनी तरफ खींचता था। कही हंस, सारस, कीर मैना, कोकिल आदि पक्षियों के जोड़े बेजोड़ सुन्दरता से मन को मुग्ध कर रहे थे! विमान का शिखर बड़ा ही मनोहर था। चारो तरफ गुम्बज बने थे और उन पर पांच मणियों के कलश स्थापित किये हुए थे। ध्वजाएँ और पताकाएँ फहराती हुई प्रद्युम्नकुमार के पुण्य और यश को प्रकट कर रही थी। विमान मे मुलायम गद्दी, तकिया, दरी, गलीचा आदि यथा स्थान सजे हुए थे।

उस नवनिर्मित विमान मे कई खण्ड थे। खाने-पोने के लिए एक खण्ड अलग था। सोने के लिए कमरा अलग था और बैठक का भाग भी अलग था।

इस प्रकार अत्यन्त सुन्दर और मनोहर विमान तैयार करके कुमार ने हाथ जोड़कर नारदजी से कहा—लीजिए बावाजी, यह विमान स्वीकार कीजिए। यह आपकी महिमा के अनुरूप है। नारदजी कुमार के कौशल को देख कर हर्षित हुए।

दोनों विमान मे सुखशांती पूर्वक बैठ गये। कुमार विद्या के बल से विमान चलाने लगा। आकाश मे चलता हुआ विमान ऐसा लगता था, मानों सहस्त्र किरणों से झिलमिल-झिलमिल करता हुआ सूर्य चल रहा हो !

विमान धीमे-धीमे चल रहा था। यह देखा नारदजी बोले—वत्स, हम लोगों को जल्दी पहूँचना है। इतनी धीमी गति से चलने पर तो विलम्ब हो जायगा ! जरा जल्दी चलाओ।

प्रद्युम्नकुमार कुतूहल—प्रिय था। नारदजी की आज्ञा पाकर उसने प्रबल वेग से विमान चलाना शुरु किया। विमान का वेग धीरे-धीरे इतना बढ़ गया कि नारदजी का सम्भलना कठिन हो गया। उनके दण्डकमंडल इधर-उधर लुढ़कने लगे। यह देख प्रद्युम्नकुमार अपनी हँसी न रोक सका।

नारदजी ने कहा—तू बड़ा चपल है कुमार ! अपनी इच्छा के अनुसार विमान चला ! तेरी हँसी मेरे लिए मुसीबत हो रही है।

कुमार ने नारदजी को सीधा बिठाया और विमान का वेग कुछ कम कर दिया।

चलते-चलते रजत पर्वत को लाँघ कर विमान समभूमि पर आगया। खदिरा अटवी में आने पर नारदजी ने वह शिला बतलाई, जिसके नीचे असुर नें प्रद्युम्नकुमार को दबा दिया था। आगे चलकर वनगिरि, किंनरी नदी आदि का परिचय देते हुए दोनों अपना मार्ग तय करने लगे।

इस प्रकार आनन्द पूर्वक चलते-चलते प्रद्युम्नकुमार ने एक बड़ा विशाल सैन्यदल देखा। उसमे हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि सभी थे। वड़े-वड़े राजा, राजकुमार, शूरवीर योद्धा थे। गगन को कम्पित करने वाले बाजे वज रहे थे। यह दृश्य देखकर कुमार ने हाथ जोड़ कर नारदजी से पुछा--बाबाजी! यह क्या है? यह कौन महाराजा है और किस प्रयोजन से इतनी विशाल सेना लेकर, कहाँ जा रहा है? ऐसी सेना तो मैने विद्याधरों मे भी नही देखी। भूचरों की यह सेना देखकर मेरा मन अत्यन्त उल्लसित हो रहा है।

नारदजी---वत्स, तुमने अच्छा प्रशन किया है। मैं तुम्हें आदि से अन्त तक समग्र वृत्तान्त बतलाता हूँ। इस सेना के साथ तुम्हारे और तुम्हारी माता के भविष्य का घनिष्ट सम्बन्ध है। तुम ध्यान-पुर्वक सुनो।

: ८ :

पूर्व वृतान्त

नारदजी ने प्रद्युम्नकुमार से कहा—मैं पहले ही बतला चुका हूँ कि द्वारिका नगरी के अधिपति और यादव-कुल के चन्द्रमा श्रीकृष्ण वासुदेव तुम्हारे पिता है। सत्यभामा उनकी पटरानी है, रूप मे अप्सरा को भी मात करने वाली ! मगर वह बड़ी अभिमानिनी है और दूसरों का तिरस्कार करने मे तनिक भी संकोच नही करती।

उन्हीं दिनों हस्तिनापुर के राजा ने, जिसके साथ कृष्णजी की परम प्रीति थी, अपना दूत द्वारिका भेजा। दूत सन्देश लेकर आया कि अगर मेरे यहां कन्या और आपके यहाँ कुमार का जन्म होगा तो उनकी सगाई कर देंगे। कदाचित् मेरे यहां कुमार और आपके यहां कुमारी का जन्म होगा तब भी दोनों की सगाई करेंगे। श्रीकृष्ण ने कुरुराज का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

वासुदेव ने यह बात सत्यभामा से कही। सुनकर सत्यभामा फूली नहीं समाई। वह उस समय गर्भवती थी। उसे विश्वास था कि मै पुत्र का प्रसव करूंगी और बड़े घर में उसका विवाह हो जायगा !

आखिर सत्यभामा ने रुक्मिणी को अपने महल मे बुलाकर, बलदेव और श्रीकृष्ण की साक्षी मे, किस प्रकार शर्त की, इत्यादि वर्णन, जो पहले किया जा चुका है, नारदजी ने प्रद्युम्नकुमार को कह सुनाया। किस प्रकार एक ही रात्रि मे रुक्मिणी के उदर से प्रद्यूम्न का और सत्यभामा के उदर से भानुकुमार का जन्म हुआ, किस प्रकार छठे दिन प्रद्युम्न का अपहरण हो गया, आदि आदि वृत्तान्त भी उन्होंने प्रद्युम्न को बतला दिया। सर्व वृत्तान्त के पश्चात् अन्त में नारदजी बोले—भानुकुमार उम्र मे तुम्हारे बराबर हीं हैं। अब उसका विवाह हो रहा है। दोनों तरफ बड़ी-बड़ी तैयारियां हुई हैं। हस्तिनापुर के कुरुवंशी राजा दुर्योधन की कन्या उदधिकुमारी रूप मे देवांगना के समान है। उसका श्रृंगार करके और उसे पालकी मे बिठला कर कुरुराज दुर्योधन द्वारिका जा रहे हैं। वहाँ दोनों का विवाह-संस्कार होगा। भानुकुमार का विवाह होते ही सत्यभामा हर्षित होकर तुम्हारी माता रुक्मिणी के मस्तक के बाल मुंडवा लेगी। बेचारी रुक्मिणी की वनोवेदना का पार नही रहेगा।

यह विशाल सेना, जिसे तुम देख रहे हो, दुर्योधन की ही है। यह उदधिकुमारी के साथ द्वारिका जा रही है। वत्स प्रद्युम्न ! यह सेना क्या जा रही है रुक्मिणी की साक्षात् विपत्ति जा रही है। तुम सरीखे समर्थ सपूत की विद्यमानता में भीं क्या माता पर ऐसी घोर विपदा आ पड़ेगी ? ऐसा होना तो नही चाहिए। माता का संकट टालने के लिए तुमसे कुछ बन सकता हो तो करो।

नारदजी की बात सुनकर प्रद्युम्नकुमार को विषाद भी हुआ और जोश भी आया। अपनी माता की स्थिति को

सोचकर उसको खेद हुआ और सहज वीरत्व की प्रेरणा से जोश भी आया।

प्रद्युम्नकुमार ने नारदजी से कहा—इस पृथ्वी पर कौन माई का लाल है जो मेरे जीते जी मेरी माता के केश ले सके! यह सेना क्या चीज़ है, इससे सौ गुनी हो तोभी मैं उसका सामना कर सकता हूं, उसके छक्के छुड़ा सकता हूं। आप देखते रहिए, मै क्या चमत्कार दिखलाता हूँ! दुर्योधन को, उसके वीरों को और उसकी सारी सेना को अभी-अभी अपनी करामात दिखलाता हूँ। अगर मैने इसका तेज फीका न कर दिया तो मै अपनी माता का पुत्र नही!

प्रद्युम्न कहता गया—बाबाजी, मुझे कुतूहल बड़ा ही प्रिय है। कौतुक किये बिना मुझसे रहा नही जाता। आप यही ठहरिये और मेरे कौतुक को देखिए। मैं समस्त राजाओं को किस प्रकार नचाता हूं और किस प्रकार उनके दर्प को चूर्ण करता हूं, यह आप शीघ्र ही देख लेंगे। उदधिकुमारी को आपके चरणों में झुकाने के लिए लेकर आऊंगा!

नारदजी स्वभावतः कलहप्रिय थे। फिर भी रुक्मिणी पर उनका स्नेह भी था। इस कारण वे यही चाहते थे। प्रद्युम्नकुमार का कथन सुनकर उन्हें हार्दिक सन्तोष हुआ। उन्होंने कहा—शाबास बेटा! तुमसे ऐसी ही आशा थी। तुम सरीखे पुत्र अपनी माता का संकट नहीं टालेंगे तो फिर कौन टालेगा? तुम शूरवीर हो और विद्यावान् हो। तुम्हारे कौशल और बल का मुकाबला करने की किसी मे शक्ति नही है। तुम जाओ,

अवश्य जाओ। मै तुम्हारी कुशलता और वीरता को यही से देखूंगा।

इस प्रकार नारदजी की अनुमति पाकर मदनकुमार प्रसन्न हुआ। वह किस प्रकार कुरुराज को छलता है और उदधि-कुमारी को प्राप्त करता है, यह वृत्तान्त आगे बताया जायगा।

: ९ :

चुनौती

—※※—

प्रद्युम्नकुमार कुरुराज को छलने के लिए तैयार हो गया। उसने अपने असली वस्त्र और आभुषण उतारकर नारदजीके सामने रख दिये और विद्या के बल से वैक्रिय रूप धारणकर लिया। नारद उसकी चतुराई देखकर वहुत प्रसन्न हुए। प्रद्युम्न विमान से बाहर आया।

प्रद्युम्नकुमार अब भीलराज बन गया था। उसका रूप बड़ा ही कुरूप दिखलाई पड़ता था। उसका शरीर ताड़-सा ऊंचा, कोयला समान काला और रूखा था। मस्तक पर बिखरे हुए विरले बाल थे, उनमें कोई पीले, कोई सफेद थे। ललाट

पर तीन गहरी रेखाएँ साफ दिखाई देती थीं और वालों की लटें उन पर गिर रही थीं। भौंहे चितकवरी थीं। सारे शरीर पर रोम थे—लम्बे-लम्बे और घने। चपटी नाक से सेड़ा (रेंट) निकल रहा था और वह मूछों पर लगा था। दोनों गाल कूप के समान गहरे थे. जैसे मुंह मे घुसने की तैयारी कर रहे हैं। उन पर सल पड़े थे। आंखें लाल-लाल थीं और उनमे गीड़ चिपका था। होट मोटे-मोटे, काले और लड़थड़ कर रहे थे। पोपले मूंह से लार टपक रही थी और वह ठुड्डी को स्नान करा रही थी। उसकी दाढ़ी और मूंछ सघन चितकवरी और लम्बी थीं। गर्दन टेंढ़ी और भयंकर थी। छाती आगे को निकली हुई थी। दोनों कानों का तो पूछना ही क्या है! वे ऐसे जान पड़ते थे जैसे दोनों ओर दो सूप (छाजले) लटका दिये हों! उनमें पीतल की वड़ी-बड़ी वालियां लटक रही थीं। छोटे-छोटे दोनों हाथ थे और उनमें काले नाखून थें। दोनों तरफ की कांखों मे बाल ऐसे लटक रहे थे, जैसे ऋषि की जटाएं हों! भीतर की तरफ घुसा हुआ पेट गड्ढे के समान जान पड़ता था। टेढ़ी-मेढ़ी और नमी हुई कमर थी। जांघें मोटी और रोमों से व्याप्त थी। कमर पर एक लंगोटा बंधा हुआ था, शेष शरीर नंगा था। उसके गोडे मोटे-मोटे थे और हड्डियाँ बाहर की तरफ निकली थी। पिंडलिया जाँघों के मुकाबले मे अत्यन्त पतली थी। चौड़े-चपटे पांवों की लम्बी-लम्बी उँगलियाँ बड़ी भद्दी दिखाई देती थी।

भीलराज के सिर पर टूटे-फूटे कपड़े की चिन्दी वंधी हुई थी। कमर पे कपडे का लाल-सा कटिसूत्र था। उसकी कांख मे एक जीर्ण-शीर्ण-धनुष और दो-चार थोथे बाण थे।

इस प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर वीर भीलराज सेना के सामने अड़कर खड़ा हो गया। आगे चलने वालों ने उसे एक ओर हट जाने का आदेश दिया तो अत्यन्त उपेक्षा के साथ मुस्कराकर वह बोला–मेरा कर चुका दो और आगे बढ़ो। बिना कर चुकाये एक कदम किसी को भी आगे न बढ़ने दूंगा।

लोगों ने भील को समझाने का बहुत यत्न किया, कुरुराज का भी भय दिखलाया, मगर भील टस से मस न हुआ। जब और लोग समझाते-समझाते हार गये तो स्वयं दुर्योधन को आना पड़ा। दुर्योधन ने आकर कहा–'भीलराज! क्यों हमारे सामने अड़ गये हो? क्या चाहते हो, जरा साफ-साफ बतलाओ न भाई।'

भीलराज दृढ़ स्वर मे बोला–'यहाँ मेरी चौंकी है और हरेक आने-जाने वाले को कर चुकाना पड़ता हैं। आप आगे जाना चाहते हैं तो कर अदा कर दीजिए और प्रसन्नतापूर्वक जाइये।

भीलराज का कथन सुनकर दुर्योधन को क्रोध आ गया। वह कड़क कर बोला–'कर चुकाना वणिकों का काम है। तूने हमे क्या वणिक समझ रक्खा है? तेरे लिए थैलियाँ भर कर लाये हैं जो कि अभी तेरे सामने रख देंगे!

भीलराज––तो फिर आगे बढ़ने की आशा छोड़ दीजिए।

दुर्योधन के गुस्से का पार न रहा। उसने कहा––चल-हट सामने से! अनजान मे तूने हमे रोक दिया है, इसलिए

तेरी गुस्ताखी को हम माफ कर रहे हैं! अन्यथा अभी तक तो तेरी चटनी वन गई होती।

भीलराज–मैने अनजान मे नही रोका है, आप स्वयं अनजान मे कर अदा करने से इन्कार कर रहें हैं। आपको मालूम होना चाहिए कि महाराज वासुदेव श्रीकृष्ण ने यह सारा प्रदेश मुझे सौंप रखा है। उनका आदेश है कि इस रास्ते से निकलने वाले प्रत्येक पंथी से तू कर वसूल करना। पथिक के पास जो सर्वश्रेष्ठ वस्तु हो वह तू ले लेना। न दे तो उसे योग्य शिक्षा देना।

दुर्योधन–कृष्णजी के साथ तेरी ऐसी क्या मैत्री है कि उन्होंने तुझे इतना बड़ा अधिकार दे रक्खा हैं ?

भीलराज–आप मुझे नही पहचानते, मै कृष्णजी का पुत्र हूं।

भील की बात सुनकर लोग अपनी हंसी न रोक सके। दुर्योधन भी हंसा और बोला–अच्छा, यह तो वतलाओ कि यदुपति के तुम सरीखे और कितने पुत्र हैं ?

भीलराज—मेरे समान तो अकेला मै ही हूं। आकाशमे तारे बहुत होते हैं, चन्द्रमा तो एक ही होता है कुरुराज !

लोग उपहास करने लगे। किसी ने कहा शावास भाई शावास ! बात तो सच्ची कहता है। हरिवंश मे तू अनुपम रत्न है। कौन तेरी बरावरी कर सकता है ? तू यादवनाथ का असाधारण वेटा है !

भीलराज—तुम्हारा कहना ठीक ही है। वास्तव मे मैं ही अपने वंश मे चिन्तामणि के समान हूं। हरिवंश मे मुझ-सा दूसरा न पाओगे। भला चाहते है तो मेरे पैरो मे गिरो।

दुर्योधन ने कहा—ठीक ही है, तू पूजा करने योग्य ही प्रतीत होता हैं। अभी पदत्राण से तेरी पूजा की जायगी। जान पड़ता हैं, सिर मे खुजली बहुत चल रही है।

भीलराज—भला इतनी हिम्मत है किसमें ?

दुर्योधन—चुप रह भील्लड़ ! छोटे मुंह बड़ी बात बकते तुझे शर्म नही आती ! किसने तुझे इतनी बातें सिखला दी हैं ? एक तरफ हट जा और हमे जाने दे ! अब तक हमने गम खाई है। गुस्ताखी की तो समझ लेना, अब खैर नही है। सिर पर रहे सहे बाल भी झड़ जाएंगे।

भीलराज क्रोध से काँपने लगा। उसकी लाल आँखे और भी लाल हो उठी। होठ फड़कने लगे। वह बोला—धृष्ट कौरव ! मैं तुम्हें भली-भांति पहचानता हूं। तुम घोर कपटाचारी हो। तुमने पांडवों को अपने कपट-जाल मे फांसकर उनका राज्य हड़प लिया है ! अंधे बाप के बेटे तुम भी अंधे हो। तुम्हारी मति मारी गई है ! मगर मैं तुम्हारी मति ठिकाने लादूंगा। तुम्हारे गर्व का नशा उतार दूंगा ! न उतार दूं तो अपना नाम बदल दूंगा। मैं जानता हूं, किस प्रकार तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम जैसे के तैसे पैदा हुए हो ! इसीलिए तो मुंह से नीचता भरी बात निकाल रहे हो ! मै देखता हूं, तुम्हारे

पास कितनी शक्ति है ! हिम्मत हो तो आ जाओ सामने अपनी फौज के साथ !

: १० :

कुरुराज-पराजय

भीलराज-वेषी प्रद्युम्नकुमार के दृढ़ता और तेजस्विता भरे वचन सुनकर कुरुराज समझ गया कि यह व्यक्ति साधारण भील नही हो सकता। इसमें कुछ न कुछ करामात है, रहस्य है, विशेषता है। इसके साथ उलझना योग्य नही है।

यह सोचकर दुर्योधन बोला-अच्छा, बाबा, अच्छा। तू अपने मन की बात बता। तुझे क्या चाहिए ? घोड़ा चाहिए तो ले ले, मदोन्मत्त हाथी लेने कीं इच्छा हो तो वह ले ले, और कुछ चाहिए तो बतला दे।

भीलराज--मैं हाथी घोड़ा लेकर क्या करूँगा ? मुझे जो अच्छी लगेगी वही वस्तु लूँगा। पहले सारी चीजें मुझे दिखला दो। मेरे साथ आप सेना में आइए और सब दिखला दीजिए।

दुर्योधन कौतुक से प्रेरित हो, उसकी बात मान गया। भीलराज ने दुर्योधन के साथ घूम-घूम कर एक छोर से दूसरे छोर तक सारी सेना देख डाली। सब कुछ देखने के पश्चात् भील बोला-आपके पास अच्छी से अच्छी वस्तु यह कुमारी है। यही मुझे पसन्द आई है। यही मुझे दे दीजिये।

भील की बात सुन दुर्योधन खीज उठा। बोला–अविवेकी कहीं के! यह तू क्या कह रहा है?

भील–मैं लूंगा और इस कुमारी को ही लूंगा। मेरा यह दृढ़ संकल्प अन्यथा नही हो सकता। फजीहत से बचना हो तो शीघ्र ही कुमारी मुझे सौंप दीजिए। अगर आपने देने से इन्कार किया तो व्यर्थ ही दुख भुगतना पड़ेगा।

दुर्योधन—धृष्ट! क्यों वकवास करता है! तू हृद दर्जे का निर्लज्ज जान पड़ता है। जरा अपनी जाति, अपने रूप और अपने वल को तो विचार कर देख! पिशाच की मूर्ति है और राजकुमारी की अभिलाषा करता है। आखिर तो गवार ही रहा न! अपने भाग्य को देखकर विचार कर!

भील—कुरुराज! आपकी घृणा व्यर्थ है। मनुष्य का मूल्य न रूप से है, न जाति से है। मनुष्य का मनुष्यत्व तो उसके सद्‌गुणों मे हैं। मुझ मे सद्‌गुणों की कमी नही है।

यदि सन्ति गुणाः पुंसां, विकसन्त्येव ते स्वयम्।
न हि कस्तूरिकामोदः, शपथेन विभाव्यते॥

मनुष्य मे गुण होते हैं तो वे स्वयं ही प्रकट हो जाते हैं। कस्तूरी की गन्ध को प्रकट करने के लिए कसम खाने की आवश्यकता नही पड़ती। नीतिकारों ने और भी कहा हैं–

गुणानर्चन्ति जन्तूनां, न जातिं केवलां क्वचित्।
स्फाटिकं भाजनं भग्नं, काकिन्यापि न गृह्यते॥

मनुष्य के गुणोंकी पूजा होती हैं, केवल जाति नही पूजी जाती। स्फटिक का पात्र फूट जाने पर भी कौड़ी से नही खरीदा जाता।

भील कहता है—कुरुराज ! आप मेरी जातिका विचार न करें—' **गुणाः पूजास्थानं गणिषु न च लिंग न च वयः।** ' गुणों का ही गुणीजनों का आदर करना चाहियें, वेष का या उम्र का नहीं।

कुरुराज—देख, जो छोटे मुँह बड़ी बात कहता है, उसे तमाचा खाना पड़ता है। कोई बौना आदमी ऊँचे आम के फलों को प्राप्त करने की इच्छा करता है तो वह मूर्ख कहा जायगा। तेरा इतना पुण्य नही कि तू राजकुमारी को प्राप्त कर सके। पतंग दीप-शिखा को देखकर सोना लूटने की इच्छा से उस पर टूट पड़ता है किंतु फल क्या होता है? उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। भील ! तुझे अपने प्राण प्यारे हैं तो तू अपनी हैसियत के अनुसार वस्तु मांग ले। अन्यथा मैंने तेरी जिन्दगी का ठेका नही लिया है।

इस प्रकार कुरुराज दुर्योधन ने भीलराज को बहुतेरा समझाया, पर वह अपनी मांग से तिल भर भी नही हटा। वह रास्ता रोक कर खड़ा हो गया।

विवश दुर्योधन ने अपनी सेना को आदेश दे दिया। यहाँ खड़े-खड़े बहुत देर हो गई है। यह नहीं मानता तो इसे पैरों तले रौंद कर आगे बढ चलो। या तो उठा कर एक किनारे

पटक दो या पैरों से चकनाचूर कर डालो। मौत इसके सिर पर नाच रही है तो कोई क्या कर सकता है ?

दुर्योधन की सेना आदेश पाकर आगे बढ़ी, किन्तु भीलराज ने अपने पैर आड़े कर दिये। सैनिक उसके पैर हटाते-हटाते थक गये, किन्तु सफल न हो सके। सेना फिर ठहर गई। किन्तु अब की बार सुभटों को उग्र क्रोध उत्पन्न हुआ। वे भीलराज पर प्रहार करने के लिए उद्यत हो गये। कोई तीर चलाने लगा, किसी ने तलवार का वार किया, किसी ने अपना जंबूरा आजमाया ! सब सैनिक भयानक कोलाहल करते हुए सावन की झड़ी की तरह शस्त्र-निपात करने लगे। पर उन्हें देखकर आश्चर्य हुआ कि भील का कुछ भी नहीं बिगड़ा !

इसके बाद भील ने अपना धनुष सम्भाला। धनुष की टंकार सुनते ही कौरव-सेना थर्रा उठी। भीलवेषी कुमार ने वाण चलाना आरम्भ किया। विद्या के प्रभाव से एक बाण के सहस्त्र रूप होने लगे। कुमार के बाण अचूक थे। उसके प्रहार से अनेक सैनिक मारे गये, अनेक घायल होकर भूमि पर गिर गये और कराहने लगे। भयानक कुहराम मच गया। आखिर जैसे हिरणों की टोली केसरी सिंह को देखकर भाग खड़ी होती है, उसी प्रकार कुरु देश के सैनिक अपनी जान बचाकर भागने लगे। अन्त में कुमार ने पर्वत को ऐसा हिलाया कि उसका शिखर टूट कर गिर पड़ा। तब तो हाहाकार मच गया, पर गनीमत रही कि उसके नीचे दब कर कोई मरा नहीं। कुमार की इच्छा आतंक फैलाने की थी, किसी को मारने की नहीं।

कुमार ने देखा—अब सभी सैनिक भाग खड़े हुए है और अपना अभीष्ट सिद्ध करने का यही उपयुक्त अवसर है। यह सोच कर वह उदधिकुमारी के पास पहुँचा। उसने पालकी मे से कुमारी को उठा लिया।

राजकुमारी भील का रूप देखकर चीत्कार कर उठी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों सशरीर यमराज उसे पकड़ कर ले जा रहा है! राजकुमारी का हृदयवेधी चीत्कार सुनकर भी किसी की हिम्मत न हुई कि पास फटके! आखिर कुमार राजकुमारी को लेकर आकाश में उड़ गया। दुर्योधन के योद्धा विस्मयविस्फारित नेत्रों से दूर खड़े खड़े देखते रहे।

इधर नारदजी यह सब कौतुक देख रहे थे और अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे। वह सोच रहे थे—यदुकुल में यह बड़ा ही करामाती बेटा जनमा है।

इसी समय राजकुमारी के साथ कुमार नारदजी के पास जा पहुँचा। कुमारी को विमान में एक ओर बिठला कर बाबाजी से बोला—ऋषिवर! आपके आशिर्वाद से मेरा अभीष्ट सिद्ध हुआ। मैंने कौरव कुल की कीर्ति का ही नही हरण किया, वरन् इस लक्ष्मी को भी लाड़ी बना कर ले आया हूँ।

इतना कह कर कुमार ने नारद के चरणों मे प्रणाम किया। नारदजी ने उसकी पीठ ठोक कर आशिर्वाद दिया। कहा-धन्य, वत्स! तुम धन्य हो! तुम हरिवंश के भूषण हो। तुम्हारी

करामात आज मैने आंखों से देखी। मै अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। चिरंजीव रहो!

: ११ :

द्वारिका के निकट

नारदजी का विमान चल पड़ा। उदधिकुमारी प्रद्युम्न-कुमार का भयंकर रूप देखकर कांप रही थी। प्रद्युम्न अब भी भील के ही वेष में था। कुमारी की समझ में नहीं आता था कि यह कौन हैं? किस प्रयोजन से मेरा अपहरण किया गया है? मै कहाँ ले जाई रही हूँ? वह एक ओर मुंह करके अतिशय दीनता पूर्वक रुदन कर रही थी। उसे धीरज बँधाने की नारदजी ने चेष्टा की, पर उसका रोना बंद न हुआ। बेहद बेचैनी के मारे कुमारी का सारा शरीर काँप रहा था।

यह देख नारदजी ने प्रद्यूम्न से कहा—वत्स! अब अपना रूप पलट लो। असली रूप धारण कर लो, जिससे उदधि-कुमारी को धीरज आ जाय। अब इस भील-वेष की कोई आवश्यकता नही है।

प्रद्युम्नकुमार ने उसी समय अपना रूप वदल लिया। वह फिर ज्यों का त्यों असाधारण सुन्दर दिखाई देने लगा। प्रद्युम्न के इस असली रूप को देखकर कुमारी विस्मित रह गई। उसे

प्रसन्नता हुई और धैर्य बंधा। तब कुमारीने हाथ जोड़कर नारदजी से पूछा—आप कौन है ? और कहां जा रहे हैं ? कृपा करके यह भी बतलाइए कि किस प्रयोजन से मुझे यहाँ लाये हैं ?

ऋषि ने कहा—कुमारिके ! चिन्ता न करो, शोक न करो। तुम्हारे सौभाग्य-सूर्य का उदय हुआ है। यह कुमार यादव-कुल का तिलक है। महाराज श्रीकृष्ण और महारानी रुक्मिणी का नन्दन है। यह अपने माता-पिता आदि से मिलने द्वारिका जा रहा है। तुम भयभीत न होओ। तुम्हारी कामना पूर्ण हुई है। अपने भाग्य की सराहना करो कि तुम्हें कुमार ने अपना लिया है।

नारदजी के वचन सुनकर उदधिकुमारी की प्रसन्नता का पार न रहा। वह उल्लास से मन ही मन उछलने लगी।

विमान आगे चल रहा था। कुमार, नारद मुनि के साथ बातचीत और विनोद करता हुआ अपना मार्ग तय कर रहा था। थोड़ी दूर चलकर कुमार ने एक नवीन दृश्य देखा।

एक नगरी ऐसी दिखाई देती थी जैसे स्वर्ग का एक भाग पृथ्वी पर आ पड़ा हो। उसकी रचना अतीव मनोरम और अद्भुत थी। स्वर्गलोक के सदृश झिलमिल-झिलमिल कर रही थी। अठारह हाथ के स्वर्णमय ऊँचे कोट से आवृत्त थी। उस पर रत्नों के नाना वर्ण के कंगूरे थे, जो ज्योतिष्क विमानों की भाँति दमक रहे थे। विशाल वन और उद्यान नजर आ रहे थे। वे सब फलों और फूलों से सुशोभित नाना प्रकार के

तरुओं और लताओं से व्याप्त थे। नगरी के भीतरी भाग में साठ करोड़ महल थे और बाहरी भाग मे चारों वर्णों वालों के बहत्तर करोड़ मकान बने थे। नगरी को देखते ही विदित हो जाता था कि वह खूब समृद्ध है, धन्य-धान्य से परिपूर्ण है और मनोहर हैं।

प्रद्युम्नकुमार उस नगरी को देखकर चकित हो गया। वह अपने स्थान से उठकर नगरी की तरफ जाने को तैयार हुआ। तब नारदजी बोले—कहो वत्स, क्यों उठ रहे हो? अब चित्त मे क्या लहर आई है?

प्रद्युम्न—यह नगरी बड़ी ही सुहावनी प्रतीत होती है। इसे देखने की इच्छा है। जरा देख आता हूँ।

नारदजी कुमार के सामने रास्ता रोक कर खड़े हो गए। नही, मैं नही जाने दूंगा। यह कहकर उन्होंने कुमार का हाथ पकड़कर अपनी जगह बैठा लिया।

प्रद्युम्न—बाबाजी, आखिर बात क्या है? क्यों नही जाने देते? मुझे तो बड़ी उत्कण्ठा हो रही है। असली कारण बतलाइए।

नारद—कुमार, तू बहुत चपल है और जहाँ जाता है वही कुछ न कुछ उपद्रव कर बैठता है। तुझसे सीधे रहा नही जाता। इस नगरी मे जाकर कुछ उत्पात कर बैठेगा तो परिणाम बुरा होगा। महाबलिष्ठ बलभद्र और श्रीकृष्ण यहाँ के राजा है। यहां यादवों का बड़ा जोर हैं। यहां के सरदार भी अत्यन्त तेजस्वी और शक्तिशाली है। यही द्वारिका नगरी है।

प्रद्युम्न-तो मेरे एक वार देख आने मे हानि क्या है ?

नारद--नही, पहले हम दोनों महारानी रुक्मिणी के पास चलेंगे । पहले माता से मिलकर फिर जो मन मे आवे सो करना ।

प्रद्युम्न-एक वार अकेला जाकर देख आता हूँ । फिर आपके साथ चलूँगा और सबसे मुलाकात करूँगा ।

इस प्रकार कहकर प्रद्युम्न अपने स्थान से उठा और नारदजी के ना-ना करने पर भी चल दिया । विद्या के बल से विमान वही आकाश मे बाँध दिया, जिससे वह इधर-उधर सरक न सके ।

कुमार पृथ्वीपर आकार गुप्त रूप से आगे बढा । महान् पुण्य का निधान कुमार नगरी मे पहुँच कर क्या-क्या कौतुक करता है, यह बात आगे दिखलाई जाएगी ।

तृतीय स्कन्ध

: १ :

भानु-मानमर्दन

विद्या-बल से विभूषित, परम पुण्य का आगार प्रद्युम्न-कुमार अपनी माता को देखने की उत्कंठा से जा रहा था। रास्ते में उसे एक राजकुमार दिखाई दिया। वह राजकुमार एक उत्तम अश्व पर आरूढ़ था। जरीदार सुन्दर केसरिया बाना धारण किये था। उसके सिर पर सुन्दर मंदील बँधा हुआ था और उस पर एक चमकदार अत्यन्त देदीप्यमान कलंगी सुशोभित हो रही थी। कमर-बंध कमर में बँधा हुआ था। जरी के तारों की धोती पहने था। हाथ मे सुन्दर रूमाल धारण किये था। उसके कानों में बहुमूल्य कुण्डल, वक्षस्थल पर सुन्दर हार, गले मे कंठा, उंगलियों में रत्नमय अंगूठियां और कमर में कटिसूत्र था! सभी आभूषण अत्यन्त सुन्दर और अनमोल रत्नों से जड़े हुए अद्भुत चमक-दमक दिखला रहे थे। राजकुमार का सुन्दर घोड़ा आगे-आगे चल रहा था। वह घोड़े को थेई-थेई नचाता चल रहा था। उसके पीछे-पीछे बहुसंख्यक सरदार थे।

प्रद्युम्न इस राजकुमार को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने कर्णपिशाचिनी से पूछा—यह कौन है?

कर्ण--यह महारानी सत्यभामा के सुपुत्र भानुकुमार है।

प्रद्युम्न--अच्छा, यही भानुकुमार है? कहां जा रहा है?

कर्ण--कुरुराज की कन्या के साथ शीघ्र ही इनका विवाह होने वाला है। विवाह के उपलक्ष में दावत खाने (विदौरा जीमने) जा रहे है।

प्रद्युम्न--(मन ही मन हस कर) ऐसा! अच्छा, इसे किस चीज का शौक है? कृपा कर यह वतला दीजिए।

कर्ण--इन्हें घोड़ों का वडा शौक है। घोड़ा नचाने में यह होशियार है।

देवी से इस प्रकार सूचना पाकर प्रद्युम्नकुमार को वड़ी प्रसन्नता हुई उसने अपना रुप परिवर्तन कर लिया। वह घोड़ों का व्यौपारी बन गया। बूढ़ा और शरीर से दुवला-पतला! सिर के बाल रुई की तरह श्वेत! विना दांतों का पोपला मुख! बुढ़ापे के कारण थर-थर काँपती हुई गर्दन! कांपते हुए हाथ और पैर! झुकी कमर! इस प्रकार के रूपधारी कुमार ने विद्या के वल से एक सर्वोत्तम घोड़ा बना लिया। वह घोड़ा लाल रंग का. खूब हृष्टपुष्ट, लम्बे पेट वाला, उच्च स्कन्ध वाला और छोटे कानों से सुशोभित था। उसके कपाल पर सुन्दर दीपक के आकार का तिलक था। समस्त शरीर में सघन रोम थे। उसकी आकृति से और शालिहोत्र-वर्णित लक्षणों से जान पड़ता था कि घोड़ा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला है। उसकी पुंछ और गर्दन के बाल बड़े सुन्दर थे, लम्बे थे। खुर भी भले प्रतीत होते थे। अंग-अंग सुहावना लगता था। वह समस्त लक्षणों और व्यंजनों से विभूषित था। उसके ऊपर

रत्नजटित स्वर्ण-निर्मित सुन्दर काठी थी। उसके चारों तरफ मोतियों के गुच्छे लटक रहे थे। पाँवडे अलग ही अपनी सुन्दरता प्रकट कर रहे थे। चमकते-दमकते आभूषणों ने अश्व की शोभा सौ गुनी कर दी थी।

घोड़े का व्यौपारी अपने मस्तक को कँपाता हुआ और घोड़े को नचाता हुआ भानुकुमार के सामने आया। कुमार सर्व लक्षणसम्पन्न, सुन्दराकार अश्व-रत्न को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने व्यापारी को अपने समीप बुलवाया। व्यापारी कुमार के पास आया। कुमार ने प्रश्न किया---बाबा तुम कौन हो ? तुम्हारी जाति क्या है ? किस प्रयोजन से यहाँ आये हो ? यह घोड़ा साथ में किस लियें लाये हो !

बूढ़े व्यापारी ने उत्तर दिया---मैं परदेशी हुँ और घोड़ों का व्यापारी हूँ। मैंने सुना है कि वासुदेव के सुपुत्र भानुकुमार को घोड़ों का बड़ा शौक है। उनके लिए यह अश्वरत्न लेकर यहां आया हुँ। कुमार घोड़े को देखते ही पसन्द कर लेंगे, मुझे मुंह माँगे दाम मिलेंगे ! यह घोड़ा उन्हीं के योग्य है।

भानुकुमार---अच्छा, तो कहो घोड़े का मोल क्या है ? जो कहोगे, मिलेगा।

व्यापारी---एक करोड़ सोनैया इसका मूल्य है पृथ्वीनाथ ! पहले अश्व की परीक्षा कर देखिए और फिर मूल्य दीजिए।

यह सुन भानुकुमार ने घोड़ा सम्भाला। घोड़े पर सवार होकर एक हाथ में लगाम पकड़ी और दूसरे में घोड़ा सम्भाला ! मगर घोड़ा एकदम आकाश में उड़ गया। साथ के सरदार

और दूसरे लोग यह अद्भुत घटना देखकर सहसा विस्मित हो गये। वे चिन्ता मे डूब गये कि–हाय, अब भानुकुमार की न जाने क्या हालत होगी ! आकाश में उड़ते हुए घोड़े को देखकर सूर्य को भी भ्रम हो गया कि वास्तव में यह घोड़ा इसका है या मेरा हैं ! आकाश में घोड़ा कभी ऊपर, कभी नीचे और कभी तिरछा जाता हुआ नृत्य करने लगा। वह उछल उछल पड़ता था। रोके रुकता नही था। यह हालत देखकर भानुकुमार भी सोचविचार में पड़ गया कि अब क्या करना चाहिए ? घोड़ा थमता हीं है, आबरू जाने को तैयार है !

आखिर भानुकुमार की पगड़ी नीचे गिर पड़ी। पगड़ी के गिरते ही कुमार लज्जा के कारण घबड़ा उठा और उसी घबराहट मे वह स्वय भी नीचे आने लगा ! दर्शकों के आश्चर्य और कौतुहल का पार नही रहा। कुछ लोग तालियां पीट-पीट कर हँसने लगे और कुछ विषाद व्यक्त करने लगे। व्यापारी बोला–इससे अधिक आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है कि वासुदेव के पुत्र भी अश्व को काबू में न कर सके ! आप तो युवराज कहलाते हैं, और अश्व-विद्या में अत्यन्त दक्ष सुने जाते हैं ! अगर अश्व को भी काबू मे नहीं रख सकते तो इतने बड़े राज्य की कैसे रक्षा कर सकोगे ? क्षमा करना कुमार ! आपके लिए यह बड़ी ही लज्जा की बात है। आप जैसे पुत्रों से कुल की कीर्ति बढ़ नहीं सकती उसका ह्रास ही हो सकता है !

भानुकुमार से न रहा गया। लज्जा का मारा कुमार खीज उठा। वह चिढ़कर बोला–अबे नरकंकाल ! चुप भी रह, क्यों बक-बक करता है ! अब जीभ हिलाई तो खैर नही।

बड़ा होशियार बना फिरता है। जरा तू भी तो चढ़कर देख! मै भी देखु तेरी होशियारी! देखूँ, तू किस प्रकार सकुशल घोड़े को फिरा सकता है!

व्यापारी ने गिड़गिड़ाते हुए कहा—कुमार, क्षमा कीजिए। इस अश्व पर चढने की शक्ति मुझ मे होती तो इसे बेचने का विचार ही क्यों करता? इसके बदले में मूल्य लेकर क्या उसे चबाऊँगा? हिम्मत नही रही, इसी से तो इसे बेचने का विचार किया है। किसी समय मैं भी जवान था और उस समय इससे भी अधिक उत्पाती घोडों पर सवारी किया करता था। मै घोड़ा खेलने की कला मे बहुत दक्ष हुँ। किन्तु आज इतनी भी शक्ति नही रही कि उछल कर इस पर सवार हो सकूं! हा, कोई उठाकर घोड़े पर बिठला दे तो फिर भी चमत्कार बतला सकता हूँ।

भानुकुमार को उत्कण्ठा हुई, देखें यह बूढ़ा किस प्रकार घोड़े को खेलाता है! यह सोचकर उसने आदमियों की तरफ इशारा किया इशारे को समझ कर पांच-सात आदमी आगे बढ़े और बुढ़े को अधर उठा कर घोड़े पर सवार करने की चेष्ठा करने लगे। मगर प्रद्युम्नकुमार ने उस समय अपना शरीर पारे की तरह भारी बना लिया। आदमी जोर लगाकर थक गये, पर वह उठता दिखाई न दिया। थोड़ी देर इस प्रकार परेशान करने के पश्चात् वह कुछ हल्का हुआ। आदमियों ने ऊँचा उठाया कि फिर भारी होकर धड़ाम से उन्हीं के ऊपर गिर पड़ा। उठाने वाले स्वयं गिर पड़े और उनके अंग-अंग फुट गये!

कुमार हँसने लगा। दुसरे देखने वाले भी अपनी हँसी नही रोक सके। उठाने वाले लज्जित होकर अपना शरीर सम्हालने लगे।

दूसरी वार कुछ हैकड़ीवाज लोग वुढ़े को उठाने आगे वढ़े। उन्होंने भी भरपूर जोर लगाया, मगर उनकी भी वही दशा हुई जो पहले वालों की हुई थी। किसी की खोपड़ी फूट गई, किसी के दाँत टूट गये।

आखिर भानुकुमार से नही रहा गया। उसे अपने वल का अभिमान था। उसने बूढ़े की कमर मे हाथ डालकर उसे उठाने का प्रयत्न किया। बूढ़ा कुछ ऊपर उठ भी आया। मगर फिर उसके शरीर में ऐसा भारीपन आ गया कि भानुकुमार उसे सम्भाल न सका। सम्भालना तो दूर रहा, स्वयं भी न सम्भल सका। कुमार गिर पड़ा और उसी के ऊपर बूढ़ा भी गिर पडा।

यह सब बुढ़े की ही करामात थी। मगर दिखावटी क्रोध करके उसने कहा-हाय! पटक-पटक कर मुझे अधमरा कर दिया! अरे यदुनाथ का माल खा-खाकर क्या गोबर करना ही सीखा है तुम लोगों ने? एक दुबले-पतले बूढ़े को उठाने मे जिनका यह हाल है, वे इतने बड़े राज्य का बोझा कैसे उठाएँगे? मैं तो समझता था, यादव परिवार बडा शूरवीर है, मगर जहाँ युवराज की यह हालत है, वहाँ दूसरों से क्या कहा जाय?

इस प्रकार भानुकुमार की लानत-मलामत करके बूढ़ा, भानुकुमार की छाती पर पैर रखकर, उछलकर नौजवान की

तरह घोड़े पर सवार हो गया। उसने अपनी कमर कस ली थी और जम कर घोडे पर बैठा था। वह घोडे की लगाम खींच कर शान के साथ घोडे को खेलाने लगा। घोड़ा कभी चकरी की तरह फिरने लगा, क़भी दो पैरों पर खड़ा होने लगा और नाचने लगा ! यह अद्भूत और मनोरंजक अश्व-क्रीड़ा देखकर भानुकुमार और दूसरे राजपुत्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। लोग घोडे को और घुड़सवार को शाबासी देने लगे कुछ समय तक इस प्रकार दर्शकों को चकित करता हुआ घोड़ा और घुड़सवार अचानक ऊपर उडे और फिर चील की तरह अदृश्य हो गये ! राजकूमार आँखें फाड़-फाड़ कर देखते रह गये, मगर फिर कुछ भी दिखाई न दिया।

घटना अद्भुत थी। किसी की समझ में न आया कि घोड़ा और सवार कहाँ और कैसे गायब हो गए ! सब लोग विस्मित और चकित थे। कोई कहने लगा—यह दैवी माया थी। । देव ने आकर कुतूहल किया है !

इधर कई लूले,लंगड़े हो गए थे। कइयों के मुख से रुधिर वह रहा था। भानुकुमार भी अछूता नही वचा था। उसके अंग-अंग मे प।ड़ा हो रही थी। घुटने छिल गये थे। दाढ़ी की चमड़ी छिल जाने के कारण घोर वेदना हो रही थी। सब लोग मन ही मन लज्जा का अनुभव कर रहे थे और कुढ़ रहे थे। मगर कर कुछ नही सकते थे। आखिर सब लोग अपने-अपने घर लौट गये ! भानुकुमार भी अपने महल मे चला गया। इतनी लज्जा झेलने का उसके लिए यह प्रथम

अवसर था। उसे किसी को अपना मुंह दिखलाने की इच्छा नही होती थी।

: २ :

दूसरा-चमत्कार

भानुकुमार की प्रतिष्ठा को धूल मे मिलाकर प्रद्युम्नकुमार प्रसन्न हो रहा था। वह अपना रूप वदलकर द्वारिका के सौन्दर्य को निहारने के लिए आगे बढ़ा। उसकी दृष्टि एक उद्यान पर पड़ी और उद्यान की मनोहरता देखकर वही ठहर गई। उद्यान वास्तव मे अत्यन्त सुन्दर था भाँति-भाँति के पुष्पों से सुशोभित, मनोहर फलों से समृद्ध और सघन लताओं से व्याप्त था। उसकी एक बड़ी विशेषता यह थी कि वह सभी ऋतुओं मे सुखद और अनुकूल था।

कुमार ने उद्यान को देखकर कर्णपिशाचिनी से पूछा—यह उद्यान किसका है ?

कर्ण पिशाचिनी बोली—इसपर सत्यभामा का अधिकार है।

इतना सुनना था कि कुमार ने अश्व का रूप धारण कर के उद्यान के हरे-हरे घास को कुछ चर लिया और कुछ अस्त-व्यस्त कर दिया। फिर शूकर का रूप धारण करके लताओं को, वृक्षों को और पौधों को उखाड़ डाला। समस्त उद्यान उजड़ गया। उसकी श्री नष्ट हो गई। माली बुरी तरह घबराया। उसने उद्यान को वचाने की लाख चेष्टा की, मगर सफल न हो सका।

उद्यान को उजाड़ कर मनमौजी प्रद्युम्नकुमार आगे चला। उसे दूसरा बाग़ दृष्टिगोचर हुआ। पूछने पर मालूम हुआ कि यह विशाल बाग़ भी महारानी सत्यभामा का ही है। बाग खूब लम्बा-चौड़ा था। उसमें आम, जामुन, नींबू, नारंगी, केले, क़बीठ, खिरनी, न्यग्रोध, केतोड़ी, बिल्व, बदरी, पलास, पीपल, ऊमर, अनार, अशोक, वकुल, अंजीर, पूगीफल, शहतूत, बादाम, खजूर, नारियल, आदि-आदि के वृक्ष खड़े थे। वृक्षों की कतारे ऐसी जान पड़ती थी मानो सैनिक खड़े है और इस उद्यान की रक्षा कर रहे है!

चंपा, चमेली, अंगूर, गडुची, केतकी आदि लताएँ फैली हुई थी। उनके सुन्दर और सुरम्य मंडप बने हुए थे। गुलाब, गेंदा, केवड़ा आदि के फूल अपने सौन्दर्य को देख-देखकर हँसते हुए जान पड़ते थे। उन पर भ्रमर गूंज रहे थे। भ्रमरों की गुन्जार ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे वे सत्यभामा का यशोगान कर रहे हो! जगह-जगह बावड़िया थी, कहीं कहीं कूप थे जो जल से परिपूर्ण थे। बावड़ियाँ कमलो से सुशोभित थी। बाग की रौनक अद्भुत थी। जिधर देखो, नवीन ही वृक्ष या लता दिखाई देती थी। जगत् में जितनी वनस्पतियां हैं, सब का इस बाग में समावेश करने का यत्न किया गया था।

कुमार को कौतुक करना था। उसने इस दफा अनेक रूप धारण किये। शूकर, शृंगाल, भालू, भेड़, बकरी, हिरण, रोझ, घोड़ा, खच्चर, ढांक, काक, चील, और लंगूर तथा लाल मुंह वाले बन्दर आदि के रूप बनाये। सब के सब एक साथ बगीचे

पर टूट पड़े। सब ने मिलकर पल भर में वगीचे का सत्यानाश कर डाला। वृक्ष तहस-नहस हो गये, लताएँ उखड गई, पौधे उजड गये। मण्डप छिन्न-भिन्न हो गये ! सारा वगीचा मिट्टी मे मिल गया। सव पशुओं और पक्षियों ने मिलकर वगीचे को खोद डाला, उखाड फैंका, तोड-मरोड डाला। माली और मालिने मिलकर उन्हें हाँकने और भगाने का भरपूर प्रयत्न करने लगे। उनके प्राण सूखे जा रहे थे। वे पत्थर मार रहे थे, ईंट फैंक रहे थे, गोफण चला रहे थे, तीर मार रहे थे, होहल्ला मचा रहे थे, वाजा वजा रहे थे पर जरा भी असर नही पड़ रहा था। पशु-पक्षी अपनी जगह से तिल भर भी नही सरकते थे। अन्त मे जब सारा वाग उजड़ गया तो वे जलाशयों की ओर वढ़े। जलाशयों का पानी पी-कर सोख लिया। फिर उद्यानपालों के घरों की ओर उन्मुख हुए। सव घरों के छप्पर उखाड फैंके। उनके घरों की हंडियां फोड़ दी, मटके फोड़ दिये आटा-दाल बिखेर दिया, घी-तेल आदि फैला दिया।

उद्यानपाल हैरत में पड़े शक्ति भर प्रयत्न कर रहे थे कि किसी प्रकार इनसे पिण्ड छुड़ाएँ। मगर उनकी एक न चली। उनके घरों को उजाड़ कर पशु-पक्षियों ने उन पर ही हमला कर दिया। उद्यानपालों के कपड़े फाड़ दिये ! उनके कान, नाक आदि अवयव खरौंच डाले। बेचारे उद्यानपाल अब रोने के सिवाय और क्या कर सकते थे ? झार-झार आँसू बहा कर रुदन करने लगे।

उधर सत्यभामा के पास उद्यान के उजड़ने का समाचार

पहुँचा। वहां से सुभट अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर उद्यान की ओर भागे-भागे आये। मगर उन्होंने देखा—उद्यान तो धूल मे मिल चुका है और कही भी, कोई भी पक्षी या पशु दृष्टि-गोचर नही हो रहा है! सब के सब न जाने कहाँ और कैसे विलीन हो गये!

सुभट निराश और चकित होकर वापिस लौट गये।

: ३ :

तीसरा - चमत्कार

बाग को तहस-नहस करके प्रद्युम्नकुमार आगे चला। नगरी में आकर उसने एक अत्यन्त सुन्दर और सुसज्जित रथ देखा। रथ स्वर्णमय था और रत्न जटित था। उसके चारों ओर मोतियों की मालाएँ लटक रही थी। ऊपर पांच गुम्वज थे और उन पर लाल ध्वजाएँ एवं पताकाएँ फहरा रही थी। रथ में जड़े हुए दर्पण बड़े भले मालूम होते थे। छोटी-छोटी घण्टियाँ झनझन की मधुर ध्वनि कर रही थी।

रथ में मनोहर और विशालकाय बैल जुते थे। उनका रंग चितकवरा था। बैलों के कंधे और कान बड़े-बड़े त

सींग छोटे-छोटे थे। वे जरी की झूल से सुशोभित हो रहे थे। उनके गले में बहुमूल्य घूंघर बँधे हुए थे। उस रथ में कुछ रमणियाँ बैठी गीत गा रही थी। अप्सरा के समान जान पड़ती थी और किन्नरियों के सदृश मनमोहक ध्वनि में उल्लास के साथ गीत गा रही थी।

इस उत्तम रथ को देखकर प्रद्युम्नकुमार ने कर्णपिशाचिनी विद्या से पूछा---देवी! यह रथ किसका है और किस प्रयोजन से कहाँ जा रहा है?

देवी ने उत्तर दिया--रथ महारानी सत्यभामा का है। उनकी दासियाँ कुम्भकार के घर कुम्भ लेने जा रही है। भानु-कुमार का विवाह हो रहा है न! उसमें चाकपूजा भी होगी। इस विवाह के साथ तुम्हारी माताजी के भविष्य का गहरा सम्बन्ध है। कुछ प्रतीकार कर सको तो करो।

कुमार ने अपना कर्त्तव्य निर्धारित कर लिया। सत्यभामा की दासियाँ जब प्रजापति के घर से कुम्भ लेकर वापिस आई तो प्रद्युम्नकुमार ने सारथी का, ऊंट का और गर्दभ का रूप धारण किया। ऊंट और गर्दभ को रथ में जोत दिया और सारथी के रूप में रथ चलाने लगा। रथ कुछ आगे बढ़ा तो देखने वालों की हंसी के फौहारे छूटने लगे! ऐसा अद्भुत दृश्य देख-कर भला किसको हंसी न आती!

प्रद्युम्नकुमार बड़ी तेजी के साथ रथ को दौड़ाने लगा। दासियाँ चिल्लाने लगी, चीखने लगी, मना करने लगी, मगर

प्रद्युम्नकुमार ने इस ओर तनिक भी कान नही दिया। वह और अधिक तीव्रगति से दौड़ाने लगा। कुम्भ भड़ाभड़ फूटने लगे। इस घोर अपशकुन को देखकर दासियों के दिल दहल उठे। उनके क्रोध की सीमा न रही। वे रथ चलाने वाले को गालियाँ देने लगी। गालियों का बदला लेने की नीयत से कुमार ने रथ को इतना उलाल कर दिया कि उसमें बैठी समस्त महिलाएँ लुढ़क गई और एक दूसरी पर गिर पड़ी फिर भी रथ उसी वेग से दौड़ता रहा। अब उनका सम्भलना कठिन हो गया। जितनी रथ में बैठी थी सब नीचे गिर पड़ीं।

कुहराम मच गया। चीख-चिल्लाहट की आवाज आने लगी। किसी का घाघरा अटक गया, किसी की ओढ़नी फँस गई और फट गई, कोई नंगी होकर नीचे जा गिरी! किसी का सिर फूट गया और किसी के दाँत टूट गये, किसी की आँख में चोट आई, किसी की नाक कट गई। किसी को खरौंच आ गई और रक्त धारा बहने लगी। किसी-किसी का हाथ या पैर रथ में अटक गया और धड़ नीचे आ गिरा। ऐसी महिलाएँ रथ के साथ घिसटती-घिसटती चिल्लाने लगी।

लोग देखकर अचम्भे में आ गये। द्वारिका की गली-गली मे शोर मच गया। मगर रथ अपनी तीव्रगति से चलता जा रहा था। बहुत लोगों ने रोकने की कोशिश की मगर वह काहे को रुकने वाला था। लोगों की एक बड़ी भीड़ रथ के पीछे-पीछे दौड़ती जा रही थी। सब लोग होहल्ला मचा रहे थे। मगर किसी का कुछ भी वश नहीं चल रहा था। कुछ लोग हि

रथ को रोकने के लिए सामने आये, मगर उनकी और
री हालत हुई। कोई दब गये. कोई कुचल गये। रथ
नही रुका, नही रुका।

हर्ष की जगह विषाद छा गया। गाने की जगह रोने की
फैल गई। इस अभूतपूर्व और अनोखी घटना को देख-
कर लोग दंग रह गये। किसी की समझ में नही आया कि
बात क्या है? किसी ने कहा—इन्द्रजालिया हैं। कोई
लगा—इन्द्रजालिया मे इतनी हिम्मत नही हो सकती,
ो कोई देवता होना चाहिए! किसी ने कहा—यह कोई
धर है। एक कहने लगा—नही, मालूम तो ऐसा होता है
रअवतारी ही है, मगर है बड़ा अद्भुत. जो यादवनाथ से
ही डरता है! इसका साहस गजब का है। जिससे दुनिया
ज्ञाती है. उसका भी इसे परवाह नही है!

कई बूढ़े-स्याने आदमी गली के एक किनारे खड़े हाथ
कर-करके कुमार को मना करने लगे। कहने लगे—अरे
ऐसा काम मत कर।

प्रद्युम्नकुमार ने किसी के कहने और रोकने की परवाह
की। वह रथ को उसी त्वरा के साथ दौडाता-दौडाता
नक गायब हो गया। उसे गायब हुआ देख लोग अत्यन्त
ीत और चकित हो गये, एक कहने लगा—वह आकाश मे
या है दूसरा बोला—नही, पृथ्वी मे समा गया है। इस
र जितने मुंह उतनी बातें होने लगी। समस्त द्वारिका में
घटना से भारी आतंक छा गया। सर्वत्र एक मात्र यही

चर्चा होने लगी मगर घटना की वास्तविकता किसी की समझ में न आई।

दासियाँ रोती-चिल्लाती सत्यभामा के पास पहुँची। उन्होंने आदि से अन्त तक सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सत्यभामा के विस्मय की कोई सीमा न रही। उसे अपार क्रोध चढ़ आया। मगर जल भुनकर रह गई। करती तो क्या करती? उपद्रव करने वाले का कुछ पता नही था। वह उदास, खिन्न चकित मौन साध कर बैठ गई।

: ४ :

चौथा चमत्कार
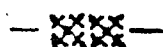
प्रद्युम्नकुमार ने खूब कौतुक करने की ठान ली थी। वह चाहता था कि द्वारिका में एक वार खूब तहलका मच जाय और सत्यभामा का घमण्ड चूर-चूर हो जाय। इस प्रकार के संकल्प से प्रेरित होकर प्रद्युम्नकुमार ने फिर अपना रूप पलटा। अब की बार उसने ब्राम्हण पंडित का रूप धारण किया। गौर वर्ण और हृष्ट-पुष्ट शरीर। हिम की भाँति स्वच्छ धोती धारण

की। गले मे जनेऊ पहन लिया और मस्तक पर एक अंगोछा लपेट लिया। गुजराती ढंग के जूते पहने। कानों मे सोने के आभूषण और उंगलियों मे हीरे कीं अंगूठियाँ शोभित होने लगी। ललाट पर लम्बा, शैवों के ढ़ंग का तिलक लगाया और दाहिने हाथ मे कमंडलु ले लिया। कंठ मे रुद्राक्ष की माला थी और बगल मे पंचांग दबा हुआ था।

ब्राम्हण वेदध्वनि करता हुआ, भाँति-भाँति के श्लोकों का उच्चारण करता हुआ, अपने कंठ के माधुर्य से श्रोताओं के मन को मुग्ध करता हुआ, गम्भीर चाल से चलने लगा। वह जल से परिपूर्ण उस वापिका के समीप आया। वापिका की रक्षा के लिए एक दासी नियुक्त थी। ब्राम्हण देवता ने उस दासी को 'चिरंजीव रहो' कह कर आशीर्वाद दिया। वह अत्यन्त प्रसन्नता के साथ अपने स्थान से उठी, पंडितजी के सामने आई और धरती पर माथा टेककर नमस्कार करने लगी। फिर बोली—विप्र महाराज! मेरे धन्य भाग है कि आपका यहां पदार्पण हुआ। आपके दर्शन क्या हुए साक्षात् ब्रम्हाजी के दर्शन हुए।

ब्राम्हण ने सन्तोष प्रकट करते हुए कहा—बाई मैं यात्री हूँ। दूर देश से आ रहा हूँ। मुझे बड़ी तेज प्यास सता रही है। एक कमंडल पानी और थोड़ा सा सीधा मिल जाय तो चोला मगन हो जाय!

दासी—देव! लाचार हूँ। यहाँ मेरा घर नहीं है। घर होता तो आप जैसे अतिथि का आगत-स्वागत करके अपना जनम सफल करती। यह वापिका महारानी सत्यभामा की है। उनका सख्त हुक्म है कि इसका पानी किसी को न दिया जाय!

ब्राम्हण—सीधा नही देना है तो न सही, पानी तो ले लेने दो। प्यास बुझ जायगी तो मेरी भी आत्मा सुख पाएगी और तुम्हें भी पुण्य होगा।

दासी—नही महाराज ! मै महारानी का आदेश भंग नही कर सकती। आखिर मै उनकी दासी हूँ और उन्ही के राज्य मे रहती हूँ। किसी ने कह दिया तो मेरी शामत आये विना नही रहेगी ! इस वापिका का जल महाराज श्री कृष्ण, महारानी सत्यभामा और भानुकुमार के सिवाय और कोई नही पी सकता।

ब्राम्हण— मै तो सिर्फ एक कमण्डलु भर पानी चाहता हूँ। इतना सा पानी ले लेने दोगी तो वावड़ी खाली नही हो जायेगी ! वल्कि मेरे स्पर्श से वावड़ी और उसका जल पावन हो जायगा। और देखो दासी, मै पानी को मंत्रित करके दे दूंगा। उस पानी से स्नान करोगी तो तुम्हारा रूप इन्द्राणी जैसा वन जायगा। सव तुम्हारी ही तरफ देखेंगे। तुम्हारी स्वामिनी भी तुम्हारे रूप को देख कर ईर्षा की मारी रोएगी।

इस प्रकार की वात-चीत चल ही रही थी कि वहाँ आस-पास की अन्य स्त्रियाँ भी आ पहुँची। ब्राम्हण देवता ने देखा कि दासी किसी भी प्रकार पानी नही लेनी देती तो वह कमाण्डलु उठा कर वापिका की ओर चले। दासी घवराई। उसने हल्ला मचाया। किसी ने ब्राम्हण देवता की धोती पकड़ कर खींचना शुरू किया, किसी ने हाथ पकड़ कर और किसी ने पैर पकड़ कर उन्हे जाने से रोका। सव की सव ब्राम्हण

पकड़ कर बंदरियों की तरह चिपट गई। संस्कारहीन दासियाँ ही तो ठहरी, उनमें लज्जा नाम की कोई वस्तु नही थी। ब्राम्हण देवता जब रुकते दिखाई न दिये तो वे असभ्य और अशिष्ट वचन कहने लगी।

ब्राम्हण बोला— भामा पटरानी कोई भूतनी जान पडती है और तुम सब भी उसी के समान हो! तुम मेरे गुणों से परिचित नही हो, इसी कारण सत्यभामा का पक्ष ले रही हो। मुझे छोड़ दो और पानी लेने दो। मै पानी लिये विना नही रहूँगा।

दासी— वम्हन कही के। तू क्या वकवास करता है! बड़े-बड़े राव राजा तो इस पानी के लिये तरसते है और पाते नही है, तू इसे पीने का मनोरथ करता है! कांच मे अपना मुंह देख! तूं है किस खेत की मूली!

ब्राम्हण ने सौम्य मुद्रा धारण करके समझाने का प्रयन्त किया। कहा—वाई! तुझे मेरे गुणों का पता नहीं है। मेरे जैसे गुरु के चरणो की रज के प्रताप से जगत् पावन हो जाता है, जगत् के पाप दूर हो जाते है।

इतना कहने पर भी जब दासियों ने अपना हठ न छोडा तो ब्राम्हण देवता ने अपनी करामात दिखलाई। उसने दासी की ओर मुख करके मंत्र की एक ऐसी फूँक मारी कि दासी सहसा और की और हो गई। उसके शरीर का कालापन गौरवर्ण के रूप मे पलट गया और वदसूरत मिटकर वह रूप-

वती हो गई ! इतना ही नही, दासी का शरीर विविध प्रकार के आभूषणों से भूषित हो गया ! अपना यह विचित्र और अचिन्त्य रूप देखकर उसने ब्राम्हण को छोड़ दिया और दूर जा खड़ी हुई।

दासी का हर्ष हृदय में नही समाया। वह कहने लगी—'ब्राम्हण देवता बड़े करामाती है, बड़ उपकारी है।' यह कहकर वह वापिका से वाहर आ गई। उधर ब्राम्हण वेषधारी प्रद्युम्नकुमार ने अपनी विद्या के प्रभाव से वापिका का समस्त जल अपने छोटे-से कमण्डलु मे भर लिया। जल भर कर वे जब वाहर निकले तो दासी उसके पैरों पड़ने लगी और भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगी।

जब ब्राम्हण आशीर्वाद देकर चला गया तो दासी की दृष्टि वापिका पर पड़ी। वापिका विलकुल सूखी थी। उसमे चुल्लू भर भी जल शेष नही था। यह देखकर दासी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसका दिल चिन्ता और भय के कारण उद्विग्न हो उठा। सत्यभामा की भयंकर मूर्त्ति उसकी आंखो के सामने नाचने लगी। उसे अपना भविष्य संकटमय प्रतीत होने लगा।

दासी अव क्या करती ? वेचारी उस ब्राम्हण के पीछे दौड़ी और जोर-जोर से उसे पुकारने लगी। कहने लगी—हे देव! जरा खड़े तो रहो, सारा जल मत ले जाओ। मै तुम्हारे पैरों पड़ती हूं। मुझ पर दया करो। वापिका को फिर भर दो। इस वापिका का सूखना तो मेरे प्राणों का सूखना है। मैं वेमौत मारी जाऊंगी।

दासी के इतना कहने पर भी ब्राम्हण ने कान नही दिया। वह निश्चिन्त भाव से, स्वाभाविक गति से आगे चलता गया, मानो कोई बात ही नही है! दासी फिर कहने लगी–विप्र महाराज! जल जगत् का जीवन है। मनुष्य के प्राण जल के बिना रह नही सकते। जल के बिना अन्न नही उत्पन्न हो सकता। जल इस लोक का अमृत है। इसके अभाव मे जगत् क्षण भर भी नही ठहर सकता। ऐसी उपयोगी और जीवन के लिए अनिवार्य वस्तु पर आप कोप क्यो करते है। दया करो, रहम करो, बावाजी मैं आपकी सेविका हूँ। वापी को फिर जैसी की तैसी भर दो!

मगर बावाजी के कान पर जूं भी न रेंगी। जैसे हाथी के पीछे कुत्ते भौंकते है और हाथी उसकी परवाह नही करता, उसी प्रकार बेपरवाही के साथ ब्राम्हण आगे चलता जा रहा था। आखिर लाचार और निराश होकर भी दासी उसके पीछे-पीछे चलने लगी। ब्राम्हण आगे चला।

आगे चलकर ब्राम्हण-वेषी कुमार ने एक बाग देखा। उस बाग मे भानुकुमार की सेनाशाला थी। कुमार तो कौतुक करने और सत्यभामा के अभिमान को दलित करने के लिये ही निकला था। अतएव उसने अपनी विद्या के प्रभाव से वहां के हाथी और घोड़े आदि अदृश्य कर दिये। सेनाशाला के रक्षक हतबुद्धि और आश्चर्य चकित हो गये! उनकी समझ मे ही नही आया कि सम्पूर्ण सेना यकायक कहां गायब हो गई! होहल्ला और शोरगुल मच गया। दौड़-धूप आरम्भ हो गई।

लोग भाग-भाग कर आते और जो सुनते-देखते, उससे उनके आश्चर्य का पार न रहता!

इधर ब्राम्हण अपने रास्ते चलता जा रहा था। दासी रोती-चीखती परछाई की भाँति उसके पीछे-पीछे चली जा रही थी। लोगों ने उसके रोने का कारण पूछा तो दासी बोली—यह ब्राम्हण बड़ा ही करामाती है। इसने महारानी की बावड़ी सोखली है! अब मेरी क्या दशा होगी।

कुछ लोगों को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने दासी का पक्ष लेकर ब्राम्हण को रोकना चाहा। जब ब्राम्हण न रुकने लगा तो उसे पकड़ने की चेष्टा की। धक्का-धूम होने लगी। ब्राम्हण चुपचाप खड़ा हो गया और उसने अपना कमण्डलु जमीन पर पटक कर फोड़ दिया। कहा—नही मानते तो ले लो अपना पानी!

ब्राम्हण का इतना कहना था और कमण्डलु का फोड़ना था कि आस-पास मे पानी ही पानी दृष्टिगोचर होने लगा। कुछ पानी तो वापिका का था ही और कुछ विद्या के बल से बढ़ गया। दिखाई देने लगा, मानो नदी मे बाढ़ आगई है। सारा बाजार जलमय हो गया। जल के प्रवाह मे लोग बहने लगे और वहाँ भी चीख-चिल्लाहट मच गई। कपड़े-लत्ते, किराना, पशु, मनुष्य आदि जल के प्रवाह मे बहने लगे। घरो में पानी ही पानी हो गया। अनमोल वस्तुएँ खराब हो गई। घोर हा-हाकार की ध्वनि से आकाश व्याप्त हो गया। ब्राम्हण देवता अब अदृश्य हो चुके थे। खोजने पर भी उनका कही पता नही था।

सत्यभामा ने अपने जीवन में ऐसा दिन कभी नही देखा था। यकायक क्या हो गया है, किस देवता का कोप उस पर बरस पड़ा है, यह उसकी समझ मे नही आ रहा था। एक के पश्चात् दूसरी ओर दूसरी के पश्चात् तीसरी अप्रिय और दिल दहलाने वाली घटना सुन-सुन कर उसका हृदय व्याकुल हो रहा था। उसे घोरतर अनिष्ट की आशंका होने लगी। विषाद की छाया उसके चेहरे पर नाचने लगी। मगर वह विवश थी। जो कुछ हो रहा था, इतना अद्भुत था कि उसका प्रतिकार करने का भी कुछ उपाय नही था। वह मन मार कर बैठी रही। उसकी छाती भय और आशंका से धड़कने लगी।

: ५ :

पाँचवाँ - चमत्कार

प्रद्युम्नकुमार अपनी अनोखी करामाते दिखलाते हुए आगे चले। कुछ ही आगे चलने पर उन्हें एक सुन्दर बाजार दिखलाई दिया। बाजार में खूब चहल-पहल और रौनक थी। वहां की सड़कें चौडी, सीधी और साफ-सुथरी थी बीच-बीच मे विशाल चौक बाजार की शोभा को बढ़ा रहे थे। बाजार की

समस्त दुकानें एक कतार में बनी हुई थी। माली, तम्बोली, सराफ, बजाज आदि सभी की दुकाने थी। सब लोग अपनी-अपनी दुकानोंपर माल फैला-फैला कर बैठे थे। हीरा, मोती आदि तरह-तरह के रत्न और मणियां बिक रही थीं, ऊनी और सूती वस्त्र बिक रहे थे, कही जरी के कपडे चमचमाते हुए लटके थे। सारा बाजार जगमग-जगमग हो रहा था। अपूर्व शोभा थी उस बाजार की! तंबोली स्वादिष्ट और सुन्दर बीड़ा बना रहे थे, माली हृदयहारी हार गूंथ रहे थे।

कुमार ने कर्णपिशाचिनी से पूछा—बाजार मे आज इतनी रौनक क्यों दिखलाई पड़ रही है? कर्णपिशाचिनी बोली—भानुकुमार के विवाह के कारण ही यह रौनक और चहल-पहल है।

कौतुक-कामी प्रद्युम्नकुमार ने कर्णपिशाचिनी का उत्तर सुनकर नवीन रूप धारण किया। अब की बार वह वामन रूपधारी विप्र बन गया। ठिगना कद, गौर वर्ण और उम्र से नवयुवक! गले मे तुलसी की माला और यज्ञोपवीत! पैरो मे खड़ाऊँ। तेजस्वी चेहरा और भव्य रूप। यही कुमार का नवीन वेष था। इस वेष में कुमार कौतुक करने चला।

सर्वप्रथम कुमार माली की दुकान पर पहुँचा। कहा—भाई, दो चार फूल हमे चाहिए। दे दो!

माली बोला—युवराज भानुकुमार के लिए मै हार गूंथ रहा हूँ। इन फूलों मे से आपको एक भी नहीं मिल सकता।

कुमार ने नजर गड़ा कर फूलों की ओर देखा तो समस्त सुगन्धित परिपूर्ण पुष्प आक और धतूरे के हो गये !

वामन ब्राम्हण चुपचाप आगे बढ़ा। गंधी की दुकान पर जाकर इत्र, तेल और फुलेल माँगा। गंधी ने भी वही उत्तर दिया—यह सब सुगन्धित वस्तुएँ भानुकुमार के लिए हैं। किसी को देने की आज्ञा नही है।

यह उत्तर सुन कर वामन खिलखिला कर हँस पड़ा उसके हँसते ही सुगन्ध घोर दुर्गन्ध के रूप मे पलट गई। दुर्गन्ध की उग्रता ने आसपास के वायुमण्डल को दूषित कर दिया। गंधी का दम घुटने लगा।

वामन देवता फिर आगे बढ़े। अब की बार वह अनाज की दुकान पर पहुँचे। कहा—भाई, हम ब्राम्हण हैं, परदेश से आये हैं। सेर दो सेर अनाज मिल जाय तो पेट का उपचार कर ले। मगर दुकानदार ने अनाज देने से इन्कार कर दिया। ब्राम्हण ने खीझ कर विद्या के प्रभाव से सारा अनाज उलट-पलट दिया। चावल तुवर बन गये और तुवर के बदले चावल नजर आने लगे। गहूँ कोदों और बाजरा के रूप में परिणत हो गये। इस तरह सभी अनाज में अकस्मात् उलट फेरा हुआ। देख कर वणिक् भौंचक्का रह गया। वह चिल्लाने लगा, घबड़ाने लगा और रोने लगा।

ब्राम्हण फिर आगे चला। वह पंसारी की दुकान पर पहुँचा और कहा—भाई, थोड़ी-सी केसर चाहिए। कीमत लेकर

बेचते हो, आज ब्राम्हण को दक्षिणा मे ही दे दो ! दुकानदार जब देने को तैयार न हुआ तो ब्राम्हण ने अपना चमत्कार दिखलाया। उसकी दुकान की सारी केसर गेरू बन गई, कपूर खारा नमक हो गया, कस्तूरी हींग बन गई ! वणिक् अचानक हेर-फेर को देखकर किस प्रकार चिन्तित हुआ, यह कल्पना करना कठिन नही।

ब्राम्हण देवता इतने से ही सन्तुष्ट नही हुए। आगे चल-कर वे एक बजाज की दुकान पर पहुँचे। बजाज से तन ढँकने को कपड़ा माँगा। उसने देने मे असमर्थता प्रकट की। तब वहां भी ब्राम्हण ने अपनी करामात दिखलाई। उसकी दुकान मे जितना भी कपड़ा था, सब उलट-पलट गया सारा बेढंगा और बेरंगा हो गया। रेशमी वस्त्र टाट के रूप मे दिखाई देने लगे। और टाट रेशम बन गया ! जिसका रंग लाल था वह काला, काला लाल, हरा नीला और नीला हरा हो गया। बूँटेदार छींट मलमल की भाँति सफेद हो गई और मलमल ने छींट का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार समस्त वस्त्रों मे आमूल परिवर्तन देखकर बजाज दंग रह गया। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नही हुआ।

इसी प्रकार सराफ की दुकान पर जाकर ब्राम्हण ने पवीतरी (चरण मृती) माँगी। सराफ ने देना स्वीकार नही किया तो उसे क्रोध आ गया। सराफ की दुकान का सारा सोना पीतल रूप हो गया। चाँदी कथील की तरह दिखाई देने लगी। मूँगा मिट्टी हो गये। इस प्रकार के उलट-फेर से सराफ भी हक्का-बक्का रह गया।

ब्राम्हण आगे बढ़कर जौहरी की दुकान पर जा पहुंचा। जौहरी से कहा—राजाओं और सेठ-साहूकारों को रत्नमय आभूषण दिया करते हो, आज एक विद्वान ब्राह्मण को रत्न-जटित गोप दान मे दे दो। मगर जौहरी बहुमूल्य गोप देने को उद्यत न हुआ। ब्राह्मण ने उसी समय कुपित होकर समस्त रत्नों को ऐसा कर दिया कि वे साधारण पाषाण के टुकड़े नजर आने लगे। जौहरी मूल्यवान हीरा, पन्ना आदि रत्नों को पाषाण-खंड के रूप मे देखकर अपना मस्तक धुनने लगा।

ब्राह्मण को ठहरने का अवकाश ही कहां था? जौहरी अपना सिर पीटता रहा और वह आगे चल दिया। ब्राह्मणवेषी प्रद्युम्नकुमार इतना करके ही सन्तुष्ट नही हुआ। उसने सम्पूर्ण बाजार की दुकानों मे विद्यावल से ऐसी गड़बड़ कर दी कि किसी भी व्यापारी को कोई भी वस्तु अपने स्थान पर न मिलने लगी। सब व्यापारी तिलमिला उठे। एक सिरे से दूसरे सिरे तक हल्ला-गुल्ला मच गया। कोई रोने लगा, कोई विषाद के सागर मे डूब गया, कोई छाती पीटने लगा और कोई चकित होकर नीची गर्दन करके बैठ गया।

दुकानों पर ग्राहक आते और अपनी प्रिय वस्तु माँगते थे। दुकानदार पेटी या डिब्बा खोलता तो उसमे कुछ का कुछ पाता। ग्राहक निराश होकर लौटने लगे। व्यापारी अपने नफे के लिए तो रोते ही थे, मूल वस्तु के गुम जाने के लिए भी चिन्तित हो रहे थे। बड़ी-बड़ी तोंद वाले सेठों की घबराहट देखने योग्य थी! सारांश यह है कि सम्पूर्ण बाजार मे एक अनोखी हलचल उत्पन्न हो गई।

इस प्रकार बाजार के लोगों को चकित, विस्मित और वंचित करता हुआ राजकुमार आगे चला। चलते-चलते वह राजप्रासाद के द्वार पर जा पहुँचा। सब से पहले वसुदेवजी का महल आया। महल के नीचे के भाग मे, दहलान मे वसुदेवजी रत्नजटित सिंहासन पर सुशोभित हो रहे थे। बत्तीस हजार प्रेमदाओं के पति, दानवीर, धीर, गम्भीर, गुणों के आगार, शूरता के सागर और दस दसार के लघुभ्राता का सौम्य और तेजोविराजित मुखमण्डल देखकर प्रद्युम्नकुमार का हृदय हर्ष से विभोर हो गया। कुमार ने विद्या से उनका परिचय पूछा। विद्या ने बतलाया—यह महानुभाव आपके पिता श्रीकृष्ण के पिता और आपके दादा है।

जब कुमार वहाँ पहुँचा तो दहलान के सामने विस्तृत चौक मे मींढों का युद्ध हो रहा था। अनेक राजपुरुष अपने-अपने मींढे वहां लाये थे और मनोविनोद के लिए उन्हे लड़ाया जा रहा था। उन मींढ़ों मे एक बूढ़ा था जो बड़ा ही बलिष्ठ था। दूसरा कोई भी मींढ़ा उसका मुकाबिला करने मे समर्थ नही था। वह सभी को भगा देता था। कुमार थोड़ी देर खड़ा-खड़ा यह तमाशा देखता रहा। फिर उसने कर्णपिशाचिनी से पूछा—यह बूढ़ा मींढ़ा किसका है।

कर्ण०—यह आपके दादाजी का है। इसके पराक्रम और बल को देखकर दादाजी फूले नही समा रहे है। मींढ़े लड़ाने का इन्हे बड़ा शौक है।

कुमार ने तुरन्त विद्या के प्रभाव से एक मींढा बना डाला—

विशालकाय और खूब तगड़ा। उसका शरीर सुन्दर गहरे रंग से रंग दिया। कुमार ने मदारी का रूप धारण किया। पैरो मे पायजामा पहन लिया, मस्तक पर छोटा-सा साफा बाँध लिया और गले मे मणकों एवं पत्थरों की माला पहन ली। लम्बी घनी मूंछे तथा दाढ़ी बढ़ा ली।

इस प्रकार मदारी का पूरा वेष धारण करके प्रद्युम्न-कुमार मींढ़ा के गले मे बँधी रस्सी को दाहिने हाथ मे पकड़कर आगे बढा। उसने वसुदेवजी से निवेदन किया—पृथ्वीनाथ ! मैं अपने मींढ़े को भी इस प्रतिस्पर्धा मे सम्मिलित करना चाहता हूं। कृपा करके इस मींढ़े के साथ भी युद्ध कराइये।

वसुदेवजी अभिमान के साथ बोले—अरे मदारी, यह मींढ़ा तेरी जीविका का साधन है। इससे तू अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट पालता है। बड़े-बड़े राजाओं के मींढ़े भी मेरे मींढ़े से पराजित होकर भाग गये तो तेरे मींढ़े की क्या चलाई है ? इसलिए तू रहने दे। अपने मींढ़े का सत्यानाश मत कर।

मदारी—एक बार मुकाबिला तो होने ही दीजिए। अगर जीत जाय तो आप शाबाशी दीजिएगा।

वसुदेवजी तैयार हो गये। दोनो मींढ़े छोड़ दिये गये। आमने-सामने आये और एक दूसरे को क्रोधभरी दृष्टि से देख कर आपस मे भिड गये। वसुदेवजी का सिखाया हुआ मींढ़ा बहुत बलवान् था और युद्धकला में निष्णात था, किन्तु विद्या-बल से निर्मित कुमार का मींढ़ा भी कम नही था। कभी एक

पीछे हटता, कभी दूसरा पिछड़ जाता। कुछ देर तक इसी प्रकार दोनो की भिड़न्त होती रही। अन्त मे कुमार के मींढ़े ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर वसुदेवजी के मींढ़े पर ऐसा आक्रमण किया कि वह सामना करने मे असमर्थ हो गया। वह पराजित होकर पीछे हट गया। मदारी का चेहरा खिल उठा और वासुदेवजी के चेहरे पर उदासी छा गई।

इस प्रकार प्रद्युम्नकुमार अपने दादा से भी न चुके! सच है-सिंह किसी का सगा नही होता। पराक्रमी पुरुष सर्वत्र अपना पराक्रम प्रदर्शित करता है और कुशल सर्वत्र अपने कौशल को व्यक्त करता है।

कुमार इस विजय से प्रसन्न होकर आगे चल दिया।

: ६ :

छटवां-चमत्कार

प्रद्युम्नकुमार कुछ आगे चले तो उन्हे एक अतीव सुन्दर, इन्द्रभवन के सदृश एक भवन दृष्टिगोचर हुआ। वह भवन रत्नों की ज्योति से जगमगा रहा था। जगह-जगह ध्वजाएं,

पताकाएं, तोरण और मालाएं उस भवन के सौन्दर्य को शतगुणित कर रही थी। सात मंजिलो का सुशोभित वह भवन आकाश से बाते कर रहा था। सुन्दर जालियां और मनोहर झरोखे दर्शक के चित्त हठात् अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे। दर्शक की दृष्टि उससे हटना नही चाहती थी।

प्रज्ञप्ति विद्या ने कुमार को बतलाया–स्वामिन् ! अपना चमत्कार दिखलाने का उपयुक्त स्थान यही है। यह आपकी वैरिन सत्यभामा का भवन है। जो कुछ करना है यहां करो। यहा कोई कसर मत रहने देना। कोई ऐसी करामात दिखलाओ कि अभिमान की पुतली असत्यकामा सत्यभामा का दर्प दलित हो जाय और उसे लोक-हंसाई का पात्र बनना पड़े !

कुमार भी यही चाहता था। अब तक उसने जो कुतूहल किया था, वह तो यों ही आनुषंगिक था। असली करामात उसे यहीं दिखलानी थी। अतः कुमार ने तत्काल ब्राम्हण–बालक का रूप धारण किया। स्नान करके अपने शरीर को सर्वथा स्वच्छ किया। उसके सिर पर बड़े-बड़े बाल खुल्ले लहराने लगे। भाल पर मनमोहक तिलक शोभाय मान होने लगा। गले मे रुद्राक्ष की माला सोहने लगी। ब्राम्हण–कुमार आधी धोती पहने और आधी गले मे लपेटे हुए था। उसके हाथ मे पीतल की एक लुटिया थी। देखने मे वह भव्य और सौम्य प्रतीत होता था। बालक संस्कृत भाषा के श्लोकों का अविराम गति से उच्चारण कर रहा था। उसके स्वर मे सरसता और मधुरता थी। सबको ब्राम्हणकुमार को देखकर प्रीति उत्पन्न होती थी।

सत्यभामा अपनी दासियों से घिरी हुई बैठी थी। तारिकाओं से आवृत चन्द्रमा की भांति वह सुशोभित हो रही थी। कुमार उसे देखकर अत्यन्त प्रफुल्लित हुआ।

बालक सत्यभामा के समक्ष आकर खड़ा हो गया। उसने आशीर्वाद देते हुए कहा – 'स्वस्त्यस्तु'।

सत्यभामा विप्रकुमार का सौम्य स्वरुप देख प्रसन्न हुई। उसने कहा-विप्र! कहो, क्या चाहते हो ? जो चाहोगे वही मिलेगा। यहां किसी भी वस्तु की कमी नही है।

विप्रकुमार सन्तोष का भाव व्यक्त करके बोला-माताजी! मुझे भूख लगी है। उदर भर भोजन मिल जाय, बस और कुछ भी नही चाहिए। आज सौभाग्य से वासुदेव महाराज की बड़ी पटरानी के दर्शन हुए हैं। माता! इस प्रकार भोजन कराइए कि खूब तृप्ति हो जाय। उसके बाद मैं आगे चल दूंगा।

कुमार के आने से पहले भोजन के निमित्त एक और ब्राम्हण वहां आया हुआ था। उसने लघवयस्क ब्राम्हण की छोटी–सी-याचना सुनकर कहा– तू उम्र से तो बालक है ही, बुद्धी से भी बालक जान पड़ता है। महारानीजी जब मुंहमांगा देने को तैयार है तो सिर्फ भोजन क्यों मांगता है ? अरे, कोई अनमोल वस्तु मांग। तीन खण्ड के अधिपति की पटरानी से पेट भर भोजन मांगना बुद्धीमत्ता नही है। भोजन तो घर-घर और गली–गली मे मिल सकता है। यहां तो तुझे हाथी, घोड़ा, रथ, हीरा, मोती आदि कोई बहुमूल्य वस्तु मांगनी चाहिए। यहां कमी क्या है ?

विप्र वालक कहने लगा– भूदेव ! तुम विवेकहीन और आचरणहीन व्राम्हण हो। कनक कामिनी का सेवन करने वाले हो। तुम विद्या बेचकर अपनी आजीविका चलाते हो। मन्त्र–तन्त्र वतलाकर धनोपार्जन करते हो। आज संसार मे वहुत से व्राम्हण ऐसे ही है। उन्होने सच्चे व्राम्हणत्व का परित्याग कर दिया है। वे लोभ-लालच से घिर गये है। व्राम्हण के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण ही वे अपने को व्राम्हण कहते है, किन्तु व्राम्हण के लक्षण उनमे लेश–मात्र भी नही देखे जाते। सच्चा व्राम्हण कौन है ?

जहा पोम्मं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं।।
अलोलुपं मुहाजीविं, अणगारं अकिंचणं।
असंसत्तं गिहत्थेसु, तं वयं बूम माहणं।।

हे विप्र ! जैसे कमल जल से उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नही होता, उसी प्रकार जो समस्त कामों से सदा अलिप्त रहता है, उसे हम व्राम्हण कहते है। जो लोलुपता से रहित हो, निष्काम भाव से जीवन यापन करता हो, घर बनाकर न रहता हो, अकिंचन हो और जो गृहस्थों के साथ घनिष्ठता न रखता हो, उसको हम व्राम्हण कहते है।

इन लक्षणो से सम्पन्न सच्चे व्राम्हण को हाथी, घोड़ा लेकर क्या करना है ? हीरा-मोती लेकर वह कहां रक्खेगा ? भिक्षा पर निर्वाह करने वाला व्यक्ति इन सव वस्तुओं से कोई सरोकार नही रखता।

कुमार ने कहा—ब्राह्मण ! दान अनेक प्रकार का है परन्तु अन्नदान का पुण्य बहुत अधिक है। **'अन्नं वै प्राणा:'** अन्न प्राण है, अर्थात् अन्न पर ही जीवन निर्भर है। भूख अन्न से ही मिटती है, तृप्ति अन्न से ही होती है। हाथी-घोड़ा न भूख मिटा सकते है, न तृप्तिजनक हो सकते है, न प्राणों की रक्षा कर सकते है। धन रखने वाले ब्राह्मण; ब्राह्मण नही पतित कहलाते है। अतएव मैने धन की याचना न करके अन्न की याचना की है। क्षमा करना महाराज ! मै किसी की ऋद्धि देखकर लार नही टपकाता। ब्राह्मण को प्रत्येक परिस्थिति मे निष्काम और सन्तुष्ट रहना चाहिए। कहा भी है—

असन्तुष्टा द्विजा नष्टा:।

असन्तोषी ब्राह्मण अपने जीवन का सर्वनाश कर डालता है। अर्थात् वह ब्राम्हणत्व से सर्वथा पतित हो जाता है।

हे ब्राम्हण ! जान पड़ता है कि तुम सच्चे नही, कच्चे ब्राम्हण हो। तुम्हारे साथ वार्तालाप करना भी योग्य नही है। तुम ब्राह्मण होने का ढोंग करते हो, परन्तु ब्राह्मण के उच्च आचार से रहित हो। ब्राह्मण के आचार मे तत्पर पुरुष त्यागशील होता है, लोभ-लालच उसके पास तक नही फटकता। वह निष्काम होता है।

विप्र कुमार के शास्त्रानुकूल वचन सुनकर ब्राह्मण लज्जित हो गया। उसने कुछ भी उत्तर नही दिया। परन्तु सत्यभामा कुमार के वचन सुनकर बहुत प्रभावित हुई। उसने अपनी दासी

विप्र बालक कहने लगा- भूदेव ! तुम विवेकहीन और आचरणहीन ब्राम्हण हो। कनक कामिनी का सेवन करने वाले हो। तुम विद्या बेचकर अपनी आजीविका चलाते हो। मन्त्र–तन्त्र बतलाकर धनोपार्जन करते हो। आज संसार मे बहुत से ब्राम्हण ऐसे ही है। उन्होंने सच्चे ब्राम्हणत्व का परित्याग कर दिया है। वे लोभ-लालच से घिर गये है। ब्राम्हण के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण ही वे अपने को ब्राम्हण कहते है, किन्तु ब्राम्हण के लक्षण उनमे लेश–मात्र भी नही देखे जाते। सच्चा ब्राम्हण कौन है ?

जहा पोम्मं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं॥
अलोलुपं मुहाजीविं, अणगारं अकिंचणं।
असंसत्तं गिहत्थेसु, तं वयं बूम माहणं॥

हे विप्र ! जैसे कमल जल से उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नही होता, उसी प्रकार जो समस्त कामों से सदा अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राम्हण कहते है। जो लोलुपता से रहित हो, निष्काम भाव से जीवन यापन करता हो, घर बनाकर न रहता हो, अकिंचन हो और जो गृहस्थों के साथ घनिष्ठता न रखता हो, उसको हम ब्राम्हण कहते है।

इन लक्षणो से सम्पन्न सच्चे ब्राम्हण को हाथी, घोड़ा लेकर क्या करना है ? हीरा-मोती लेकर वह कहां रक्खेगा ? भिक्षा पर निर्वाह करने वाला व्यक्ति इन सब वस्तुओं से कोई सरोकार नही रखता।

कुमार ने कहा--ब्राह्मण! दान अनेक प्रकार का है परन्तु अन्नदान का पुण्य बहुत अधिक है। **'अन्नं वै प्राणाः'** अन्न प्राण है, अर्थात् अन्न पर ही जीवन निर्भर है। भूख अन्न से ही मिटती है, तृप्ति अन्न से ही होती है। हाथी-घोड़ा न भूख मिटा सकते है, न तृप्तिजनक हो सकते है, न प्राणों की रक्षा कर सकते है। धन रखने वाले ब्राह्मण, ब्राह्मण नही पतित कहलाते है। अतएव मैंने धन की याचना न करके अन्न की याचना की है। क्षमा करना महाराज! मै किसी की ऋद्धि देखकर लार नही टपकाता। ब्राह्मण को प्रत्येक परिस्थिति मे निष्काम और सन्तुष्ट रहना चाहिए। कहा भी है--

असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः।

असन्तोषी ब्राह्मण अपने जीवन का सर्वनाश कर डालता है। अर्थात् वह ब्राम्हणत्व से सर्वथा पतित हो जाता है।

हे ब्राम्हण! जान पड़ता है कि तुम सच्चे नही, कच्चे ब्राम्हण हो। तुम्हारे साथ वार्तालाप करना भी योग्य नही है। तुम ब्राह्मण होने का ढोंग करते हो, परन्तु ब्राह्मण के उच्च आचार से रहित हो। ब्राह्मण के आचार मे तत्पर पुरुष त्याग-शील होता है, लोभ-लालच उसके पास तक नही फटकता। वह निष्काम होता है।

विप्र कुमार के शास्त्रानुकूल वचन सुनकर ब्राह्मण लज्जित हो गया। उसने कुछ भी उत्तर नही दिया। परन्तु सत्यभामा कुमार के वचन सुनकर बहुत प्रभावित हुई। उसने अपनी दासी

को आज्ञा दी—इस कुमार को वाड़े की भोजनशाला मे ले जाओ और प्रेम के साथ पेट भर भोजन कराओ।

कुमार—माताजी! भवन को छोड़कर मुझे वाड़े मे क्यों भेज रही है?

सत्यभामा—भाई, युवराज का विवाह हो रहा है। विवाह के उपलक्ष मे ब्राह्मणों को भोज दिया गया है। ब्राम्हणों ने मिलकर स्वयं ही रसोई वनाई है। वहाँ नाना प्रकार का भोजन तैयार है। आप वहां पधारो और सन्तोष के साथ भोजन करो।

कुमार—माँ जी! यह ब्राम्हण भ्रष्टाचारी है। इनके साथ बैठकर भोजन करना योग्य नही है। इन्होने अपने शास्त्रनिहित आचार-विचार का परित्याग कर दिया है। सब क्रियाहीन हो गये है। गायत्री का जाप छोड़कर घर मे औरते रखकर सब विषय भोगो मे आसक्त हो रहे है। वे शूद्रो की संगति करते है। भ्रम मे पड़े है और ब्रह्म की बाते बघारते है। धूर्तता करके परकीय धन को ठगते है और मिथ्या अहंकार मे चूर हो रहे है। ऐसे विप्रो का तो दर्शन भी बुरा है। जरा मार्कण्डेय पुराण का तो देखिए। ब्राम्हण के लक्षण देखकर आंखे खुल जाती है। मै इन ब्राम्हणों के साथ बैठकर भोजन नही करूँगा। अगर आप मुझ जिमाना चाहती है तो अलग एकान्त स्थान बता दीजिए।

सत्यभामा—नही कुमार, ऐसा न करो। हमारे घर से कभी कोई भूखा नही लौटता। फिर इस समय तो विवाह का समारोह है। तुम्हे भूखा कैसे लौटने दूगी?

कुमार–मै ब्राम्हण सम्बन्धी समस्त शास्त्रोक्त आचार का पालन करने वाला हूं। अपने मुख से अपनी प्रशंसा करना उचित नही है, किंतु मै अपरिचित हूं। इसी कारण मुझे स्वयं अपना परिचय देना पड़ रहा है। चारो वेद और अठारहो पुराण मैने कण्ठस्थ किये है। मै अनेक विद्याओं का भंडार हूं। मुझे जिमाने से आपको महान् पुण्य होगा, समस्त देवता तृप्त हो जाएँगे। अड़सठ तीर्थो मे पर्यटन करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है वही पुण्य मुझे भोजन कराने से आपको प्राप्त होगा। करोड़ों अनाचारियों को भोजन दान देने पर भी उतना फल प्राप्त नही होता जितना एक सदाचारी-संयमी को आहार दान देने से होता है। मै अपना पेट भरने नही आया हूं। पेट भर खाने को तो कही भी मिल सकता था। वास्तव मे मै आपको तारने के लिए आया हूं। अब स्पष्ट कहिए, आपकी क्या मर्जी है? अगर जिमाने की इच्छा है तो आपको मेरा कहना मानना पड़ेगा। इतना करने को तैयार ना हो तो मै अभी लौट जाता हूं।

लघुवयस्क ब्राह्मण कुमार को इतना वाचाल और इतना अनासक्त देखकर सत्यभामा बहुत प्रभावित हुई। उसने कहा–तुम्हे भोजन तो कराना ही है, और इसके लिए जो कहोगे वही करूँगी।

इस प्रकार कहकर सत्यभामा विप्रकुमार को भोजनशाला मे लाई। रसोइयों से पूछा–भोजन शुद्ध है? किसी ने जूठा तो नही किया?

रसोइया बोले–नहीं माताजी, भोजन शुद्ध और तयार है।

सत्यभामा—ठीक, तो इन विप्रकुमार को आदर के साथ जिमाओ।

रसोइया भोजन परोसने की तैयारी करने लगे। एक दासी ने पैर धोने के लिए पानी लाकर दिया। कुमार ने वह पानी अपने पैरों पर ढोर लिया। पानी ढुरते ही उसका प्रवाह आँगन मे फैल गया। आसपास की सब वस्तुएँ पानी मे भीग गई और ब्राम्हणों के कपड़े भी। यह देख ब्राम्हणों को बहुत क्रोध उपजा। चिढ़कर वे कहने लगे—अरे मूढ़ क्या तेरी खोपड़ी खुजा रही है ? तू घमण्ड मे इतना चूर क्यों हो रहा है ? तुझे बड़े-बुढों की मर्यादा का भी ध्यान नही है?

इस प्रकार कहकर कुछ ब्राम्हण उससे लड़ने को आमादा हुए, किन्तु कुछ शान्ति प्रिय ब्राम्हणों ने बीच-बचाव कर दिया। कहा—भाई रंग मे भंग मत करो।' यह सुनकर वे मन का रोष मन मे ही रख कर चुप हो गये।

प्रद्युम्नकुमार मौन था। उसने एक भी शब्द नही कहा। चुपचाप सबसे ऊंचे आसन पर जाकर बैठ गया।

यह देख दूसरे ब्राम्हणों की कोप-अग्नि फिर सुलग उठी। वे फिर बड़बड़ाने लगे। फिर भी कुमार एक दम मौन रहा। ब्राम्हण कुपित होकर वहां से उठ गये और दूसरी जगह चले गये। कुमार भी उनके पीछे-पीछे चल दिया। वे जिस जगह बैठे वहाँ भी कुमार सबसे ऊंचे आसन पर विराजमान हो गया! यह देख ब्राम्हणों के क्रोध का पार न रहा। एक बोला—इस

निर्लज्ज छोकरे की पूजा उतारे बिना काम नही चलेगा। यह बड़ा शैतान है।

तब कुमार ने गम्भीर और शान्त स्वर मे कहा–ब्राह्मणगण! आप ज्ञान व गुण मे मुझ से बड़े है, परन्तु आपका यह ज्ञान किस काम का ? आपने पढ़-लिखकर व्यर्थ ही माथा पचाया है। आपका अहंकार तो तनिक भी कम नही हुआ ! आप क्रोध, कपट और लोभ से भरे है। पाँच पापों मे से किसी भी पाप को आपने नही छोड़ा है। फिर किस बात पर इतना अभिमान करते हो ? किस बूते पर आप उच्चता का दावा करते हो ? आप मे कोई करामात हो तो दिखलाओ !

नीतिकार कहते है–

उपदेशो हि मूर्खाणां, प्रकोपाय न शान्तये।

मूर्ख लोगों को उपदेश दिया जाता है तो वे उलटे कुपित हो जाते है, शान्त नही होते। जाति के मद से मतवाले बने हुए ब्राम्हण कुमार की बात सुनकर खीझ उठे। सब के सब गुस्से से भर गये। कोई ईंट, कोई पत्थर और कोई लकड़ी लेकर प्रद्युम्नकुमार को मारने दौड़े। सब अपना जोर जतलाने लगे और एक दूसरे के आगे आ-आकर लड़ने को तैयार होने लगे।

तब कुमार ने सत्यभामा से कहा—माताजी, देखो, मेरे साथ यह लोग अन्याय कर रहे है। मैने सीधी-साधी बात कही और ये सब भूत की भाँति मेरे पीछे पड़ गये ! बताओ तो

सही, मैने इनका क्या विगाड़ा है ? मुझे वालक जान कर यह दवा रहे है !

सत्यभामा सव कुछ देख रही थी। उसने कहा—मै क्या करूँ ? तुम भी तो किसी से कम नही हो। तुम अपनी ही करतूत से इनके क्रोध को भड़का रहे हो।

कुमार ने वनावटी क्रोध प्रकट करते हुए कहा—धन्य हो पटरानीजी ! मुझ वालक को अपनी मीठी-मीठी वातो मे लगा कर इन निर्दय ब्राम्हणों के साथ उलझा दिया ! मुझे क्या पता था कि मै इन भूतों की मण्डली मे फँस जाऊँगा। किन्तु कोई बात नही। मै अकेला ही सव से निपट लूंगा। आप यही खड़ी-खड़ी देखती रहना। मै अपनी करामात दिखाकर इनकी अक्ल ठिकाने लगा दूंगा। जो जैसा करेगा सो वैसा भुगतेगा।

: ७ :

चमत्कार पर चमत्कार

जव ब्राम्हण कुमार पर आक्रमण करने को उद्यत हुए तो कुमार ने विद्या का आश्रय लिया। विद्या के प्रभाव से उसी क्षण सब ब्राम्हण अंधे हो गये और उन्मत्त की तरह बेसुध हो

गये। वे पागलों की तरह अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करने लगे। आपस मे एक दूसरे को गाली-गलौज करने लगे। उन्होंने सभ्यता, शिष्टता, लोकमर्यादा और लज्जा का परित्याग कर दिया। सब आपस मे ही एक दूसरे के साथ भिड़ गये। किसी ने लाठी ली, किसी ने जलती लकड़ी उठाई, किसी के हात लोटा ही आ गया, किसी को मूसल मिल गया, किसी को ईंट मिली। जिसे जो कुछ हाथ लगा, वही लेकर वे आपस में लड़ने और मार-पीट करने लगे। जिसे कुछ नही मिल पाया था, वे लातों और हाथों का ही उपयोग करने लगे। एक दूसरे की लातों से और घूसों से पूजा उतारने लगे। किसी को और कुछ नही सूझा तो अपना सिर ही दूसरे के सिर से टकराने लगे। किसी नें अपनी बगल मे खड़े हुए दूसरे ब्राम्हण को धक्का देकर जमीन पर पटक दिया और आप उसकी छाती पर चढ़ बैठा। कोई-कोई अखाड़े मे मल्लों की भाँति कुश्ती करने लगे। एक दूमरे के प्रति अपने दाँत मिस-मिसाने लगे। किसी ने किसी की लम्बी लटकती हुई चोटी खीच ली और घसीटने लगे। किसी ने दाढ़ी वाले की दाढ़ी पकड़ कर जोर से खीची तो किसी नें मूंछ पकड़ कर खीचना शुरू किया! किसी ने किसी की टाँग पकड़ कर नीचे गिरा दिया। किसी ने दूसरोंकी हड्डीयां ढिली कर दी।

सत्यभामा की भोजनशाला का वह भवन पागलखाने के रूप मे परिणत हो गया। उस दृश्य को देख कर ऐसा जान पड़ता था कि पागलखाने के सब पागलों को मन चाहा करने की खुली छूट दे दी गई है। वे सब अपने चिरकाल के अरमान निकाल

रहे है ! हुल्लड़ मच गया। होहल्ला होने लगा। चीत्कारों से आस-पास का वायुमण्डल व्याप्त हो गया। आपस की इस मार पीट, धक्का-मुक्की और खीचतान के कारण कई ब्राम्हणों के कपड़े फट गये। कई विलकुल नंगे हो गये। फिर भी सामने वाले की ललकार सुन कर वे पीछे नही हटना चाहते थे। सभी एक दूसरे के खून के प्यासे होकर रणक्षेत्र मे डट हुए थे। कुछ देर तक यही हाल वना रहा। भयकर मारामारी करते हुए वे लोग चीखने और चिल्लाने लगे।

विद्या के प्रभाव से सभी ब्राम्हण हतबुद्धि हो गये थे। अतएव वाप ने वेटे का खयाल न किया, भाई ने भाई की परवाह न की, काका ने भतीजे पर रहम न किया, भतीजे ने काका का लिहाज न किया, नाना ने दोहते का ध्यान न रक्खा और दोहता नाना के साथ न चूका। मामा भानेज, दादा-पोता आदि सव आपस मे भिड़ रहे थे। छोटे-वड़े का किसी का खयाल नही था। लाज-शर्म सव छोड़ चुके थे। फूहड़, गालियाँ बकने मे किसी को संकोच नही रह गया था। अन्धाधुन्ध मारपीट और बकवास का वाजार गर्म था।

हा-हाकार और हल्ला-गुल्ला सुन कर स्त्रियों और पुरुषों का समूह वहाँ इकट्ठा हो गया। जो भी आता और वहाँ का तमाशा देखता, वही आश्चर्य-चकित रह जाता था। मोटे-मोटे जनेऊधारी, लम्बी-लम्बी चोटी वाले, लम्बे-लम्बे तिलक वाले और अपने पांडित्य का अभिमान करने वाले इन ब्राम्हणों को आज क्या हो गया है ? नीति और धर्म की वाते करने वाले

यह क्या कर रहे है ? आज इनके भीतर दबी हुई पशुता किस कारण जाग उठी है ? यह सब किसी की समझ मे नही आ रहा था !

ब्राम्हणों की उन अद्भुत चेष्टाओं को देखकर लोग अपनी हंसी नही रोक सकते थे। हँसते-हँसते कइयों का पेट दुखने लगा। कइयों के मुहँ से लार टपकने लगी। किसी-किसी का दम रूक जाने से जी घबरा उठा। कइयों की आँखो मे पानी आ गया।

कुछ लोग, जो स्याने समझदार थे, उन्हे समझाने लगे। जब उनकी बातो का कुछ भी प्रभाव न पड़ा तो बीच-बचाव करने के लिए आगे बढ़े। मगर उनको छूते ही वे भी उन्हीं सरीखे हो गये। वे स्वयं लड़ने झगड़ने भिड़ने लगे। इस प्रकार उनकी संख्या बढ़ती ही गई और जैसे-जैसे संख्या बढ़ती गई, होहल्ला भी बढता गया।

अनेकों के माथे फूट गये, कइयों के घुटने टूट गये, किसी के हाथो से रक्त की धारा बहने लगी, किसी के दूसरे अंगों मे चोट आई।

सत्यभामा सब तमाशा देख रही थी और मन ही मन घबरा भी रही थी। उसे इस बात की चिन्ता हो रही थी कि मेरे द्वार पर आये हुए अतिथियों की ऐसी दुर्दशा हो रही है ! कही ऐसा न हो जाय कि किसी के प्राण चले जाएँ ! अवांछनीय घटना तो घट ही रही थी, मगर उसका दुष्परिणाम

ब्राम्हहत्या के रूप मे परिणत न हो जाय! कदाचित् कोई ब्राम्हण जान से मारा गया तो मेरी कितनी बदनामी होगी ?

यह सोचकर सत्यभामा ने विप्रकुमार से हाथ जोड़कर कहा-भाई ! वहुत हो चुका। खूब तमाशा देख लिया। अब जल्दी ही अपनी माया को समेट ले। बेचारे ब्राम्हण वहुत परेशान हो चुके है। वाल्यावस्था में ही यह कला तू ने खूब सीखी है।

विप्रकुमार हंसकर बोला-माताजी ! मै तो वालक हूँ। मैं जानता ही क्या हूँ ? यह तो वड़े-वड़े विद्वान् और ब्रम्हपरायण है। इस पृथ्वी के देवता कहलाते हैं और मानव-समाज को ब्रम्हज्ञान देने का दंभ करते है। अपनी आयु, विद्या और विद्वता के दर्प मे मतवाले वने है। कहाँ गई इनकी विद्या? कहां गई इनकी विद्वता ? कहां विलीन हो गया है इन सबका ब्रम्हज्ञान ? ऊँचे आदर्शो की बाते बघारने वाले इन ब्राम्हणों का वास्तविक स्वरूप तो अब प्रकाश मे आ रहा है ! यह प्रेतो और पिशाचों की भांति चेष्टाएँ कर रहे हैं !

इस प्रकार कहते हुए विप्रकुमार नें अपनी करामात समेट ली। सब ब्राम्हण प्रकृतिस्थ हुए। जैसे भूत का आवेश हट जाने पर मनुष्य के अंग-अंग बुरी तरह टूटने लगते है और समस्त शरीर एकदम शिथिल पड जाता है, उसी प्रकार इन ब्राम्हणों के भी अंग टूटने लगे और शरीर निर्जीव सा हो गया। सब सोचने लगे—यह क्या हो गया ? अपनी हालत देख-देख कर वे पछताने लगे। कई अपनी चोटें सम्भालने लगे, कई अपने कपड़े खोजने लगे। सब लज्जा के मारे गड़े जा रहे थे।

एक दूसरे से बोला–हम सब ने सम्मिलित होकर बहुत बार भोजन किया है, पर आज जैसा भोजन तो कभी चखने को मिला ही नही। इस लघुवयस्क ब्राम्हण बालक ने आज अपूर्व स्वाद चखाया है!

विप्र कुमार ने कहा–ब्राम्हणगण! मेरा अपराध क्षमा करना। यह दण्ड आपके दंभ और दर्प का दण्ड है। यह शिक्षा है। आप सच्चे ब्राम्हणत्व को समझे और सच्चे ब्राम्हण बने। सच्चा ब्राम्हण वही है जो पूर्ण रूप से ब्रम्हचर्य का पालन करता है और ब्रह्म अर्थात् आत्मा मे रमण करता है। आज की यह घटना यही सबक सिखलाने के लिए है। स्मरण रखना–

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।

मनुष्य की पूजा-प्रतिष्ठा उसके गुणों के आधार पर होनी चाहिए, उम्र या वेष के आधार पर नहीं।

इसके पश्चात् विप्र कुमार ने सत्यभामा की ओर उन्मुख होकर कहा–माताजी, मुझे न्यौता देकर बैठा क्यो रक्खा है? भूख के मारे मेरा जी अकुला रहा है। जिमाना हो तो अब देर मत करो। आप तो महाराज श्रीकृष्णजी की पटरानी है। आपके यहां किस वस्तु की कमी है? फिर आप जिमाने के लिए टालमटूल क्यों कर रही है?

सत्यभामा ने मुस्करा कर कहा–कुमार! देर क्या मैंने की है? यह सब तो तुम्हारी ही करामात है! अब कुछ देर नही है।

इतना कह कर सत्यभामा ने दासियों की ओर संकेत किया और कहा—ऊँचा आसन बिछाकर सुवर्ण का थाल परोसो। उसमे रत्नों की कटोरियां सजाओ। बाजौठ लाकर रखो। स्वर्ण का कलश ले आओ और उसमे गंगाजल भर कर रख दो। श्रद्धा भक्ति के साथ सब प्रकार का भोजन परोस कर विप्र कुमार को हमारे सामने जिमाओ। जल्दी-जल्दी करो, क्षण भर भी विलम्ब न करो।

एक कुबड़ी दासी स्वर्ण-घट मे शुद्ध गंगाजल ले आई। वह गहरी और आन्तरिक भक्ति के साथ कुमार के पैर धोने लगी। कुमार के चरणों को स्पर्श करते ही कुब्जा दासी की कूबड़ गायब हो गई उसका रूप इतना सुन्दर हो गया कि अप्सरा देखकर लज्जित हो जाय! अपना नवीन सुन्दर रूप देखकर दासी को असीम हर्ष हुआ। कुबेर का भण्डार पाकर भी जितनी प्रसन्नता नही हो सकती थी, सौन्दर्य से जगमगाते रूप को देख उतनी प्रसन्नता हुई!

सत्यभामा इस अद्भुत घटना को देखकर विस्मित रह गई। अन्य लोग भी कुमार के अलौकिक चमत्कार को देखकर चकित हो गये।

: ८ :

चरम चमत्कार

—⁂—
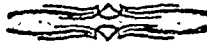
कहावत है—चमत्कार को नमस्कार। सत्यभामा विप्रकुमार का अपूर्व चमत्कार देखकर अति प्रभावित हुई। वह मन ही मन सोचने लगी—यह ब्राम्हण कुमार बड़ा करामाती है। गुणों का सागर है। यह चिन्तामणि के समान समस्त मनोरथों को परिपूर्ण करने वाला है। जैसे ऊपर-ऊपर राख से दबी हुई अग्नि भीतर तेज से समन्वित होती है, उसी प्रकार इस कुमार के भीतर भी अद्‌भुत तेज निहित है। यह मेघों से आच्छादित चन्द्रमा के समान है। इसे देख कर मेरा मन उल्लास का अनुभव करता है।

इतने मे ब्राम्हण-कुमार सत्यभामा से बोला—बड़ी माँ, मेरी बात सुन लीजिए। मै जीमने बैठता हूँ। अगर भर पेट जिमा सको तो जिमाओ, मै अधभूखा नही उठूँगा। अधभूखा रखना हो तो पहले से ही इन्कार कर दो। मै चुप-चाप चला जाऊँगा! कहा है—

आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्।

जो आहार और व्यवहार मे संकोच नही रखता, वह सुखी होता है। इसलिए मै पहले ही साफ-साफ पूछ लेता हूँ।

सत्यभामा—कुमार, तुम क्या कह रहे हो ? पुण्य के प्रताप से इस घर मे किसी चीज की कमी नही है। यहाँ तो हजारों हाथी भरपेट भोजन पाते है, मनुष्य की तो वात ही क्या है ! तुम प्रसन्न होकर भोजन करो। जो इच्छा हो. जीमो। किसी प्रकार की शंका मत रक्खो। जो चाहोगे, मिलेगा।

सत्यभामा का उत्तर सुन कर कुमार भोजन करने लगा। यदुकुल की नारियाँ मिल कर, हर्ष और उत्साह के साथ भोजन परोसने लगी। सर्व प्रथम वादाम, पिश्ता, दाख, चिरौंजी, खजूर आदि मेवा परोसे गये। कुमार खाने लगा और स्त्रियाँ परोसने लगी। परोसते-परोसते जव मेवा समाप्त हो गया तो केला. सेव, अंगूर आदि-आदि फलों की वारी आई। जव फल भी निश्शेष हो गये तो पकवानों की वारी आई। केसरिया लड्डू, मोतीचूर, मुगद, दाल का हलुवा, वर्फी, कुन्दन के पेड़े, घेवर, कलाकन्द, जलेबी, फेनी, गुलावजामुन आदि-आदि मिठाइयाँ भी समाप्त हो गई। तव मेवे की खिचड़ी, राम खिचड़ी, खाजा, वड़े पकौडियाँ, पेठा, रायता आदि-आदि परोसा जाने लगा। मगर कुमार जीमने मे ऐसा तन्मय था कि अघाने का नाम ही नही लेता था। अतएव उसे पूरन पोली, पूड़ी, रोटी, वाटी, मालपुवा, खाखरा, खीर, रबड़ी, श्रीखण्ड, मलाई आदि तरह-तरह के भोज्य-पदार्थ परोसे गये। जव देखा कि इनसे भी विप्र तृप्त नही हो पाया तो दाल, भात, कड़ी, शाक आदि परोसा गया। परोसते समय लगता था मगर उसके हड़प जाने मे समय ही नही लगता था। कुमार नीची गर्दन किये एकाग्र भाव से थाली मे आये हुए भोजन को इस प्रकार

हड़प जाता था कि पता ही नही चलता था कि भोजन कब और कैसे गायब हो गया ! जैसे सूखे घास और घी का ईधन पाकर अग्नि उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है, उसी प्रकार भोज्य-पदार्थ पाकर कुमार की क्षुधा-अग्नि भी वृद्धिगत होती जा रही थी। देखने वाले, परोसने वाले और भोजन बनाने वाले हैरान थे, आश्चर्य मे डूबे हुए थे।

समस्त ब्राम्हणों के लिए जो भोजन बनाया गया था, वह सब समाप्त हो गया। तब आस पास के घरों से मँगवाया जाने लगा। मगर कुमार को तृप्ति कहां ? धाणी (लाई), मुरमुरा, मूगँफली, सत्तू आदि वस्तुएँ तक नही बची। तब हाथियों, घोड़ों, ऊँटों, गायों और भैसों के लिए जो दाना तैयार किया गया था, उसकी बारी आ गई। वह सब भी विप्र की थाली मे रक्खा गया। रखते समय तो पता चला, मगर समाप्त होने का पता नही चला।

यादवकुल की नारियाँ चकित थी। सब अपने-अपने घर जाकर भोजन राँधने लगी। कच्चा-पक्का भोजन बना-बनाकर कुँमार के सामने रखा जाने लगा। मगर जो भी सामने आया, सब हड़प हो गया।

चारों ओर विचित्र ही प्रकार का कोलाहल मच गया। लोग सोचने लगे—यह मनुष्य नही, कोई देवता या दानव है, भूत है ! यह तृप्त हो ही नही सकता !

यह सब बाते कुमार के कानो मे पड़ी। वह बोला-माता

सत्यभामा ! मैने पहले ही कह दिया था कि जिमाना हो तो पेट भर जिमाना। तुमने यह शर्त स्वीकार कर ली थी। मगर अब उसका पालन नही हो रहा है। तुम सूम की तरह नीचा मुख करके बैठ गई हो ! और कुछ हो तो मँगवाओ न ! मै अब भी भूखा हूँ। त्रिखण्डनाथ की वडी पटरानी हो और उग्रसेन के कुटुम्ब मे जनमी हो, फिर यह कृपणता कहाँ से सीखली है ? वडप्पन पाकर ऐसी क्षुद्रता दिखलाना उचित नही है। तुम तो 'मोटा सो खोटा' कहावत चरितार्थ कर रही हो ! मै न उपवासी ही रहा और न तृप्त ही हुआ, अधबीच मे रह गया हूँ। मेरे पेट की आग को सुलगा कर तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया है। तुम्हारे लक्षण तो पहले ही नजर आ रहे थे ! एक पेट को भी पूरा न भर सकी तो अनेकों को कैसे भर सकोगी ? **तेते पांव पसारिए जेतो लांबी सोर।**' जितना बूता हो उतना ही वायदा करना चाहिए। उतना ही उत्तरदायित्व सिर पर लेना चाहिए। अपना घर देख कर मेहमानों को न्यौता देने मे ही समझदारी है ऐसा करने वालों की ही लाज रहती है।

ब्राम्हण-कुमार के इन वचनों का सत्यभामा क्या उत्तर देती ? उसके पास बोलने के लिए एक भी शद्व नही था। वह लज्जित भाव से कुमार की कटु वचनावली सुनती रही। उसे भय लग रहा था कि यह विप्र कही और कोई अनर्थ न कर बैठे !

कुमार फिर बोला-तीव्र क्षुधा के कारण मे सुध-बुध भूल गया हूँ। इसी कारण कठोर वचन मेरे मुंह से निकल रहे है।

अब या तो मुझे भर पेट भोजन दो; या इन्कार कर दो तो अन्यत्र जाकर याचना करूँ।

सत्यभामा फिर भी कुछ न बोली। विप्रकुमार की करामाते उसे एक-एक करके याद आने लगी। कुब्जा दासी को इन्द्रानी के समान अतिशय रूपराशि और सुन्दरता का आगार बनाने की घटना उसके नेत्रो के आगे नाचने लगी। इस घटना का स्मरण होते ही सत्यभामा के हृदय मे एक नवीन प्रलोभन जागृत हो गया! वह सोचने लगी—कदाचित् मुझे ऐसा अपूर्व लावण्य प्राप्त हो जाय तो कितना अच्छा होगा! सहज ही मै अपने लावण्य से अपने प्रियतम के चित्त को आकर्षित कर सकूंगी और अपनी सौतो को नीचा दिखला सकूंगी। ऐसा करामाती विप्र पहली ही बार मिला है, फिर कौन जाने कब मिलेगा या मिलेगा ही नही!

सत्यभामा की आँखों मे एक अपूर्व चमक आ गई। उसने विनम्र स्वर मे कहा-कुमार! अब अपनी लीला समेट लो! तुम जीते, मै हारी।

कुमार ने उसी समय आचमन किया और थाली छोड़ कर उठ खड़ा हुआ।

: ९ :

सत्यभामा की दुर्गति

अपनी कुब्जा दासी का अद्‌भुत रूप-लावण्य देखकर और विप्र कुमार की अनोखी करामातों का विचार करके सत्यभामा के अन्त:करण मे एक नवीन प्रलोभन जागृत हुआ। सुन्दरी तो वह थी ही, पर और भी अधिक भौन्दर्य पा लेने की हवस उसे सताने लगी। सोचने लगी—इस करामाती के चमत्कार की वदौलत अगर मै असाधारण रूप-राशि प्राप्त कर सकी तो सहज ही अपनी सौंतों को, विशेषत: रुक्मिणी को परास्त कर सकूंगी।

इस प्रकार मन ही मन सोचकर उसने विप्र कुमार की खूब आव-भगत की। उसके प्रति गहरी अनुरक्ति प्रदर्शित की और अत्यन्त प्रेम प्रकट करती हुई बोली—वत्स कुमार, मेरे महल मे पधारो। आपके स्वागत-सत्कार मे जो त्रुटि रह गई है। उसकी पूर्त्ति वहाँ करूँगी।

कुमार भी यही चाहता था। उसने ननुनच किये विना ही सत्यभामा के महल मे जाना स्वीकार कर लिया। आगे-आगे सत्यभामा और पीछे-पीछे कुमार चला। दोनों महल मे जा पहुँचे।

दोनों अपना-अपना मनोरथ गाँठने की फिराक मे थे। सत्यभामा ने सब दास-दासियों को वहाँ से हटा दिया। अब दोनों आमने-सामने बैठे थे। दोनों के चेहरे पर प्रसन्नता नाच रही थी।

कुछ क्षणों के मौनावलम्बन के अनन्तर सत्यभामा ने अपनी लालसा को व्यक्त करने की भूमिका तैयार करते हुए कहा—वत्स ! तुम्हारा चमत्कार देख कर मै चकित और प्रसन्न हूँ। तुम महाज्ञानी, महागुणी और महा करामाती हो। तुम्हारी विद्या मुक्तकण्ठ से प्रशंसनीय है। किन्तु किसी भी विद्या की वास्तविक सफलता तो इस बात मे है कि उससे दुखियों का दुःख दूर किया जाय। जो विद्या आर्त्त जनों की आर्ति निवारण के काम नही आती, वह अकारथ है। मै त्रिखण्ड के नाथ की वड़ी पटरानी होने पर भी दुखिया हूँ। तुम सरलता से विश्वास नही कर सकोगे। यह वाह्य वैभव देख कर समझते होगे कि भामा सुखिया है, परन्तु यह दिखावा है। मेरे हृदय मे शल्य की भाँति अनेक पीड़ाएँ चुभ रही है। चित्त पल भर के लिए भी निराकुलता जन्य शान्ति का उपभोग नही कर सकता। हृदय मे हाहाकार और चीत्कार की ध्वनि ही गूंजती रहती है।

कुमार—अत्यन्त आश्चर्य है माताजी ! जव सत्यभामा जैसी भाग्यशालिनी रमणी इतनी वेदना-ग्रसित है तो संसार मे अन्य कौन सुखी होगा ?

सत्यभामा—आश्चर्य की वात भले ही हो कुमार ! पर

असत्य नही है। तुम मेरे दुख को दूर कर दोगे तो मै जीवन भर उपकार नही भुलूँगी।

कुमार—माता, सुनो। मै मन्त्र, तन्त्र, औषध जड़ी-बूटी आदि सभी कुछ जानता हूँ। देव-देवियाँ मेरे अधीन है। मै इन्द्र और चन्द्र को भी अपने वश कर सकता हूँ, मै चाहूँ तो पाताल मे धँस सकता हूँ, चाहूँ तो आकाश मे उड़ सकता हूँ, जल मे समा सकता हूँ। सज्जनों की सहायता करना और दुष्टों का विनाश करना मेरी चुटकियों का खेल है। तुम्हारी भक्ति और सज्जनता देख कर मै प्रसन्न हुआ हूँ। तुम्हारे मेरे बीच किसी तरह का दुराव नही है। मै तुम्हारे कष्ट को समझता हूँ। तुम्हे अपनी सौतों का बड़ा दुःख है। क्या यह बात सही है?

सत्यभामा—यथार्थ है विप्र! तुम अन्तर्यामी हो। तुमसे कोई भी बात छिपी नही है। मै अधिक क्या निवेदन करूँ?

कुमार—यदुनाथ तुम्हारी सौतों को बहुत चाहते है और तुम्हारा मुंह भी नही देखना चाहते। मै तुम्हारे इस दुख को जल्दी ही दूर कर सकता हूँ।

सत्यभामा कुमार की बात सुन कर गदगद् हो गई। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। वह कुमार के चरणों मे गिर पड़ी। उसका हृदय अधीर हो गया। फिर वह बोली—कुमार! मुझ पर दया करो। मै अपनी सौतों से करारा बदला लेना चाहती हूँ। मेरी इच्छा है कि मेरे सिवाय हरि किसी दूसरी रानी की ओर आँख उठा कर भी न देखे। मेरी यह मनो-

कामना पूर्ण कर दोगे तो महान् उपकार होगा। मै सदा के लिए आपकी सेविका बन जाऊँगी।

कुमार–चिन्ता न करो माता, तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा।

सत्यभामा–मै कृतार्थ हुई वत्स! मेरी सौत रुक्मिणी कपटकला मे अतिशय कुशल है। वह मेरे हृदय मे काँटे की भाँति चुभ रही है उसका कुछ इलाज जल्दी ही कर दीजिये। मै रो-रो कर दुवली हो गई हूँ। अव नही सहा जाता। उसने हरि को अपने ऊपर रिझा लिया है और मेरी ओर से विरक्त सा कर दिया है। ऐसी युक्ति कीजिए कि वे मेरे वश मे हो जाएँ।

ईर्षा की मारी सत्यभामा की बुद्धि विपरीत हो गई है। कहावत है–

बिनाशकाले विपरीतबुद्धिः।

वह खोटा होनहार से प्रेरित होकर बिल्ली को दूध और शेर को वानर की रखवाली का काम सौंप रही है! मनुष्य जिसे अपना विरोधी समझता है, जिससे अपने स्वार्थ मे वाधा पड़ते देखता है, उसका वुरा सोचने लगता है। उसकी वुद्धि इतनी दुर्वल हो जाती है कि उसे यह भान ही नही रहता कि मेरे सोचने से दूसरे का वुरा-भला कैसे हो सकता है। दूसरे का अहित सोचना अपध्यान कहलाता है और यह एक वड़ा पाप है। इस पाप का आचरण करने से दूसरे का अहित हो या न हो; सोचने वाले का अहित तो हो ही जाता है। वह अपने

मलीन और दुष्ट अध्यवसाय से अपने लिए काँटे बो ही लेता है।

सत्यभामा की बात सुनकर कुमार ने कहा--माताजी, आपकी विपदा का दूर होना तो साधारणसी बात है। अगर आप थोड़ा कष्ट सहन कर लोगी तो निश्चय ही आपको मन-चाहे सुख की प्राप्ति होगी। आपका असामान्य आदर होने लगेगा और रुक्मिणी आपके पैरों मे आकर गिरेगी। किन्तु-

सत्यभामा-'किन्तु' क्या कुमार ! स्पष्ट बतलाइए।

कुमार-तुम्हे मन्त्र की साधना करनी पड़ेगी। मन्त्र-साधना की विधि कुछ कठिन है। तुम कर सकोगी ?

सत्यभामा-जो कहोगे वही करूँगी वत्स ! मै लज्जा और कायरता को अपने पास भी नही फटकने दूंगी। किसी भी प्रकार मुझे तो अपने पति को वश मे करना है। मेरी लज्जा तुम्हारे हाथ मे है। तुम्ही मेरे आधार हो, तुम्ही मुझे गति और मति के दातार हो। मै तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन नही करूँगी। जो कहोगे वही करूंगी।

कुमार-तो फिर शीघ्र ही अपना मूंड मूंडा लो और मुख पर कालिख पोत लो। फटे पुराने कपड़े धारण करलो। फिर मै मन्त्र बतलाउंगा, उसका जाप करना।

सत्यभामा-यह विधी तो बड़ी दुष्कर है ! इसके बिना मनोरथ पूर्ण न होगा ?

कुमार–नही यह वात तो मै पहले ही स्पष्ट कर चुका हूं। इच्छा न हो तो जाने दो।

सत्यभामा–अच्छा मन्त्र कौन सा है ?

कुमार–मंत्र यह है–

ओ ह्री अरड़-बरड़ रुंड मुंड स्वाहा !

एक सौ आठ बार इस मन्त्र का जाप करने से हरि आपके क्रीतदास हो जाएंगे। आपका रूप देखकर इन्द्रानी भी लज्जित हो जायगी। आप इन्द्र के लिए दुर्लभ बन जाओगी, माधव की तो वात ही क्या है ! माता दुःख सहन किये बिना सुख की प्राप्ति नही होती। नाक बिंधाने वाले को गुड़ खाने को मिलता है। आभूषणों का भार सहन करने वाले को ही आदर मिलता है और उसी का सौन्दर्य चमकता है। फिर आपका कष्ट तो थोड़ी देर का है। केश फिर उगआएंगे और बढ़ जाएंगे। मुंह की कालिमा तो धोते ही मिट जाएगी। मगर मन्त्र के प्रभाव से आपको जो सिद्धी प्राप्त होगी, वह जीवन-पर्यन्त आपके पास रहेगी।

सत्यभामा भविष्य की सुनहरी कल्पनाओं मे खो गई। उसने उचित अनुचित का विवेक त्याग कर स्वार्थ-सिद्धी का पथ ग्रहण किया। वह ललचा गई। उसी समय नाइन को बुलवा कर अपना मस्तक मुंडाने के लिए उसके सामने बैठ गई। बोली-शीघ्रता करो, केश उतार दो।

नाइन चकित रह गई। उसकी समझ मे नही आया कि

महारानी को आज क्या हो गया है ? माधव के भय से वह उस्तरा चलाने मे झिझकने लगी । बोली—महारानीजी ! यह क्यो ?

सत्यभामा—तुझे इससे क्या सरोकार ? दुनिया भर का भेद पूछने की क्या आवश्यकता है ? जो कहती हुं सो कर, पल भर का विलम्व मत कर । जल्दी ही मस्तक मूंड़ दे ।

नाइन विवश थी । इच्छा न होने पर भी उसने सत्यभामा का सिर साफ कर दिया । तत्पश्चात् उसने तेल और काजल मिलाकर अपने मुख पर पोत लिया । फटे-पुराने कपड़े पहन लिये ।

कुमार सत्यभामा का यह अपूर्व वेष देखकर प्रसन्न हुआ उसने कहा-वस महारानीजी, अव मनोरथ पूरा हुआ ही समझ लो ! जरा गधे की लींडों की माला और पहने होती तो सोने मे सुगन्ध हो जाती ।

सत्यभामा ने सोचा—इतना किया है तो यह कमी क्यो रखी जाय ? पूरी विधी करने से ही पूरी सिद्धी प्राप्त होगी । यह सोच उसने वह माला भी गले मे धारण कर ली । तत्पश्चात् पद्मासन लगा कर वह मन्त्र जपने लगी:—

ओ न्हीं अरड़-बरड़ रुंड मुंड स्वाहा !

कुमार बहाना करके वहां से चल दिया ।

: १० :

माता की उत्कंठा

नारदजी के कथनानुसार सोलह वर्ष बीतते ही प्रद्युम्न-कुमार का आगमन होना था। रुक्मिणी अत्यन्त उत्कण्ठा के साथ दिन गिन रही थी। उसकी गणना के अनुसार सोलह वर्ष बीत चुके थे। उसके आगमन पूर्व जो लक्षण प्रगट होने थे, वे भी प्रकट हो गये थे। अतएव रुक्मिणी मन मे सोचने लगी- अब मेरा लाल आना ही चाहिए ! अहा, वह कौन-सा सुक्षण होगा, जब मै उसको जी भर कर देखूंगी और अपनी आँखे शीतल करूँगी। वह अधीर हो रही थी। आज किसी भी काम मे उसका मन नही लगता था। हृदय मे अनिर्वचनीय भाव उदित हो रहे थे। अव्यक्त हर्ष और प्रमोद से उसका हृदय उछल रहा था।

अपने सुपुत्र की और स्वजन की चाह किसे नही होती ? फिर चिरकालीन वियोग के पश्चात् तो वह चाह और भी बढ़ जाती है। जिस पर रुक्मिणी तो सगी माता थी और उसका पुत्र सिर्फ पांच दिन की आयु मे ही उससे बिछुड़ चुका था ! इकलौता पुत्र था उसी पर रुक्मिणी का भविष्य निर्भर था। उसके आने पर ही रुक्मिणी की प्रतिष्ठा रह सकती थी। उसका आने मे विलम्ब करना रुक्मिणी की जिंदगी नष्ट होना

था। ऐसी स्थिति में रुक्मिणी की कितनी उत्कण्ठा होगी, वह कल्पना करना कठिन नही है।

रुक्मिणी एकान्त स्थान मे वैठकर सोचने लगी—न जाने मेरा लाल किस घड़ी लौट कर आएगा! उसके विरह मे लम्वे-लम्वे सोलह वर्प वीत चुके है। इस लम्वे काल मे दिन-रात मुझे उसी की लगन रही है। गाय वन मे चरने जाती है, परन्तु खाते-पीते समय उसके मन मे अपने वछड़े का ही खयाल वना रहता है और संध्या होते ही रंभाती हुई वछड़े से मिलने आ जाती है। जैसे गजराज कदली वन की, कोयल आम्रमंजरी की, चकवी सूर्य की, हंस सरोवर की, मधुकर सुमन की, पपइया स्वाति नक्षत्र के जलधारा की, भूखा अन्न की, प्यासा पानी की रोगी औषध की और विरहिणी अपने प्राणप्रिय की कामना किया करती है, उसी प्रकार मै अपने आँखो के तारे प्यारे पुत्र से मिलने की कामना करती रही हूँ। वह कामना अव सफल होने आई है। सीमन्धर स्वामी ने सुत-मिलन की जो शुभ वेला वतलाई थी, वह अब आ पहुँची है। अव मेरा कलेजा मुझसे मिलने ही वाला है।

इस प्रकार सोचकर रुक्मिणी का हृदय हर्ष-विभोर हो गया। दर्दुर जल के अभाव मे सूखकर चर्म-रूप हो जाता है, उसका शरीर पिचक जाता है और चमड़ी के अतिरिक्त कुछ भी शेष नही रह जाता, किन्तु जलवृष्टि होते ही वह सजीव और सप्राण हो जाता है! इसी प्रकार रुक्मिणी भी हर्ष से फूल उठीं।

रुक्मिणी ने हर्ष के आवेश में अपनी सखियों को बुलाया और कहा—सखियों! सीमन्धर स्वामी की वाणी अन्यथा नहीं हो सकती, नारद ऋषि का आश्वासन मिथ्या नहीं हो सकता। आज मेरा लाल अवश्य आएगा। आओ, हम सब मिलकर हर्ष मनाएँ और उसके स्वागत का साज सजाएँ!

सखियों समेत रुक्मिणी, प्रद्युम्नकुमार के आगमन के उपलक्ष मे आनन्द मनाने लगी। किसी सखी ने अपने हाथों घर लीपा, किसी ने मोतियों का चौक पूरा। किसी ने धूप जलाई और किसी ने पांच वर्ण के फूल बिछाये! दधि और दुर्वा रक्खी गई। हीरों और पन्नों के चित्र बनाये गये। रोली का थाल सजाया गया। मधु, दधि आदि मंगल-द्रव्यों के घट भरे गये।

रुक्मिणी कहने लगी—सखियो! विलम्ब न करो। मेरा लाल आना ही चाहता है। जलती हुई आरती हाथ मे ले लो। देखो, कोई लंगड़ा, अंधा, नकटा, भैंस आदि आस-पास मे न आने पावे। कोई अपशकुन न हो जाय। कोई छींकना मत, खाँसना मत और हल्ला करना मत। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल तैयार करो। मेरे नन्द के सामने जावो। समाचार लाओ, वह अब कितनी दूर है? सब शुभ शकुन करो अशुभ को दूर करो।

रुक्मिणी हर्ष से बावली-सी हो गई। वह कहती है—सखियो! मेरा लाल आएगा तो उसे पहचान तो लोगी? अरी, वह तो निराला ही नजर आ जायगा। वह गजराज की मस्त

चाल से चलता हुआ आएगा। उसका भाल चन्द्रमा और सूर्य की भाँति दैदीप्यमान होगा। वह बोलेगा तो जैसे मुख से फूल झड़ेंगे! उसकी वाणी मे अमृत की मिठास होगी।

अरी, वह अब दूर नही होगा। आएगा तो मै अपनी गोद मे उसे छिपा लूंगी। सौं-सौ बार उसके मस्तक का चुम्बन करूँगी। दूज के चाँद की तरह उसका छबीला मुख देखूंगी। उसे उत्तम वस्त्रों और आभूषणों से सिंगारूंगी।

रुक्मिणी इस प्रकार अपने मनोरथो की माला गूंथने लगी। उधर प्रद्युम्नकुमार भानुकुमार को, उसके सरदारों को, अपने दादा को छका कर, बावड़ी को सुखा कर, व्यापारियों मे त्रास फैला कर, बजार को बहाकर, द्विजों को लड़ाकर, कुब्जा को सुन्दर बनाकर और अन्त मे सत्यभामा की अक्ल ठिकाने लगा कर, रुक्मिणी का मनोरथ पूर्ण करने की तैयार हो रहा है।

चतुर्थ स्कन्ध

: १ :

रुक्मिणी के महल में

प्रद्युम्नकुमार सत्यभामा के महल से निकल कर आगे बढ़ा। उसने फिर एक महल देखा। यह महल इन्द्रभवन के समान जगमगा रहा था। वह अत्यन्त सुरम्य, मनोहर और आनन्दप्रद था।

इस महल को देख कर कुमार का मन स्वयं आनन्दमग्न हो गया। वह महल के सामने खड़ा हो गया। महल जैसे उसे अपनी ओर खींच रहा था। विद्या से पूछने पर उसने कहा–कुमारवर! यही आपकी माताजी का महल है। इसके भीतर प्रवेश करके अपनी जननी की लालसा पूर्ण करो। वह तुम्हारे लिए व्यग्र हो रही है। उनके अन्त:करण की कामना परिपूर्ण करके उन्हे सुखी बनाओ।

कुमार–विद्ये! मेरी माता का अनुराग किस पर है?

विद्या–आपकी माता श्रमणों और श्रमणिओं पर गहरा

अनुराग रखती है। उन्हे भक्ति भाव के साथ इच्छित दान देकर प्रसन्न होती है।

विद्या की बात सुनकर प्रद्युम्नकुमार ने उसी समय लघुवयस्क साधु का रूप धारण कर लिया। कमर पर चोलपट सुशोभित होने लगा। मुख पर मुखवस्त्रिका और कांख मे रजोहरण धारण कर लिया। दाहिने हाथ मे पात्रों की झोली लटकती दिखलाई दी। ईर्यापथ शोधते हुए लघु मुनि गम्भीर और मन्द गति से गमन करने लगे उनके चेहरे पर दिव्य तेज झलक रहा था। रूप अतिशय मनोहर था।

जिस किसी ने मुनि को चलते देखा, वही चकित रह गया और लोग झुक-झुक कर वन्दना करने लगे और बदले मे मुनि मधुर वचनों मे उन्हे सांत्वना देने लगे।

आखिर अपनी महनीय माता का दर्शन करने के लिए कुमार ने महल मे प्रवेश किया। माता की महिमामंडित मूर्ति देखकर कुमार का मन असीम आमोद से परिपूर्ण हो गया।

रुक्मिणी बाल-साधु को आते देखकर अतिशय हर्ष और सुख का अनुभव करने लगी। उसके मन मे मोह जागृत हो गया। दृष्टि पड़ते ही वह एकदम अपने आसन से उठी और सामने गई। फिर यथोचित वन्दना करके बोली-आज मेरा भाग्य अत्यन्त धन्य है कि आपने यहाँ पदार्पण किया। आपकी अभी बाल वय है। दूर से आ रहे हैं। कृपया थोड़ी देर विश्राम कर लीजिए।

यह कह कर रूक्मिणी उन्हे अपने भवन मे ले गई। वहां ले जाकर बोली—मैं स्वयं पाट ले आती हूँ, आप थके हुए प्रतीत होते है। इस प्रकार कहकर और मुनि के उत्तर की प्रतिक्षा किये बिना ही वह पाट ले आई। कहा—इस पर विराजमान हो।

मुनिवर ने अपने चरण पूंजे और पाट पर न बैठ कर श्रीकृष्ण के बैठने का जो आसन वहाँ रक्खा था, उस पर बैठ गये। रूक्मिणी को यह देख कर आश्चर्य हुआ। वह कहने लगी-गुरुदेव ! मेरी विनय सुनिए। यह आसन देवाधिष्ठित है। इस पर या तो श्रीहरि ही बैठते हैं या उनकी सन्तान बैठ सकती है। कोई और बैठ जाय तो उसका अमंगल होता है। उसके ऊपर संकट आ पड़ता है। अतएव आप इस पाट पर विराजे तो अच्छा हो।

मुनि-श्राविका ! आप मेरे अनिष्ट का भय न कीजिए और इस आसन पर बैठने के लिए मना मत कीजिए। जहाँ मुनि विश्राम लेते है, वह स्थान पवित्र ही होता है।

रूक्मिणी—महाराज ! दैवी-प्रभाव अतीव प्रबल होता है। यही सोच कर मैं निवेदन कर रही हूँ।

मुनि—निश्चिन्त रहो, मै तो बैठ गया हूँ। जिसमे शक्ति होगी वही तो बैठेगा ! दैवी प्रभाव प्रबल होता है तो तपः प्रभाव उससे भी अधिक प्रबल होता है। तपोलब्धि के प्रभाव के सामने देवराज इन्द्र भी काँपता है। तप की शक्ति विश्व की समस्त विरोधी शक्तियों पर अनायास ही गहरा प्रभाव

डालती है। तपस्या समस्त विघ्नों और वाधाओं का विनाश करने वाली है। तपस्या मे असाधारण वल है—इतना वल कि उसके सामने सभी निर्बल हो जाते है। तपस्वी दीखने मे निर्वल दिखाई देता है, उसका शरीर कृश और शुष्क प्रतीत होता है, परन्तु उसकी आत्मा अत्यन्त बलिष्ठ होती है। महारानी! तुम चिन्ता न करो। तपस्वी को कोई भी शत्रु चाहे वह देव हो, मनुष्य हो या तिर्यञ्च हो, दुखी नही कर सकता। जो मंत्र को जानता होगा, वही तो साँप को खिलाएगा! हर एक साँप को खिलाने का साहस नही कर सकता। मुझे अपनी शक्ति का भरोसा न होता तो इस आसन पर वैठता ही क्यों?

मुनि की वात सुनकर रुक्मिणी ने हाथ जोड कर कहा—स्वामिन्! मेरा अपराध क्षमा कीजिए। आप गुणवान है महान् तपस्वी है, आपकी क्षमा और चित्तसमाधि अनुपम है। किन्तु—

मुनि—हाँ हाँ, रुको मत। जो कहना हो निःसकोच भाव से कहो। कोई भी वचन सुनकर मै अप्रसन्न नही होता।

रुक्मिणी—मै यह जानने के लिए उत्सुक हूँ कि इस बाल्यावस्था मे आप साधु क्यों वने है?

रुक्मिणी के इस प्रश्न के उत्तर मे मुनि उसे आश्चर्य मे डालते हुए वोले—श्राविका! सुनो मेरे पिता पृथ्वीपति राजा है। उनका राज्य इतना विशाल है कि इस काल मे उसकी बराबरी दूसरा कोई राज्य नही कर सकता। मेरी माता तो यहीं मौजूद समझो। मै अपने पिताजी की स्वर्गोपम राजधानी मे जन्मा हूँ। जन्म लेते ही मै वैरागी वन गया। माता-पिता

से अलग हो गया। मैंने आज तक अपने जनक का मुख नही देखा। हृदय मे भावना जागी और मैने स्वयं दीक्षा ले ली। आज सोलह वर्ष का पारणा करने के लिए यहाँ आया हूँ।

रुक्मिणी-आश्चर्य है महाराज ! वीतराग देव ने उत्कृष्ट से उत्कृष्ट वर्षी तप वतलाया है ! सोलह वर्ष का तप तो आज आपके मुख से सुन रही हूँ।

मुनि—अपने मुँह से अपनी वड़ाई करना शोभा नही देता। किन्तु सत्य समझो कि जन्म लेने के पश्चात् शैशव अवस्था में भी मैने अपनी माता का दूध नही पिया है। मगर इस समय अधिक बाते करना योग्य नही है। मै बहुत भूखा हूँ। मैने सुना है कि आप सच्ची श्राविका है। जगह-जगह आपकी प्रशंसा होती है। आपके अन्तःकरण मे और गुरू, देव, धर्म के प्रति गहरा अनुराग है। आप मधुर भाषिणी है। सत्यपरायणा है। पाप से डरती है। गुणों की खान है। आपके दिल मे वहुत दया और लज्जा है। आप समभाववती और समदर्शिनी है। आपके स्वभाव मे क्षुद्रता नही है। आप गुणग्राहिणी है और गुणवानो की सेवा भक्ति म सदैव परायण रहती है। माता ! आप दृढ धर्मी, प्रियधर्मी· धर्मधुरन्धर, धर्मात्मा है, आपके उभय कुल विख्यात है। शास्त्रों की ज्ञात्री, नमर्ना, खमनी और संत मनगमनी है। आप दुसरोंका अहित नही चाहती। साधर्मी की तन और धन से सेवा करती है। साधु-साध्वी को पुत्रवत् स्नेह के साथ आहार आदि का दान करती है। दान दिये विना भोजन न करने की आपकी प्रतीज्ञा है।

आपके यह और इसी प्रकार के अन्य गुण सुन कर, मार्ग मे आये अनेक ग्रामो को छोड़कर सोलह वर्षो के तप का पारणा करने के लिए यहाँ आया हूँ। आपके प्रशस्त गुणों को सुनकर आपके प्रति मेरा धर्मानुराग जागा। पर श्राविकाजी! यहां आकर तो मै कुछ और ही देख रहा हूँ। न तो आपने सुख-साता ही पूछी और न आहार लेने के ही लिए कहा। सुख से बिठलाया भी नही! मगर इसमे आपका दोष नही, मेरे अन्तराय कर्म का ही यह दोष है।

रूक्मिणी हाथ जोड़कर, लज्जित भाव से कहने लगी—पूज्यवर! मेरी स्खलतना के लिए क्षमा कीजिए। आज मेरा चित्त स्वस्थ नही है। मै गम्भीर सोच-विचार मे पड़ी हूँ। खाना पीना भी भूल गई हूँ। एक बहुत बड़ी चिन्ता ने मुझे चक्कर मे डाल रक्खा है।

मुनि——तीन खण्ड के स्वामी आपके पति है, यादवो जैसा प्रतिष्ठित परिवार मिला है, आप समस्त परिवार मे सन्माननीय हो, सौभाग्यशालिनी हो, फिर ऐसी कौन सी चिन्ता आपको व्याकुल बना रही है कि जिससे खाना पीना भी भूल गई हो और अतिथि-सत्कार करने की भी सुध नही रही है।

रूक्मिणी का हृदय अधीर हो उठा। उसका गला भर आया। विषाद की गहरी रेखाएँ उसके चेहरे पर चमक उठी। गद्‌गद् स्वर से वह कहने लगी—स्वामिन्! यह मेरे चिर-बिछड़े पुत्र के आगमन की बेला है। जिनेश्वर देव ने उसके आगमन पर जिन चिन्हो का प्रकट होना बतलाया था, वे प्रकट हो चुके

है। सूखे वृक्षों मे फल लग गये हैं, गूंगे बोलने लगे है, अंधों को नेत्र प्राप्त हो गये है और बहिरे कानो से सुनने लगे है। कोकिला, मयूर और पपैया अत्यन्त उल्लास के साथ कर्णमधुर ध्वनि का उच्चारण कर रहे है, बिना ऋतु के पुष्पो से वाटिकाओ ने मनोहर रुप धारण किया है। भ्रमर गुंजारव कर रहे है। यही सब चिन्ह तो उसके आने के हैं। परन्तु वह मेरा प्राणप्रिय पुत्र कही दृष्टि गोचर नही हो रहा है! यह चिन्ह प्रकट होकर मेरे अन्तकरण को और अधिक व्यथित कर रहे है। मै उसकी राह देखती-देखती थक गई हूं। निराशा के अन्धकार मे डूबी जा रही हूं। समग्र सृष्टि आल्हाद मे मग्न है और मै विषाद मे डूबी जा रही हूं। मेरा लाल न जाने कहाँ, किस स्थिति मे होगा! उसके विरह मे मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा है। आशा ही आशा पर यह सोलह वर्ष जाती रही, परन्तु आज आशा भी निराशामे परिणत हो रही है। जीवन का एक मात्र यह सूत्र भी टूटा जा रहा है। कौन जाने कब मेरा लाल आएगा और मेरे सन्तप्त प्राणों को शीतलता प्रदान करेगा!

मुनि—जिनेन्द्र भगवान् के वचन मे अणुमात्र भी संशय नही होना चाहिए। वीतराग और सर्वज्ञ देव कदापि अन्यथा भाषण नही करते। कहा है—

नान्यथावादिनो जिनाः।

सूर्य पूर्व के बदले पश्चिम मे उदय होने लगे, चन्द्रमा संताप पहुंचाने लगे और सूर्य अन्धकार का विस्तार करने लगे, तब भी जिन वचन असत्य नही हो सकते। श्राविकाजी! उतावल मत करो। घड़ी प्रहर प्रतीक्षा करो। आपका पुत्र आ ही चुका

समझो। सन्तोष धारण करो। सन्तोष से ही सुख की प्राप्ति होती है।

सन्तोषामृततृप्तानां, यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥

सन्तोष परम अमृत है। जिनका चित्त सन्तोष के अमृत से तृप्त हो गया है, उन्हें अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है। धन के लोभी और इधर उधर भटकते फिरने वाले लोग सुख नही पा सकते। सच्चा सुख सन्तोष मे ही है।

यद्यपि माता और पुत्र का नयनो एवं वचनों से मिलाप हो चुका था, किन्तु तन और मन से वे नही मिले थे। अतएव रूक्मिणी कहने लगी——मुनिवर! आप सांसारिक मोह ममता पर विजय प्राप्त कर चुके है। आप विरागी है। मगर मुझ जैसी मोहमयी को धीरज कैसे रह सकता है? फिर मेरे समक्ष तो एक बड़ी ही विषम समस्या उपस्थित है। मेरा लाल अभी-अभी नही आता तो मेरी इज्जत मिट्टी में मिलने को तैयार है।

मुनि——आश्चर्य है! तुम अनोखी हो और तुम्हारा पुत्र भी अनोखा ही जान पड़ता है। वह छोटा-सा बालक किस प्रकार तुम्हारी इज्जत बचा लेगा? और तुम्हारी इज्जत को खतरा क्या है?

मुनि के इस प्रश्न को सुनकर रूक्मिणी ने समग्र अतीतकालिन वृत्तान्त कह सुनाया। किस प्रकार सौतों मे शर्त

हुई और किस प्रकार सौत-सुत के विवाह की तैयारी हो रही है और उसे अपना सिर मुंडवाना होगा आदि सब बतलाया।

: २ :

मुनि कौतुक करके अपनी माता को कभी खिजाने और कभी रिझाने लगे। वह अपनी माता की व्याकुलता का कारण सुनकर मंद मुस्कान के साथ बोले—आपने भी भली चिन्ता की बालों की! बालों मे क्या धरा है—वे तो कट कर फिर उग आएँगे। कटने से तो सवाए बढ़ जाते है! आप तो पुण्यवती श्राविका है। आपको विवेक से काम लेना चाहिए। प्राण सकुशल है तो सभी कुशल है और प्राणों की हानि सर्वस्व की हानि है! बालों की चिन्ता तो तुच्छ चिन्ता है! उसे छोड़ो, हमारी बात मानो।

रुक्मिणी को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। वह बोली—स्वामिन्! आप यह क्या कह रहे है! मस्तक के केश सौभाग्यवती रमणी का सब से बड़ा शृंगार है, सब से बडा सौभाग्य का चिन्ह है। और फिर यहाँ तो लज्जा एवं प्रतिष्ठा का भी प्रश्न है। उत्तम जन अपनी लज्जा की रक्षा के लिए प्राणों का उत्सर्ग कर देना भी साधारण बात समझते है। लज्जा चली जाने पर फिर क्या शेष रह जाता है?

रुक्मिणी ने फिर जरा रुक कर कहा—स्वामिन्! संसार-व्यवहार की बाते आप जैसे त्यागी वैरागी सन्त से पूछना योग्य

नही, मगर मै तो मोहान्ध हो रही हूँ। मुझ से विना पूछे रहा नही जाता। आपको विदित हो तो अनुग्रह करके बतलाइए कि मेरा जीवन-धन बेटा मुझ से कब मिलेगा ?

मुनि तो कौतुक पर उतारू थे। बोले—श्राविके! रीते हाथों प्रश्न पूछना उचित नही। ऐसा करने से प्रश्न निष्फल हो जाता है। अतएव पहले कुछ भेंट सामने रक्खो। फिर आपके प्रश्न का उत्तर दूंगा।

रुक्मिणी—आप जो कहे वही आपकी सेवा मे उपस्थित कर दूं। मेरे यहाँ किसी वस्तु की कमी नही है।

मुनि—मुझे तो बस, एक ही चीज की आवश्यकता है—प्रासुक आहार की। बड़ी भूख लग रही है। आहार ले आओ। इसके शिवाय मुझे धन दौलत, फल, फूल आदि की कामना नही है। यह सब वस्तुएँ साधु के लिए अकल्पनीय (अग्राह्य) है। आप तो स्वयं सब समझती है फिर पूछने की क्या आवश्यकता है? अच्छा, अब विलम्ब न करो। आहार लाकर जल्दी पारणा कराओ।

रुक्मिणी मुनि के लिए आहार लाने घर मे घुसी। मगर उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि भोजन के भण्डार मे कही कुछ भी नजर नही आया। प्रद्युम्नकुमार ने माता को खिझाने के लिए समस्त भोजन, विद्या के प्रभाव से अदृश्य कर दिया था। सिर्फ श्रीकृष्णजी के खाने के केसरिया मोदक ही दिखाई दे रहे थे। रुक्मिणी चक्कर मे पड़ गई। कभी इस बरतन को खोल कर देखती और कभी उस बरतन को! क्रम से उसने सभी

भोजन के पात्र खोल-खोल कर देख डाले, मगर कही कण भी नजर न आया ! रुक्मिणी बुरी तरह घबरा उठी। उसे अनिष्ट की आशंका होने लगी। सोचने लगी—मुनि अपने मन मे क्या सोचेंगे ! श्रीहरि की पटरानी के घर मे चार कौर खाना भी उपलब्ध नही है ! रुक्मिणी लज्जा की मारी जमीन मे गड़ी जा रही थी।

यह अवस्था देखकर मुनिकुमार ने कहा—श्राविके ! घबराने की कोई बात नही है। धीरज रखकर अच्छी तरह देखो। जो कुछ भी सूझती वस्तु खाने योग्य हो, वही लाकर मुझे दे दो।

रुक्मिणी सोच-विचार मे पड़ गई। केसरिया मोदक अत्यन्त गरिष्ठ है। इन्हे तो वासुदेवजी ही पचा सकते है। इन तपस्वी को दूं तो कैसे पचेंगे ? इनके लिए तो यह लाभकर होने के वदले हानिकारक ही साबित होगे !

फिर सोचने लगी—मगर इन मोदकों के सिवाय और कुछ भी तो नही दिखाई देता ! कैसे कहूँ कि मेरे यहां आपके ग्रहण करने योग्य कुछ भी नही है ! आखिर मुनि क्या सोचेंगे ?

अन्त मे जी कड़ा करके रुक्मिणी एक मोदक उठा लाई और मुनि के सामने उपस्थित हुई।

मुनि-कुमार ने एक मोदक देखकर कहा-अहो पुण्य-शालिनी! यह क्या कर रही हो ? आश्चर्य है कि वड़े घर की वेटी और वड़े घर की वधू होकर भी तुम इतनी कृपण हो ! वाह पटरानीजी ! एक साधु को पारणा कराने मे भी इतनी कंजूसी करती हो ?

रुक्मिणी लजा कर बोली—मुनिराज ! यह मोदक अत्यन्त दुष्पच है। आप पूरे एक मोदक को भी नही पचा सकेगे। अतएव अपनी क्षुधा को शान्त करने के लिए इसमे से चौथाई हिस्सा खाइए। इसे बलशाली वासुदेवजी ही पचा पाते है और वे भी एक से अधिक नही खाते। अधिक खाने से अनेक प्रकार की हानियां हो सकती है। आपकी बाल्यावस्था है और फिर तपस्या का शरीर है। डरती हूँ आपके शरीर मे कोई व्याधि न हो जाय या मै मुनिहत्या के पाप की भागिनी न बन जाऊँ! इसी डर से मै एक ही मोदक लाई हूँ। इसका कारण कृपणता नही है। मोदक मुझे आपसे अधिक प्रिय नही हैं।

मुनिकुमार—श्राविकाजी ! आप लेश मात्र भय न करो। जितने मोदक आपके पास हो, सब मुझे बहरा दो। तपोलब्धि के प्रभाव से मै सब पचा सकता हूँ। मुझे किंचित् भी पीड़ा नही होगी। तप का प्रभाव अत्यन्त प्रबल होता है। उसके प्रभाव से हलाहल विष भी भस्म हो जाता है। तप के प्रभाव के आगे यह मोदक तो नगण्य है।

इच्छा न होने पर भी रुक्मिणि इन्कार न कर सकी वह दुविधा मे पड़ गई। सन्त के अनिष्ट होने का भय और इन्कार करने की लज्जा ने उसे किंकर्त्तव्यमूढ़ बना दिया। फिर भी डरते-डरते उसने सभी केसरीया मोदक लाकर मुनि कुमार को दान कर दिये।

मुनि कुमार उन्हे खाकर दूध के तरह पचा गये। तत्काल डकार आ गई। यह देखकर रुक्मिणी के आश्चर्य का पार न

रहा। वह तप के प्रभाव को प्रत्यक्ष देखकर उल्लसित और चकित हुई। सोचने लगी—अतीव दुष्पच केसरिया मोदक क्षण भर मे ही इन्होने पचा लिये !

मुनिकुमार मुस्करा कर बोले—धन्यवाद श्राविके! जीवन मे पहली बार आज तृप्ति मिली !

: ३ :

शर्तपूर्त्ति की मांग

अब जरा भोली भामा की ओर ध्यान दीजिए। सत्यभामा ने अलौकिक लावण्य प्राप्त करने और उसके द्वारा सौतोंका का मान मर्दन करने के विचार से, अत्यन्त श्रद्धापूर्वक एक सौ आठ वार मन्त्र का जाप किया। जाप के पश्चात् उसने दर्पण मे अपना मुख देखा। आंखे गड़ा-गड़ा कर और ध्यान लगाकर देखने पर भी रूप मे कुछ परिवर्तन दिखाई न दिया। तव वह फिर मन्त्र का जाप करने लगी। वह मुख से मन्त्र का जाप कर रही थी और आँखो से विप्र-कुमार की वाट जोह रही थी। मगर न रूप पलटा और न विप्र-कुमार ही आता दिखाई दिया। तव उसे किसी षडयन्त्र की आशंका हुई! वह सोचने लगी—

मेरे साथ किसी ने क्रूरतापूर्ण छल किया जान पड़ता है ! इस प्रकार का विचार उत्पन्न होते ही उसकी छाती धड़कने लगी। पश्चाताप, चिन्ता और शोक से वह विव्हल हो गई।

सत्यभामा को काटो तो खून नही ! वह सोचने लगी— हाय ! मै किसके धोके मे आ गई ! चौवेजी छव्वे वनने चले और दुवे ही रह गये! मै नया रूप प्राप्त करने चली थी, मगर अपना निजी रूप भी गँवा बैठी। सच है—'असन्तोष समस्त आपत्तियों का मूल है !' अविवेक से जो अनर्थ न हो जाय वही थोड़ा है ! यह तो वही हुआ कि विल्ली दर्दुर को पकड़ने कूप के किनारे गई तो दर्दुर तो हाथ नही लगा किंतु वह स्वयं कूप मे जा गिरी !

इस प्रकार विचार कर भामा घोर पश्चात्ताप करने लगी। वह मुंह ढँक कर रोने लगी—खूव फूट-फूट कर रोई। कभी मस्तक और कभी छाती पीटने लगी। मगर अब क्या हो सकता था।

'यदतीतमतीतमेव तत ।'

जो हो चुका सो हो चुका। लाख प्रयत्न करने पर भी वह पलट नही सकता। इसीलिए कहा गया है कि मनुष्य को निरन्तर सावधान होना चाहिए और गहरा सोच-विचार किये बिना कोई कदम नही वढ़ाना चाहिए। जो बिना विचारे काम करते है, वे बादमे रोते हैं और जगत् देख देख कर हँसता है। कहा भी है—

विना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय।
काम बिगारे आपनो, जग मे होत हँसाय ॥

सत्यभामा ने ईर्षा-द्वेष से प्रेरित होकर जो विचारहीन कृत्य कर डाला था, तत्काल उसे उसका फल मिल गया। उसे असीम व्यथा होने लगी। उसका गला फाड़-फाड़ कर रोना सुनकर दासियाँ दौड़ी आई। फिर धीरे-धीरे सारा परिवार एकत्र हो गया। भानुकुमार को समाचार मिला तो वह भी लँगड़ाता हुआ भाग आया। अभी तक सत्यभामा मुँह ढँक कर रो रही थी। भानुकुमार ने आकर उसका हाथ पकड़ा और उसका मुंह उघाड़ कर देखा तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास ही न हुआ। मुंडित मस्तक और श्याम मुख देखकर वह चकित रह गया! उसकी समझ मे न आया कि वह अपनी माता को देख रहा है अथवा काली माई को!

आखिर माता को तरह-तरह से समझा कर किसी प्रकार चुप किया। फिर हाथ जोडकर इस स्थिति का कारण पूछा। वह बोला—माताजी, मेरा खून उवल रहा है। वतलाइए, किसने यह दृष्टता की है? जिसने आपके बाल लिये है और मुख काला किया है, उसे अपने प्राणों की चिन्ता नही जान पड़ती। कौन मेरी माता का अपमान करके जीवित रह सकता है?

भानुकुमार का चेहरा भयानक क्रोध के कारण तमतमा उठा। उसके नेत्रों से आग की चिनगारियाँ निकलने लगी। होठ फड़कने लगे। उसे देख ऐसा प्रतित होने लगा कि आज भानु अपनी प्रखर क्रोधाग्नि वरसा कर प्रलय मचा देगे!

भारतवर्ष मे अत्यन्त प्राचीन काल से 'मातृदेवो भव' का संस्कार चला आ रहा है। यहाँ माता को देवता के समान

पूजनीय माना जाता है। कौन ऐसा सपूत है जो अपनी आँखों से माता का घोर अपमान होता देख सके! फिर भानुकुमार तो समर्थ और वलवान् था। उसे अपनी माता की यह स्थिति असह्य हो गई। वह कहने लगा—माताजी! शीघ्र उसका नाम वतलाइए, जिसने यमराज को कुपित किया है! आपके मस्तक का एक-एक वाल उसके लिए भीपण विषधर बनकर वदला लेगा!

मगर सत्यभामा क्या उत्तर देती? किसका नाम वतलाती। अन्त मे कहा—प्यारे पुत्र! कोई धूर्त वाल-विप्र के रूप मे यहां आया था। यह उसी की करतूत है। उसी ने मेरे साथ छल किया है!

यह सुनकर भानुकुमार जल—भुन कर रह गया! उसे अपना क्रोध उतारने के लिए कोई न दिखाई दिया। अन्त मे शान्त होकर वह चुप रह गया। दासियों ने क्षार द्रव्य मसल-मसल कर मुख की कालिमा धोई। उत्तम वस्त्र और आभूषण पहनाये। मगर केश तो जल्दी आने वाले नही थे! सत्यभामा के हृदय मे मुंडित मस्तक शल्य की भांति चुभने लगा।

सत्यभामा की हालत देखकर अनेक लोग मन ही मन हँसने लगे। मगर उसके रौब का खयाल करके किसी ने अपनी हँसी प्रकट न होने दी।

सत्यभामा को इस षड्यन्त्र मे रुक्मिणी का हाथ दिखाई देने लगा। वह कहने लगी—रुक्मिणी वड़ी ही धूर्त है, यह सब

उसी की करतूत है। उसने अभिमान मे आकर सोती सिहनी को जगाया है, सर्पिणी को छेडा है। ऐसा करके क्या वह सकुशल रह लेगी ? मै उसका मस्तक न मुंड़वा लूँ तो मेरा नाम सत्यभामा नही !

सत्यभामा ने उसी समय अपनी दासियों को वुलवा कर आदेश दिया—तुम सब रुक्मिणी के पास जाओ और उसके मस्तक के बाल कटवा लाओ। मेरे लड़के का विवाह पहले हो रहा है। वह शर्त मे हार गई है।

वहुत सी दासियाँ गीत गाती हुई, उस्तरा और पात्र लेकर रुक्मिणी के महल की ओर रवाना हुई।

कुछ दासियाँ, जो अधिक समझदार थी, आपस मे कहने लगी—रुक्मिणी देवी वड़ी ही भद्रशीला है। उनके साथ ऐसा सलूक करना उचित नही है।

दूसरी बोली—इन बड़ी वड़ी रानियों मे भी कितनी ईर्षा है ? ऐसा वड़प्पन भी किस काम का ? इनसे तो हम ही भली, जो आनन्दपूर्वक रूखा-सूखा खाकर मजे मे सोती है। इन्हे कितनी खटपट करनी पड़ती है ! रात-दिन ईर्षा की आग मे जलती है ! ऐसे वड़प्पन मे सुख-शान्ति कहाँ ?

तीसरी ने कहा—एक सुशीला महिला का अपमान करने के लिए हमको भी चलना पड़ रहा है। यह दास वृत्ति कितनी गर्हित है ? किसी ने कहा है—

सेवा श्ववृत्तियैरुक्ता, न तैः सम्यगुदाहृतम् ।
स्वच्छंदचारी कुत्रश्वा, विक्रीतासु क्व सेवकः ॥

जिन्होने दास की आजीविका को कुत्ते की आजीविका बतलाया है, उन्होने भी दास की हीनता का ठीक-ठीक वर्णन नही कर पाया। दास और कुत्ते मे बड़ा अन्तर है। कहाँ स्वच्छंद विचरण करने वाला कुत्ता और कहाँ अपने प्राणों को भी बेच डालने वाला दास! बेचारा दास तो कुत्ते की भी बराबरी नही कर सकता।

चौथी बोली—इस पेट के लिए कितना पापाचरण करना पड़ता है! रूक्मिणी देवी जैसी सती-साध्वी रमणी के केश लाने जाना क्या कम पाप का विषय है! मगर क्या किया जाय? स्वामिनी का आदेश भी तो नही टाला जा सकता। मन मार कर भी चलना पड़ता है! यह भी दुर्भाग्य का एक कुफल है!

रूक्मिणी ने दासियों के उस समूह को देखा और चटपट पहचान लिया। वह सोचने लगी—यह सत्यभामा की ही दासियाँ है! किस प्रयोजन से आ रही है, यह समझते विलम्ब नहीं लगा। उसके हृदय मे भयानक शूल उत्पन्न हो गया। नेत्रों से अविरल अश्रुओं की वर्षा होने लगी। वह सोचने लगी—जो सोच रही थी वह आगे आया! हाय, आज मेरी सुन्दरता ही नही, प्रतिष्ठा भी गई!

रूक्मिणी की स्थिति मे सहसा जो परिवर्तन हो गया था, उसे देख मुनि कुमार ने पूछा—श्राविके! अचानक चिन्ताग्रस्त हो जाने का क्या कारण है? क्यों रूदन करने लगी? जो हो स्पष्ट बतलाओ।

रूक्मिणी का अन्तःकरण दारूण वेदना से परिपूर्ण हो गया। वह बोली—सौत की शर्त का किस्सा आपको सुना चुकी हूँ। शर्त मे मै पराजित हो गई हूँ और अब मेरा सर्वस्व जा रहा है। लज्जा ही कुलीन नारियों का सर्वस्व है। जिसकी लज्जा रही उसका सब कुछ रहा और जिसकी लाज गई उसका सर्वस्व चला गया। सत्यभामा की दासियाँ मेरी इज्जत लेने आ पहुँची है। स्वामिन् ! यह महान संकट मेरे ऊपर आ पड़ा है। इसका कोई प्रतिकार भी तो नही दिखाई देता ! नारदजी का आश्वासन इस अवसर पर मिथ्या सिद्ध हुआ ! मेरा प्राणप्रिय पुत्र उचित अवसर पर नही आया ! हाय, न जाने किस जन्म के पाप का उदय आया है।

मुनिकुमार—श्राविके ! आर्त्तध्यान करने से कुछ भी लाभ नही होता। आर्त्तध्यान किसी भी रोग की दवा नही है। अलबत्ता हानिकारक तो है ही। वह नवीन कर्म-बन्धन का कारण है। मनुष्य को विपत्ति एवं संकट के समय धैर्य धारण करना चाहिए। धैर्य से भीषण विपत्ति भी हल्की मालुम होती है। और घबराहट से हल्की विपत्ति भी भारी बन जाती है। प्रत्येक परिस्थिति मे अपने मतिष्क को, अपनी बुद्धि को सजग और सावधान रखने से हितकर मार्ग सूझ सकता है। बुद्धि को विह्वल बना डालने से तो कुछ हासिल नही होता !

रुक्मिणी—स्वामिन् ! आपका कथन सत्य है, परन्तु ऐसे अवसर पर धैर्य कैसे रह सकता है ?

मुनिकुमार—नही रह सकता तो मेरी बात सुनो। तुम

घर मे छिप कर बैठ जाओ। मै देखता हूँ, तुम्हारे केश लेने की हिम्मत किसमे है ! तुमने मेरी सेवा की है । इस समय तुम मुझे अपना पुत्र ही समझ लो। मै अपनी करामात दिखला कर तुम्हारी प्रतिष्ठा की रक्षा करूँगा और तुम्हारे शत्रुओं का मान भंग करूँगा। ऐसा करू तभी मुझे सच्चा साधु समझना !

कुमार ने इस प्रकार रुक्मिणी को समझा कर भीतर छिपा दिया और आप विद्या के प्रभाव से रुक्मिणी का रूप धारण करके बैठ गया।

दासियों ने महल मे प्रवेश किया तो रुक्मिणी-रूपधारिणीने सामने जाकर उनका स्वागत किया। कहा—आइए, पधारिये। आपकी स्वामिनी सकुशल तो है ?

दासियां इस सौजन्य को देखकर लजा गई। उनकी आँखें नीची हो गई। प्रधान दासी बोली—जी हां, सब कुशल मंगल ही समझिए।

दासियाँ को यथोचित आसन पर बिठला कर उसने पूछा कहिए किस प्रयोजन से आज देवी ने आपको भेजा है ?

प्रधान दासी की आँखे गीली हो गई। वह अत्यन्त विषाद के साथ बोली---माताजी ! क्षमा कीजिए। हम दासी है और स्वामी की आज्ञा का पालन करना ही हमारा प्रधान कर्तव्य है। कुवचन कहने को हमारी जीभ नही चलती, हृदय मे घोर पीड़ा होती है, मगर विवशता है ! इस पापी पेट की पूर्ति के लिए क्या—क्या नहीं करना पड़ता !

रुक्मिणी रूपधारिणी–ठीक है । मै तुम्हारी स्थिति को समझती हूँ। स्वामिनी का जो सन्देश हो, निःसंकोच भाव से कहो ।

दासी फिर भी कहने का साहस न कर सकी। आखिर नीची निगाह करके उसे कहना पड़ा–मेरी स्वामिनी ने शर्त को पूरा कराने का आदेश दिया है। महारानीजी ! मेरा अपराध क्षमा हो ! मेरा कुछ वश नही चलता । उनका आदेश आपको सुना दिया है। आप जो आदेश देगी वह उनके पास पहुँचा दूँगी। हमारे लिए तो आप दोनो समान है। न एक ज्यादा, न दूसरी कम ।

—✕✕✕—

: ४ :
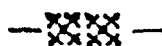
मुंडने वाली मूंड गई

दासी की वात सुनकर रुक्मिणीरूप ने कहा–वाई, तुम विषाद और पश्चात्ताप मत करो। मै हार गई और सत्यभामाजी जीत गई है। मै अभागिनी हूँ। मेरा लाल नही आया । वे भाग्यशालिनी है। उनकी अभीलाषा पूरी हो।

इतना कहकर रुक्मिणी रूप ने अपना मस्तक उघाड़ दिया कहा–लो, सत्यभामाजी की आज्ञा का पालन करो।

रुक्मिणी का यह वचन सुन दासियों को अमित आश्चर्य हुआ। वहुत-सी दासियों ने ऊपर से उदासीनता और खेद का भाव प्रकट किया, मगर भीतर ही भीतर हर्ष का अनुभव किया। उन्हे आशा नही थी कि सहज ही कार्य सिद्ध हो जायेगा। मगर रूक्मिणी ने तनिक भी विरोध नही किया, कुछ वहाना भी नही किया और अपने केश देने को तैयार हो गई! यही आश्चर्य का कारण था !

रुक्मिणी का मस्तक मूंडने की तैयारी हुई। सामने जरीदार मखमल का वस्त्र विछाया गया। रत्न की डंडी वाला उस्तरा घिस कर तेज किया जाने लगा। सोने की कटोरी मे गंगाजल एक ओर भर लिया। नाइन सिर मूंडने को रुक्मिणी के समक्ष बैठ गई।

सिर मूंडना आरम्भ करने से पहले कुंकुम, केसर, दही और अक्षत से मस्तक की पूजा की गई। दम्पती का किसी प्रकार अनिष्ट न हो, अमंगल न हो, इस उद्देश्य से यह मंगल-विधि की गई। यह सव मंगलविधि समाप्त हो जाने के पश्चात् नाइन ने मस्तक पर उस्तरा चलाना आरम्भ किया।

उसी समय प्रद्युम्नकुमार ने अपनी विद्या का स्मरण किया। विद्या ने आकर सत्यभामा की समस्त दासियों को भ्रम-ग्रस्त वना दिया। नाइन समझती थी, मै रुक्मिणी का सिर मूंड रही हूँ, मगर ज्यों-ज्यों वह उस्तरा चलाती थी, सव दासियों का सिर मूंड़ता जाता था। इतना ही नही, विद्या की करामात से दासियों के कान, नाक आदि भी कटते जा रहे थे। मगर किसी को इस करामात का पता नही चल रहा था।

इस प्रकार मणिमय भाजन मे रुक्मिणी के केश रखकर दासियाँ वहाँ से प्रसन्नता पूर्वक सत्यभामा के महल की ओर रवाना हुई। रुक्मिणी ने चलते समय भी उनका यथायोग्य सत्कार किया। इससे दासियाँ अत्यन्त प्रभावित हुई और हर्षित भाव से रुक्मिणी की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगी।

एक दासी बोली—धन्य है, रुक्मिणी देवी जैसी नारी धरती की पीठ पर दूसरी मिलना मुश्किल है ! दूसरी कोई होती तो क्या स्वेच्छा पूर्वक अपने सिर के बाल दे देती ? कदापि नही।

दूसरी ने कहा—मस्तक के केश सौभाग्यवती महिलाओं के लिए प्राणों से भी अधिक मूल्यवान होते है। समस्त शृंगारों मे केशो का शृगार मुख्य है। केशो के विना कोई भी शृंगार शोभा नही देता। फिर भी देवी ने तनिक भी आनाकानी किये विना उन्हे दे दिया !

तीसरी—यह बाल क्या, सर्वस्व है ! देवी ने अपने बाल क्या दिये, अपना सर्वस्व दे दिया है !

चौथी—जिस मस्त भावना के साथ उन्होने अपने केश दिये है, उसे देखकर मुझे तो भय लगता है। जान पड़ता है, इसका परिणाम भविष्य मे बड़ा भीषण होगा।

पांचवी—मगर देखो, रुक्मिणी देवी क्षमा, शान्ति और उदारता की साक्षात् प्रतिमा है ! गुणों की खान है। उनका रूप अप्सरा के समान है और वाणी ऐसी मधुर कि कोयल भी लज्जित हो जाय !

छठी–स्वभाव की मृदुलता नवनीत से क्या कम है ? वास्तव मे वे बहुत सयानी है। कोई और होती तो रोती-चीखती और सहस्त्रो गालियों से हमारी सात पीढ़ियों को कोसती। मगर रुक्मिणी देवी की यह उदारता है कि उन्होने हँसी-खुशी अपने बाल दे दिये और ऊपर से हमारा प्रेममय सत्कार भी किया !

सातवी–रुक्मिणी देवी इतनी गुणवती है, इसी कारण तो यदुनाथ उन पर मुग्ध है !

आठवी––उधर सत्यभामा को देखो ! उसकी वाणी मे जैसे विष मिला रहता है ! उसके मुख से निकलने वाले तीखे वाण श्रोताओं के कान मे होकर कलेजे मे विंध जाते है !

कुछ दासियाँ इस प्रकार वार्तालाप करती जा रही थी और कुछ गीत गाती चल रही थी। विविध वाद्यो की ध्वनि जनता का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट कर रही थी। वाद्य-ध्वनि सुन कर जो नर और नारी दासियों के उस झुण्ड की ओर देखते, वही चकित और विस्मित रह जाते थे। सब की सब दासियों के मस्तक क्यो मुंडे है ? लोग सोचते––क्या यह सब एक ही साथ विधवा हो गई है ? फिर इनकी तो नाक भी कटी है, कान भी कटे है ! यह सब क्या तमाशा है। न यह रो रही है, न उदास ही है! अपनी दुर्दशा पर इन्हें खेद नही है ! यह तो उल्टी हर्ष करती जा रही है !

इस अद्भुत व दृष्टपूर्व दृश्य को देखने के लिए नर-नारियों

के झुण्ड के झुण्ड इकट्ठे होने लगे। लोग हसने लगे और उनकी ओर उंगली उठा-उठा कर उन्हें बताने लगे। सारे बाजार मे चहल-पहल मच गई। हँसी के फौहारे छूटने लगे।

दासियाँ दर्शकों की हँसी और उंगली उठाना सुन-देख-कर सोचने लगी—हमारा सुन्दर रूप देख कर और मधुर स्वर मे गाना सुन कर भीड़ इकठ्ठी हो रही है! लोग हमारी प्रशंसा कर रहे है और प्रसन्न हो रहे है। जो दासी अपनी ओर उंगली उठी देखती, वह सोचती—मं सब से अधिक सुन्दर हूँ, इसी कारण मेरी ओर उंगली उठाई गई है!

इस प्रकार जनता का मनोरंजन करती हुई दासियां सत्यभामा के पास आ पहुँची। आते ही सत्यभामा ने पहला प्रश्न किया—केश ले आई?

प्रधान दासी ने केश-भाजन सत्यभामा के सामने रख दिया। फिर कहा—लीजिए, आपकी वस्तु आप सम्भालिए। भला महारानीजी की आज्ञा क्या कभी टल सकती है? आपकी आज्ञा का उल्लघन करने की शक्ति किसमे है? रुक्मिणी देवी ने विना किसी झिझक, संकोच और वहाने, अपने केश दे दिये है। उन्होने अपनी पराजय स्वीकार कर ली है।

सन्तोप की सांस लेकर सत्यभामा ने ज्यो ही केश-पात्र उघाड़ कर देखा तो उसके विस्मय का पार न रहा! पात्र खाली था। उसमे केश का नाम-निशान तक नही था! यह देख कर सत्यभामा एड़ी से चोटी तक जल उठी। उसके अंग-अंग मे भयानक क्रोध की ज्वालाएँ फूट पड़ी। सोचने लगी—

दासियों की इतनी धृष्टता कि मुझ से भी हँसी करती है? मेरे साथ यह हिमाकत! मेरी ही दासियाँ और मेरे साथ ही यह व्यवहार! यह अक्षम्य गुस्ताखी!

सत्यभामा ने गरजते हुए कहा—री निर्लज्ज दासियों! कहाँ है इसमे केश! जान पड़ता है, लोभ के वशीभूत होकर तुमने मेरे साथ धोका किया है! तुमने रुक्मिणी से घूंस ली है! तुम नमकहराम हो! जब तुमने उसकी प्रशंसा की, तभी मै समझ गई थी कि दाल मे काला है! अच्छा, तुम्हारी इस गुस्ताखी की ऐसी सजा दिलवाऊँगी कि तुम भी याद रक्खोगी! एक-एक की चमड़ी न उधड़वा ली तो मेरा नाम सत्यभामा नही! मगर आश्चर्य तो यह है कि तुम सब के मूंड मुंडे हुए है और नाक-कान भी कटे है! तुम्हारी यह दुर्दशा किसने की है? तुम्हे अपनी इस हालत का ख्याल भी नही है! सही-सही सारी बात क्यों नही बतला रही हो?

: ९ :

सत्यभामा की फरियाद
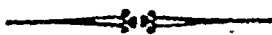
सत्यभामा की बात सुनकर दासियों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। सचमुच अभी तक उन्हे अपनी असली हालत का पता

ही नही था। सत्यभामा ने जब कहा तो प्रत्येक दासी ने अपने मस्तक, नाक और कानों पर हाथ फेरा। देखा, मस्तक के वाल गायब है, नाक भी नदारद है और कान भी सफाचट है!

अपनी यह दुरवस्था देख दासियों को कितनी वेदना हुई होगी, यह अनुमान करना कठिन नही। उनके दिलों मे अकस्मात् तीक्ष्ण शूल-सा चुभ गया। जैसे हजार बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारा हो, ऐसी वेदना उन्हे होने लगी। उनके दुःख और विस्मय का पार न था! उनकी समझ मे नही आता था कि यह सब क्या है? कैसा जादू है? यह दुर्दशा कब और कैसे हो गई?

दासियाँ वेहद लज्जित हुई। लज्जा के कारण वे अपने-अपने अंगों को ढँकने लगी और अपने-अपने घरो को रवाना होने लगी। उनकी हालत अजीव थी! किसी के मुंह से शब्द नहीं निकल रहा था! सब सहमी हुई, खोयी हुई-सी जान पड़ती थी।

दासियों को रवाना होने की तैयारी करते देख सत्यभामा बोली—अभी जाओ मत। यही बैठो। वतलाओ, यह दुर्दशा किसने की है? किसने तुम्हारे मस्तक मूंड़े? किसने तुम्हारी नाक काटी? किसने तुम्हारे कान काटे? निर्भय होकर वतलाओ!

दासियाँ वेचारी किसका नाम वतलाती? उन्हे तो अपनी दुर्गति का पता ही यहाँ आकर लगा था! अतएव दासियाँ बोली—महारानीजी! किसी को झूठ-मूठ वदनाम करने से

लाभ है? रुक्मिणी देवी तो बड़ी शान्त और शिष्ट है। उन्होने हमारे साथ सुन्दर सलूक किया है। एक भी कठोर शब्द का उच्चारण नही किया, बल्कि यथोचित सत्कार किया है! कौन जाने यह हालत कैसे हो गई ! यह किसी मनुष्य का काम नही है। नही तो क्या हमे पता न चलता ? यह तो कोई दैवी चमत्कार जान पड़ता है ! भगवान ही जाने, यह क्या गोरख-धन्धा है! हमारी समझ मे तो कुछ नही आता!

सत्यभामा के कोप का पारा और उंचा चढ़ गया। वह बोली—

दम्भी भवति विवेकी, प्रियवक्ता भवति धूर्तजनः।

दंभी जन ऊपर से बड़ी विवेकशीलता दिखलाते है और धूर्तो का सबसे बड़ा शस्त्र मीठा बोलना है! मीठी बाते करके ही वे दूसरो का कलेजा काटते हैं। तुम मुर्ख हो जो उसकी मीठी-मीठी बातों का शिकार हो गई। यह सब रुक्मिणी की ही धूर्तता है। उसे अपने किये का मजा न चखाया तो किया ही क्या ? अब देखती हूं उसे कितना घमण्ड है।

सेवक जब स्वामी का प्रतिनिधि बनकर किसी कार्य को करता है और उसका दूसरे के द्वारा अपमान किया जाता है, तो वह अपमान स्वामी का ही समझा जाता है, । यहां सत्यभामा के आदेश से, उसी की प्रतिनिधि के रूप मे दासियां रुक्मिणी के केश लेने गई थी। अतएव दासियों का अपमान सत्यभामा ने अपना ही अपमान समझा। इस अपमान से उसे अत्यन्त क्षोभ और मार्मिक पीड़ा हुई। वह सोचने लगी रुक्मिणी बड़ी

ही चालाक और धूर्त है। उसने गिरधारी को भी अपने चंगुल मे फांस रक्खा है। दोनों एक सरीखे मिल गये है।

आखिर सत्यभामा ने अपने प्रधान को बुलाकर दासियों को दिखला कर समग्र वृत्तान्त सुनाया। अन्त मे कहा—रुक्मिणी ने मेरी दासियों की यह दुर्दशा की है! हरि और हलधर की साक्षी से की हुई शर्त को भंग किया है। उसे अपने केश देने चाहिए थे सो तो दिये नही, उल्टा मेरा घोर अपमान किया है। इन दासियों का सिर मूंड लिया है और इनके अंग-अंग काट लिये हैं! उसने जनता के सामने मुझे हास्यास्पद वनाया है! इस दुस्साहस का रुक्मिणी को उचित दण्ड न दिया गया तो यादववंश मे अनीति फैल जायगी और इस वंश की मर्यादा लुप्त हो जायगी। तुम इन सव को सभा मे ले जाओ और हरि हलधर को दिखलाओ। उन्हे वतलाना कि आपकी कृपापात्री रुक्मिणी किस प्रकार यदुवंश को दिपा रही है!

प्रधान ने सत्यभामा के आदेशानुसार सव दासियों को सभा में ले जाकर खड़ा किया दासियों की कतार की कतार का एक ही सरीखा रूप देखकर सभाजनो को इतनी हँसी आई कि पेट म वल पड़ने लगे!

श्रीकृष्णजी ने गम्भीर होकर प्रधान से पूछा—यह दासियां किसकी है? और इनकी यह दुर्दशा किसने की है?

दासियों की लज्जा का पार न था। वे सव नीची गर्दन करके खडी थी। उन्हे ऐसा लगता था कि धरती फट पड़े और हम उसमे समा जाएँ तो अच्छा!

प्रधान ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया—नरनाथ! यह महारानी सत्यभामा की दासियाँ है। महारानी रुक्मिणी ने इनकी यह दुर्दशा की है। समुचित न्याय करने के लिये इन्हे आपके पास भेजा है।

श्रीकृष्ण को भी विनोद सूझा। वह बोले—ठीक तो है, जैसा स्वामी वैसा दास होना चाहिए था!

सत्यभामा ने दासियों को सभा मे भेज दिया था, मगर फिर उसने सोचा—कही हँसी-मजाक मे ही बात न टाल दी जाय! ऐसा हुआ तो मेरा जीना दूभर हो जायगा।

यह सोचकर सत्यभामा स्वयं सभा मे जा पहुँची। सभा मे जाकर उसने श्रीकृष्ण को हँसते देखा तो फिर उसके अंग अंग मे आग लग गई। वह एकदम क्षुब्ध होकर कहने लगी—मायावी गोपाल! यह सब तुम्हारी ही करतूत है। तुम्ही ने रुक्मिणी को सिर चढ़ाया है। उसका इतना हौसला न बढ़ाया होता तो क्या आज वह इतनी ढिठाई करने की हिम्मत कर सकती थी? उसने इन दासियों का नही, मेरा अपमान किया है। इनके नाक-कान नही काटे, मेरे नाक-कान काटे है। आप लोगों की साक्षी से हमारे, उसके बीच शर्त हुई थी। उस शर्त को भंग करना आप लोगों का भी तिरस्कार करना है! इन सब गुरुतर अपराधो का उसे योग्य दण्ड मिलना चाहिए।

सत्यभामा बिना रुके फिर कहने लगी—महारानी और पटरानी की हैसियत से नही, एक सामान्य प्रजाजन की हैसियत

से भी मै इस मामले मे न्याय चाहती हूँ। मुझे न्याय मिलना चाहिए। शर्त के अनुसार रुक्मिणी के सिर के बाल दिलवाइए और इस गुस्ताखी का दण्ड उसे दीजिए। अगर ऐसा न किया गया—मेरे प्रति अन्याय किया गया तो मै साफ-साफ बतलाए देती हूँ कि यदुवंश क्लेश, कलह और अशान्ति का घर बन जायगा !

श्रीकृष्ण, सत्यभामा द्वारा दी गई धमकी को सुनकर हँस पड़े ! बोले—सामान्य प्रजाजन की हैसियत से फरियाद कर रही हो और इस प्रकार की धमकी भी देती जा रही हो !

सत्यभामा की आखों से अंगारे निकल रहे थे। उसका चेहरा तमतमा रहा था और सारा शरीर काँप रहा था। वह आवेश मे बोली मै अच्छी तरह जानती हूँ तुम्हे ! यह तुम्हारी करतूत है ! तुम्हारी सलाह के बिना वह क्या इतना बड़ा दुस्साहस कर सकती थी ! परन्तु हलधरजी न्याय-प्रेमी है। मै उनसे फरियाद करती हूं।

इतना कहकर सत्यभामा ने बलरामजी की ओर अपना रुख करके कहा—महाराज ! आप न्यायनिष्ठ है, महान् पुरुष है। आपकी साक्षी से शर्त की गई थी। उसे पूर्ण कराइए और रुक्मिणी को दण्ड दिलवाइए। क्या इस दुर्व्यवहार को आप उचित समझते है ?

बलरामजी ने गम्भीर होकर कहा—कान्ह ! सत्यभामा को इस अवसर पर चिढ़ाना योग्य नही है। किसी भी स्त्री को माथे

चढ़ाना अच्छा नही। इससे अनेक अनर्थ और जगत् मे अपयश होता है।

कृष्ण—दादा, मै अपनी सौगंध खाकर कहता हूँ कि मुझे इस घटना के सम्बन्ध मे कुछ भी जानकारी नही है। सत्यभामा को मेरा हाथ होने का भ्रम कोरा भ्रम ही है। मेरी समझ मे नही आता कि अकेली रुक्मिणी किस तरह इतनी दासियों का मूंड़ मुंड़ सकती है और नाक-कान काट सकती है! यह सब अपनी दुर्दशा कराने के लिए चुपचाप वैठी रही होगी? सत्यभामा रुक्मिणी को दण्ड देने की माँग करती है, मगर निर्णय करने से पहले ही किसी को दण्ड कैसे दिया जा सकता है? अभियोग अभी लगाया जा रहा है। वह अभी सिद्ध हूआ नही है। उससे पहले ही दण्ड-विधान हो जाना चाहिए?

वलरामजी ने सत्यभामा को न्याय करने का आश्वासन दिया। वह बोले— अच्छा, तुम अपने महल मे जाओ। हम इस मामले की जाँच-पड़ताल करेंगे और अपराधी को योग्य दण्ड देंगे। यथा समय तुम्हारे पास सव समाचार पहुँच जाएँगे। तुम निश्चिन्त रहो।

सत्यभामा सन्तोष की सांस लेती हुई लौट गई।
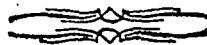
: ६ :

प्रद्युम्न का आत्म-प्रकाश

सत्यभामा की दासियों को विदा करके कुमार ने पहले वाला साधु का भेष फिर धारण कर लिया। वह शान्त और गम्भीर भाव से उसी सिंहासन पर आ बैठा।

रुक्मिणी ने छिपकर कुमार के सब कर्त्तव्य देख लिये थे। वह अत्यन्त आश्चर्य मे डूब गई। सोचने लगी—यह नये-नये रूप धारण करने वाला वास्तव मे कौन है? साधु तो यह हो नही सकता। इसके व्यवहार से स्पष्ट है कि यह साधु नही है। तो फिर कौन होगा? मेरा लाल ही तो नही है? विद्याधरों के साथ रहकर मन्त्र-कला मे कुशल हो गया होगा! अवश्य यह मेरा प्राणप्रिय पुत्र ही होना चाहिए। अन्यथा मेरे हृदय मे इतना वात्सल्य क्यों उमड रहा है? मेरे पयोधरों मे पय क्यों आ गया है! मुझे इसकी सूरत क्यों इतनी सुहावनी लग रही है। मेरे मन को यह क्यों इतना मीठा लग रहा है? इसके लक्षणों और व्यंजनों से प्रतीत होता है कि यह मेरे लाल के सिवाय और कोई नही हो सकता।

इस प्रकार की विचारधारा मे डूबी हुई रुक्मिणी टकटकी लगा कर कुमार के चेहरे की ओर देखने लगी।

रुक्मिणी की यह भावभंगी देखकर कुमार समझ गया कि माता ने मुझे पहचान लिया है। अब माता को सान्त्वना देने के लिए और इनके मनोरथ को सफल करने के लिए मुझे अपने असली रूप मे प्रकट हो जाना ही योग्य है।

इस प्रकार विचार करके प्रद्युम्नकुमार ने अपना मूलरूप धारण कर लिया। वह साक्षात् कामदेव के समान असाधारण रूप-लावण्य से सम्पन्न बन गया। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ, मानो मेघों मे से देदीप्यमान सूर्य प्रकट हुआ हो ! भव्य और सौम्य चेहरा, अंग-अंग मं अपूर्व सौन्दर्य और चमचमाता हुआ विशाल भाल ! प्रद्युम्न का यह रूप किसके चित्त को बलात् अपनी ओर आकर्षित न कर लेता ?

माता रुक्मिणी को अब लेश-मात्र-भी संशय नही रहा। प्रद्युम्न उसी समय माता के पुनीत चरणों मे आकर गिर पड़ा। माता ने उसे उठा कर अपनी छाती से लगा लिया और गाढ़ आलिंगन किया। उसका वात्सल्य उसके हृदय मे समाता नही था। रुक्मिणी का हृदय अतिशय गद्गद् हो रहा था, नेत्रों से हर्ष-जनित अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उस समय के रुक्मिणी के आन्तरिक आनन्द की थाह लेना सम्भव नही। उसे या तो केवली भगवान ही जान सकते थे अथवा स्वयं रुक्मिणी का अंत:करण। वात्सल्य-विव्हल रुक्मिणी वार-बार प्रद्युम्नकुमार के शरीर पर अपना कमल-कोमल कर फेरने लगी, बार-बार उसके मुख और सिर को चूमने लगी और अनिमेष नेत्रों से उसे अवलोकन करने लगी। अपरिसीम प्रेम के उन्माद मे निमग्न रुक्मिणी कहने लगी—अहा ! आज का दिन मेरे

घर दूध का मेह वरसा है! आज मेरे चिरकालीन मनोरथ सिद्ध हुए है! आज मेरे जीवन मे प्राण आया है! मेरा प्राण-प्रिय पुत्र मेरे नेत्रो के समक्ष प्रकट हुआ है!

रुक्मिणी आनन्द विभोर है! कहती हैं---लाल! इस सूरत को देखने के लिए आँखे अकुला रही थी, हृदय तड़प रहा था। मै तुझ पर अपने प्राण निछावर करती हूँ! प्यारे मोहन! तू ने भली सुध ली, तू ने मेरे हृदय को शीतल कर दिया!

वह फिर कहने लगी---अरी सहेलियो! तुम कहाँ हो! आओ, मेरे लाल को तो निहारो! इसकी यह सलोनी सूरत तो देखो! अरी, अपने घर इन्द्र आया है! कुवेर आया है, प्रत्यक्ष कामदेव आया है, मेरे कुल का उजियाला आया है! चन्दन बहुत शीतल होता है, चन्द्रमा उससे भी अधिक शीतल होता है, परन्तु मेरा लाल तो चन्द्रमा से भी अधिक शीतलतादायक है! मिश्री मीठी होती है, अमृत उससे भी बहुत अधिक मीठा होता है, मगर मेरा बेटा तो सब से ज्यादा मीठा है। पुत्र का दर्शन तो मेरे अन्तरतर को मधुर बना रहा है।

रुक्मिणी के हृदय मे मोह–ममता का जो पुष्करावर्त्त मेघ बरसा है दोनो नेत्रों के द्वार से गंगा यमुना की भाँति उमड़ पड़ा। उसके हर्ष की सीमा नही थी। आनन्द के अतिरेक में निमग्न हो रही थी। प्रद्युम्न अपनी माता के असीम स्नेह को पाकर निहाल हो गया। उसके नेत्रों से भी हर्षाश्रुओं की धारा प्रवाहित होने लगी।

थोड़ी देर तक अतीव भावपूर्ण और आल्हादमय वायुमण्डल बना रहा। किन्तु अचानक रुक्मिणी को किसी बात का स्मरण हो आया और एकदम ही उसका चेहरा उदास हो गया। इस आकस्मिक भाव परिवर्तन को देख कर कुमार ने माता से पूछा–माताजी, अचानक आप उदास क्यों हो गई है ?

रुक्मिणी गद्गद् वाणी मे बोली—बेटा, माता का हृदय कौन जाने किन उपादानों से निर्मित हुआ है! उसे तुम नही समझ सकते।

कुमार—लेकिन माता क्या अपने मन की बात सुत से नही कहेगी ?

रुक्मिणी–कहेगी नही तो जीवित कैसे रहेगी ? सुनना ही है तो सुनो। मैंने सवा नौ महीने तक तुझे अपने उदर मे धारण किया और फिर जन्म दिया। मैंने तेरे बचपन से अनेक आशाएँ बाँध रखी थी। वे सब निराशा में परिणत हो गई। मुझे तेरे शैशव का सुख प्राप्त न हो सका। तू ने दूसरी माता को सुखी बनाया। अपनी बाल-चेष्टाओ से और अपनी तोतली बोली से दूसरी भाग्यशालिनी माता को निहाल किया! और मै यों ही मन मार कर रह गई !

प्रद्युम्नकुमार माता के मन की पीड़ा को समझ गया। वह बोला-माँ, इसके लिए क्यों चिन्ता करती हो ? मै आपको उस सुख का भी अनुभव कराये देता हूँ।

इतना कहकर कुमार ने तत्काल एक सलोने शिशु का रूप धारण कर लिया। वह माँ की गोद मे गिर गया और नाना प्रकार की चपलतापूर्ण मनमोहक चेष्टाएँ करने लगा। कभी उठने की चेष्टा करते-करते जमीन पर गिर पड़ता, कभी माँ के मुख की ओर देखकर मुस्करा देता, कभी लपक कर छाती से चिपट जाता। अत्यन्त रूपवान, हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर रूप उसने बनाया था। उसकी हथेलियों और पैरो के तलवे अरुण-वर्ण कमल के समान कोमल थे। कभी मुट्ठी बाँध लेता और कभी खोल लेता था। कभी किलकारी मारकर हँसता और माता को भी हँसाता था। माता का हर्ष हृदय मे समाता नही था। उसने गोद मे बैठा कर शिशु को दूध पिलाया। वह उसकी आँखो मे जब काजल आंजने लगी तो शिशु अपने हाथो से उसके हाथो को हटाने लगा! शिशु ने मल और मूत्र से माता के वस्त्र भर दिये तो भी माता को एक प्रकार के अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव हुआ!

अहा! मातृ जाति की महिमा वास्तव मे अपूर्व और अमित है! वह अपनी सन्तान मे ऐसी खो जाती है कि उसका सुख-दुख ही अपना सुख-दुख मानती है। स्त्री जाति की सहिष्णुता, उदारता, स्नेहमयता अपूर्व है! महिलाओं के इन प्रशस्त गुणों पर ही सृष्टि टिकी हुई है। सन्तान पर कितना महान् उपकार है माता का? इसी कारण कहा गया है—'मातृदेवो भव!' माता देवता का स्वरूप है! जो सन्तान के आनन्द पर अपने समस्त आनन्द को निछावर कर देती है, जो अपनी सन्तान के सामने अपने प्राणों को भी तिनके समान तुच्छ समझती है, उस

की महिमा का वखान कौन कर सकता है? इस जड़ वाणी और लेखनी मे क्या शक्ति है कि वह माता की महिमा के शतांश को भी प्रकट कर सके! पूत कपूत हो जाता है, पर माता कुमाता नही होती! ऐसी माता की जितनी भी सेवा शुश्रूषा की जाय, थोड़ी है। शास्त्र मे वतलाया गया है कि सन्तान उसकी सेवा करके उसके ऋण से आजीवन मुक्त नही हो सकती!

प्रद्युम्नकुमार ने विद्या के प्रभाव से शिशु का रूप धारण करके माता का मन मोदमय वना दिया। माता जरा इधर-उधर गई तो वह भी लड़खड़ाते पैरो से खड़े होकर उसके पीछे-पीछे चलने का प्रयत्न करने लगे और धरती चूमने लगे! कभी माता की उंगली पकड़ कर ठुमक-ठुमक कर आंगन मे चलने लगे! कभी धूल मे सारा शरीर भर माँ की गोदी मे आ जाते और उसके वस्त्रों को मलीन कर देते! कभी कभी धूल मे ही खेलने लगते और माता को दिखा-दिखाकर मुंह मे धूल फांकने का अभिनय करते। माता हड़वड़ा कर भागती और हाथ पकड़ कर धूल हटा देती। कभी धूल हाथ मे लेकर माता के गले मे लपेट देते।

कभी खाने के लिए मचल पड़ते। माता जो कुछ देती उसे फैंक देते और दूसरी वस्तु की फरमाईश करते। दूसरी वस्तु लाकर देती तो उसे भी नापसन्द करके तीसरी चीज के लिए मचल जाते! एक बार शिशु ने दूध और पूड़ी माँगी। रुक्मिणी दोनो चीजे ले आई। दूध मे शक्कर उचित मात्रा मे

मौजूद थी। मगर शिशु ने कहा—दूध मे शक्कर तो है ही नही! फीका दूध नही पीता। तब रुक्मिणी ने और अधिक शक्कर डाल दी! यह देख शिशु ने कहा—दूध मे शक्कर बहुत है। थोड़ी निकाल ले।

दूध मे शक्कर डालना आसान है, मगर डली हुई और घुली हुई शक्कर को निकालना कैसे सम्भव है? माता ने बहुतेरा समझाया, मगर शिशु मचल पड़ा। रुक्मिणी ने कहा—अच्छा रहने दे इस दूध को। मगर शिशु ने हट पकड़ कर कहा—नही, दूसरा दूध नही पीऊंगा, इसी दूध मे से शक्कर निकाल ले। रुक्मिणी ने लाख चेष्टाएं की, किन्तु बालहठ कम न हुआ। वह मचल-मचल कर रोने लगा। माता परेशान हो गई। हर्ष और विषाद का एक अद्भुत मिश्रित भाव उसके अन्तःकरण मे उदित होकर उसे गुदगुदाने सा लगा!

इस प्रकार की अनेक बाल-चेष्टाएं करके प्रद्युम्नकुमार ने माता को थका दिया। फिर अपना मूल रूप बना कर माता के पैरो मे गिर पड़ा। माता ने पुनः हृदय से लगा कर कहा—बेटा, चिरंजीव होओ! तुम्हारी आयु सुमेरू के बराबर हो! संसार मे अपने उज्ज्वल यश का विस्तार करो। सुखी होओ। सोलह वर्ष का मेरा मनोरथ आज सिद्ध हुआ। मेरी हवस पूरी हुई। इस दीर्घ काल मे मनोरथों की जो मनोरम माला मै गूंथती आ रही थी, वह आज मैने अपने कंठ मे धारण कर ली! पुण्य के प्रताप से आज मेरा अभीष्ट सिद्ध हुआ। मेरा जीवन सार्थक हो गया।

इसके पश्चात् माता और पुत्र ने अपना-अपना अतीत वृत्तान्त एक दूसरे को कह सुनाया। किस प्रकार विद्याधर राजा के घर उसका पालन-पोषण हुआ, किस प्रकार विद्याधर-कन्या के साथ विवाह हुआ, किस प्रकार उसे सोलह लाभ हुए आदि-आदि समग्र वृत्तान्त कुमार ने रुक्मिणी को कह सुनाया।

कुमार का वृत्तान्त सुनते-सुनते रुक्मिणी के हृदय मे अनेक प्रकार की भावनाएं जागृत हुई।

: ७ :

बलदेव का पराजय

कुमार अपनी अतीतकालीन कथा सुना ही रहा था कि अचानक बहुत से अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सभट रुक्मिणी के महल के सामने आकर खड़े हो गये। कुमार ने उन्हे देखकर पूछा—माताजी! यह सुभट कौन है और किस प्रयोजन से आये है?

रुक्मिणी देखते ही पहचान गई थी कि यह सुभट हलधर के है। उनके आने का रहस्य भी उससे छिपा नही रहा। इसने किंचित् विषादभाव से कहा वत्स! यह तुम्हारी

करामात का फल है ! तुमने जो बीज बोया था उसका फल सामने आ गया है ! सत्यभामा की दासियों के नाक-कान काटने का ही परिणाम है। यह सुभट हलधर ने भेजे है। हरि और हलधर की साक्षी से मेरे और सत्यभामा के बीच शर्त बदी गई थी, अतएव उसकी पूर्ति कराना वे अपना कर्तव्य समझते है। सत्यभामा ने हलधर के सामने फरियाद की और उन्होंने अपने सुभट यहाँ भेज दिये है ! दिखाई देता है, यह लोग हलधर के आदेश से अपना घर लूटेंगे !

रुक्मिणी का यह स्पष्टीकरण सुनकर कुमार चमक उठा। उसके क्रोध की सीमा न रही। मगर उसने शौर्य दिखाने के बदले चमत्कार दिखाना ही योग्य समझा।

कुमार ने उसी समय ब्राम्हण का रूप धारण कर लिया। ब्राम्हण की उम्र छोटी ही थी, परन्तु पेट बहुत मोटा था। उसके हाथ मे एक लाठी थी।

ब्राम्हण द्वार के बीच आकर डट गया। सुभट आये और जब भीतर घुसने लगे तो उसने उन्हें रोक दिया। कहा—महारानी का हुक्म नही है। खबरदार जो आगे पैर बढ़ाया !

सुभट हलधर की आज्ञा से आये थे। भला वे कब मानने लगे ? उन्होने कहा—भाई, बड़े मालिक का हुक्म है। हमे भीतर जाना ही होगा।

ब्राम्हण—बड़े मालिक का हुक्म है तो उन्ही के घर मे घुसो। यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलने की।

इसके पश्चात् माता और पुत्र ने अपना-अपना अतीत वृत्तान्त एक दूसरे को कह सुनाया। किस प्रकार विद्याधर राजा के घर उसका पालन-पोषण हुआ, किस प्रकार विद्याधर-कन्या के साथ विवाह हुआ, किस प्रकार उसे सोलह लाभ हुए आदि-आदि समग्र वृत्तान्त कुमार ने रुक्मिणी को कह सुनाया।

कुमार का वृत्तान्त सुनते-सुनते रुक्मिणी के हृदय मे अनेक प्रकार की भावनाएं जागृत हुई।

: ७ :

बलदेव का पराजय

कुमार अपनी अतीतकालीन कथा सुना ही रहा था कि अचानक बहुत से अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सभट रुक्मिणी के महल के सामने आकर खड़े हो गये। कुमार ने उन्हे देखकर पूछा—माताजी ! यह सुभट कौन है और किस प्रयोजन से आये है ?

रुक्मिणी देखते ही पहचान गई थी कि यह सुभट हलधर के है। उनके आने का रहस्य भी उससे छिपा नही रहा। उसने किंचित् विषादभाव से कहा वत्स! यह तुम्हारी

करामात का फल है! तुमने जो बीज बोया था उसका फल सामने आ गया है! सत्यभामा की दासियों के नाक-कान काटने का ही परिणाम है। यह सुभट हलधर ने भेजे है। हरि और हलधर की साक्षी से मेरे और सत्यभामा के बीच शर्त बदी गई थी, अतएव उसकी पूर्ति कराना वे अपना कर्तव्य समझते है। सत्यभामा ने हलधर के सामने फरियाद की और उन्होंने अपने सुभट यहाँ भेज दिये है! दिखाई देता है, यह लोग हलधर के आदेश से अपना घर लूटेंगे!

रुक्मिणी का यह स्पष्टीकरण सुनकर कुमार चमक उठा। उसके क्रोध की सीमा न रही। मगर उसने शौर्य दिखाने के बदले चमत्कार दिखाना ही योग्य समझा।

कुमार ने उसी समय ब्राम्हण का रूप धारण कर लिया। ब्राम्हण की उम्र छोटी ही थी, परन्तु पेट बहुत मोटा था। उसके हाथ मे एक लाठी थी।

ब्राम्हण द्वार के बीच आकर डट गया। सुभट आये और जब भीतर घुसने लगे तो उसने उन्हें रोक दिया। कहा—महारानी का हुक्म नही है। खबरदार जो आगे पैर बढ़ाया!

सुभट हलधर की आज्ञा से आये थे। भला वे कब मानने लगे? उन्होने कहा—भाई, बड़े मालिक का हुक्म है। हमे भीतर जाना ही होगा।

ब्राम्हण—बड़े मालिक का हुक्म है तो उन्ही के घर मे घुसो। यहाँ तुम्हारी दाल नही गलने की।

यह उत्तर सुनकर सुभट वलात् भीतर जाने लगे। व्राम्हण ने फिर सावधान किया। कहा—अपनी भलाई चाहो तो एक भी कदम आगे न बढ़ाना ! तुम्हे स्वामी का आदेश मिला है, परन्तु मुझे भी स्वामिनी का आदेश मिला है। जोर-जवर्दस्ती की तो मार खाओगे !

गणेशजी के समान लम्वोदर व्राम्हण-वालक की हिमाकतभरी वात सुनकर सुभटोंको हँसी भी आई और क्रोध भी आया। उन्होने व्राम्हण की उपेक्षा करके आगे पैर वढ़ाये ही थे कि व्राम्हण ने अपनी लाठी उठाई। वह निश्शंक भाव से उनसे उलझ पड़ा। थोड़ी देर की धक्का-मुक्की के पश्चात् व्राम्हण ने सव सुभटों को कील दिया। सभी के पैर धरती से चिपक गये। सव के हाथ-पैर वेकार हो गये। शस्त्र नीचे गिर पड़े। वोली वन्द हो गई।

व्राम्हण-कुमार ने सिर्फ एक सुभट को शेष रहने दिया। वह अपनी जान वचाकर हलधर के पास भागा। उसने सुभटों के दुर्गति का हाल उन्हे सुनाया। हलधर अत्यन्त कुपित हुए। वह बड़बड़ाने लगे—यह रूक्मिणी तो टोनेवाज हो गई दीखती है ! मीठी-मीठी वातो से दूसरो को ठगती है। कामण करके कृष्ण को अपने अधीन वनाये हुए है ! वड़े-वड़े योद्धा भी उससे हार गये ! अति शीतल दही दाँतो को गिरा देता है, शीतल जल भी पहाड़ों को फोड़ देता है और शीतल शीत मनुष्य को ठंडा कर देता है, यही वात यहाँ भी दिखाई देती है। मयूर मीठी वाणी बोलता है पर विषधर को पूंछ सहित निगल जाता है ! रूक्मिणी भी ऐसी ही प्रतीत होती है ! वह

कपट की खान है ! उसने मन्त्र के बल से मेरे सुभटों को पराजित कर दिया ! इससे तो जीतना ही कठिन हो गया है ! धिक्कार है ऐसी कुलकलंकिनी को ! पर उसका हौसला बढ़ने देना योग्य नही है।

इस प्रकार सोच-विचार कर और क्रोध से अभिभूत होकर पृथ्वी को कंपाते हुए बलदेवजी स्वयं रूक्मिणी के महल की ओर चले। द्वार पर पहुंचे तो देखा कि वही ब्राम्हण दरवाजे पर लम्बा पड़ा हुआ है। बोले—मुझे भीतर जाने दो। एक ओर हट जाओ।

ब्राम्हण कुमार ने मुस्करा कर कहा——राजन् ! पहले मेरी विनय तो सुन लीजिए। सत्यभामाजी ने आग्रह करके मुझे भोजन कराया और भोजन मे कच्चा अन्न खिलाया है। कच्चा अन्न खाने से मेरा पेट फूल गया है। बहुत दर्द हो रहा है। पहले मेरा दर्द दूर कर दीजिए ! महाराज ! ब्राम्हण जगत् का गुरू है कहा भी है——'**सर्वेषां ब्राह्मणो गुरुः।**' ब्राह्मण को साता पहुंचाने से सुख प्राप्त होता है। जब तक मेरा पेट दुखना बन्द नही होता, मै आपको भीतर नही जाने दूंगा।

ब्राह्मण की हैकड़ी देख बलदेवजी नीचे से ऊपर तक प्रज्वलित हो उठे। क्रोध से काँपते हुए बोले—भोजन-भट्ट कही के ! समझता है तू किससे बात कर रहा है ? बड़बड़ाना छोड़ कर एक किनारे होजा, नही तो बड़ी कम्बख्ती होगी !

ब्राम्हणकुमार—महाराज ! मै इतना भोंदू नही कि आपको

न पहचानूँ! आपको भली-भाँति जान-पहचान कर ही निवेदन करता हूँ कि—आप अपने वल मे न भूले रहिए। मै जिंदा मक्खी नही निगल सकता! जव तक मै दरवाजे मे वैठा हूं, आप भीतर प्रवेश नही कर सकते।

वलदेवजी से अव न रहा गया। उन्होंने ब्राह्मण की टांग पकड़ कर उसे एक ओर घसीटना शुरु किया। मगर आश्चर्य कि ब्राह्मण की टांग लम्वी ही लम्वी होती चली गई! टांग वढ़ती गई और ब्राम्हण जहां का तहां पड़ा रहा! वलदेवजी ने मुड़कर पीछे देखा तो ब्राम्हण एक इंच भी अपनी जगह से नही हटा था! उन्होने फिर खीचना शुरु किया और फिर मुड़कर देखा तो फिर वही हाल देखा! इतना घसीटने पर भी ब्राम्हण अपनी जगह से नही सरका!

वलदेवजी के क्रोध का पारा ऊँचा चढ़ गया। उनके नेत्र रक्तवर्ण हो गये। सारा शरीर कांपने लगा। उनके जीवन मे इस प्रकार की घटना सम्भवतः पहली ही थी। अतएव वे अपने आपको नियन्त्रण मे रखने मे असमर्थ हो गए। मगर करे तो क्या करे? उनका वल काम नही आ रहा था। प्रभाव व्यर्थ सिद्ध हो रहा था!

विस्मय, क्रोध और निराशा के त्रिविध भावों से अभिभूत होकर बलरामजी बड़बड़ाने लगे—रुक्मिणी इतनी धूर्त हो गई है, यह तो स्वप्न मे भी सम्भावना नही थी। जो मुझसे भी नही चूकी, वह दूसरे से कैसे चूकेगी? इसने कुल की मर्यादा को ताक पर रख दिया है और निर्लज्जता पर उतारू हो गई है!

कुमार ने अपने मूल रूप मे माता के पास जाकर पूछा– बाबाजी, अन्दर प्रवेश करने का हठ पकड़े है। आज्ञा दीजिए, क्या करना चाहिए?

रुक्मिणी ने भीतर से सारी घटना देख ली थी। वह कहने लगी–वत्स! तुम्हारा बल और प्रभाव विस्मयजनक है तुम सर्वथा अजेय हो! मगर अपने पूज्य गुरुजनों के समक्ष नम्र होना ही उचित है। उनसे पराजित होने मे ही शोभा है। यह यादवनाथ है। महाबली और प्रभावशाली है। उनकी इच्छा पूर्ण होने दो। उनसे बिगाड़ करना अच्छा नही है। सर्प और व्याघ्र के मुख मे हाथ डालना अच्छा नही, इसी प्रकार बाबाजी को चिढ़ाना भी ठीक नही।

कुमार–माताजी! आप यह क्या कहती है? मै वासुदेव का बेटा हूँ। मुझे झुकना नही आता। मेरे सामने यह क्या चीज है? मुझे रंच मात्र भी इनसे भय नही है। मै यों ही इनसे नही उलझ पड़ा हूँ। मुझे अपनी शक्ति पर विश्वास है। जो नाग को खिलाने का मन्त्र जानता है वही तो उसकी पूँछ पकड़ कर खीचता है! तुम किसी प्रकार का भय मत करो। मै इनसे निपट लूँगा। यहीं बैठी-बैठी तुम मेरी करामात देखती रहना। बाबाजी भी क्या समझेंगे कि किसी से पाला पड़ा था! आप तो इतना भर बतला दो कि इन्हे किससे लड़ने का शौक है?

रुक्मिणी–शौक तो इन्हे केसरीसिंह से लड़ने का है!

कुमार ने तत्क्षण केसरीसिंह का रूप धारण कर लिया। हृष्ट-पुष्ट शरीर और पर्वत सरीखा ऊंचा कद! लम्बी और शानदार पूंछ पीठ पर होकर सिर तक पहुँची हुई थी और झौंरा (पूंछ का गुच्छा) सिर पर मुकुट की तरह सुशोभित हो रहा था। आखिर तो वन का राजा ठहरा! मुकुट के बिना राजा की शोभा ही क्या? सिंह की दाढें तीखी और भयानक थी। नाखून लम्बे-लम्बे और नुकीले थे। वह महामेघ की तरह गम्भीर गर्जना कर रहा था। मस्ती भरी चाल से चलता हुआ वह सिंह रुक्मिणी के महल से बाहर निकला।

सिंह को सामने आते देख बलदेवजी गम्भीर सोच-विचार मे पड़ गये। उन्हे अत्यन्त आश्चर्य भी हो रहा था। वह सोचने लगे——रुक्मिणी बड़ी जादूगरनी है! आज तक मैं इसे पहचान नही पाया था। अब पहचान पाया हूँ। यह राजघरानें के योग्य रमणी नहीं है।

इतने मे सिंह निकट आ गया। आते ही उसने एक झपट मारी और बलदेवजी का मुकुट नीचे आ गिरा।

बलदेवजी के अन्तस्थल मे भीषण कोप का दावानल सुलग उठा। वे सिंह के साथ भिड़ गये। दोनो मे कुस्ती होने लगी। थोड़ी देर की भिड़न्त के बाद बलदेवजी गिर गये और सिंह ने उन्हें छोड़ दिया। वह फिर महल के भीतर चला गया।

बलदेवजी खिसियाने हो गये। उनके सब सुभट छूट गये और सब अपने-अपने स्थान पर चले गये। सब आश्चर्य मे निमग्न

थे। सब ने समझ लिया—रुक्मिणी अत्यन्त धूर्ता है, ठगोरी है और उसने मन्त्र की सहायता से यह सब करामात की है। मन ही मन सभी लोग रूक्मिणी से भय खाने लगे!

रूक्मिणी अपने पुत्र का पराक्रम देख अतिशय सन्तुष्ट हुई। ठीक ही है—कौन ऐसी माता होगी जो अपने पुत्र को देख कर प्रसन्न न होती हो! फिर प्रद्युम्न तो असाधारण पुत्र था! उसकी शरीरिक सम्पत्ति, उसकी शक्ति और बुद्धि सभी कुछ अनुपम थी। द्वारिका मे पैर धरते ही उसने तहलका मचा दिया था। उससे सत्यभामा बुरी तरह पराजित हो चुकी थी, बलदेवजी का गर्व खर्व हो गया था! भला ऐसे सुयोग्य और शक्तिशाली सुपुत्र को पाकर क्यों न रूक्मिणी निहाल हो जाती!

योग्य पुत्र वही कहलाता है जो अपने वंश की प्रतिष्ठा मे चार चाँद लगा देता है, जो अपने पूर्वजों की कीर्ति-कौमुदी को अधिक उज्ज्वल और विस्तृत बनाता है। ऐसे पुत्र को पाकर माता-पिता धन्य हो जाते है। प्रद्युम्नकुमार ऐसा ही पुत्र-रत्न था। उसके गुणों का रुक्मिणी को अभी थोड़ा ही परिचय मिल पाया था, मगर इतने परिचय से भी वह उसकी महत्ता का अनुमान कर चुकी थी।

पुत्र तीन तरह के होते है—(१) उत्तम (२) मध्यम और (३) अधम। जो अपने कुल की इज्जत बढ़ाता है। अ
विशिष्ट गुणों से माता-पिता आदि पूर्वजों के यश और
को प्रख्यात करता है और माता-पिता की सेवा करके

सन्तुष्ट करता है, वह उत्तम पुत्र कहलाता है। ऐसे पुत्र की प्राप्ति होने पर माता-पिता प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रहते हैं। उनके जीवन के अन्तिम दिन शान्ति के साथ व्यतीत होते हैं। अन्त मे वे सन्तोप और निराकुलता के साथ मृत्यु का आलिगन करते है। ऐसा उत्तम पुत्र अपने गुरुजनों के हार्दिक शुभाशीर्वादो का सुदृढ़ कवच पाकर निर्भय और सुखी बनता है।

जो पुत्र अपने कुल की कीर्ति को बढ़ाता नही और घटाता भी नही जो उसे कायम रखता है, वह मध्यम कोटि का पुत्र कहलाता है। इन दोनो के विपरीत अवम पुत्र वह है जो कुल की कीर्ति को कलंकित करता है, जो अपन कदाचार से अपना भी सर्वनाश कर लेता है और अपने पूर्वजो की प्रतिष्ठा पर भी पोता फेर देता है। नीतिकार ऐसे कपूत के विषय मे कहते है–

एकेन शुष्कवृक्षेण, दह्यमानेन वन्हिना।
दह्यते तद्वनं सर्वं, दुष्पुत्रेण कुलं यथा॥

जैसे वन मे एक सूखे पेड़ मे आग लग जाती है तो वह आग फैलती-फैलती समग्र वन को जला कर भस्म कर डालती है। उसी प्रकार एक कपूत सारे कुल को नष्ट कर डालता है।

अन्याय प्रवृत दुर्योधन सम्पूर्ण कौरव-वंश के विनाश का कारण बन गया था, यह इतिहास किसे नही मालूम? नीतिज्ञ जनों ने कुपुत्र की भर्त्सना बड़े ही कठोर शब्दो मे की है।

वरं गर्भस्त्रावो वरमपि च नैवाभिगमनं।
वरं जातप्रेतो वरमपि च कन्यैव जनिता॥

वरं वन्ध्या भार्या वरमपि च गर्भेषु वसतिर्न।
चाविद्वान रूपद्रविणगुणयुक्तोऽपि तनयः॥

अविवेकी पुत्र का जन्म होने की अपेक्षा गर्भपात हो जाना कहीं अच्छा है या ऐसे पुत्र का जन्म लेकर मर जाना अच्छा है। ऐसे पुत्र की अपेक्षा कन्या का जन्म होना भी श्रेष्ठ है! अथवा अधम पुत्र का प्रसव करने की अपेक्षा स्त्री का वन्ध्या रह जाना ही अच्छा है!

इन तीन प्रकार के पुत्रों मे प्रद्युम्नकुमार उत्तम पुत्र था। सपूत मे जितने भी गुण होने चाहिए, सभी उसमे विद्यमान थे। ऐसी स्थिति मे रुक्मिणी अपने आपको धन्य क्यों न मानती?

माता-पिता के प्रबल पुण्य से उत्तम पुत्र का संयोग होता है। ऐसे पुत्र अपने पराक्रम और सदाचार से वंश के प्रासाद पर यश का मंगल-कलश चढ़ाते है। वे कुल के दीपक कहलाते है।

रुक्मिणी अपने पुत्र के सद्‌गुणों पर विचार करके अत्यन्त हर्षित हुई। उसने अपने गृहस्थ जीवन को धन्य समझा। वह मन ही मन उसका कुशल मनाने लगी।

सन्तुष्ट करता है, वह उत्तम पुत्र कहलाता है। ऐसे पुत्र की प्राप्ति होने पर माता-पिता प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रहते हैं। उनके जीवन के अन्तिम दिन शान्ति के साथ व्यतीत होते हैं। अन्त में वे सन्तोष और निराकुलता के साथ मृत्यु का आलिंगन करते हैं। ऐसा उत्तम पुत्र अपने गुरुजनों के हार्दिक शुभाशीर्वादों का सुदृढ़ कवच पाकर निर्भय और सुखी बनता है।

जो पुत्र अपने कुल की कीर्ति को बढ़ाता नहीं और घटाता भी नहीं जो उसे कायम रखता है, वह मध्यम कोटि का पुत्र कहलाता है। इन दोनों के विपरीत अधम पुत्र वह है जो कुल की कीर्ति को कलंकित करता है, जो अपने कदाचार से अपना भी सर्वनाश कर लेता है और अपने पूर्वजों की प्रतिष्ठा पर भी पोता फेर देता है। नीतिकार ऐसे कपूत के विषय में कहते हैं—

एकेन शुष्कवृक्षेण, दह्यमानेन वन्हिना।
दह्यते तद्वनं सर्वं, दुष्पुत्रेण कुलं यथा॥

जैसे वन में एक सूखे पेड़ में आग लग जाती है तो वह आग फैलती-फैलती समग्र वन को जला कर भस्म कर डालती है। उसी प्रकार एक कपूत सारे कुल को नष्ट कर डालता है।

अन्याय प्रवृत दुर्योधन सम्पूर्ण कौरव-वंश के विनाश का कारण वन गया था, यह इतिहास किसे नही मालूम? नीतिज्ञ जनों ने कुपुत्र की भर्त्सना बड़े ही कठोर शब्दो मे की है।

वरं गर्भस्त्रावो वरमपि च नैवाभिगमनं।
वरं जातप्रेतो वरमपि च कन्यैव जनिता॥

वरं वन्ध्या भार्या वरमपि च गर्भेषु वसतिर्न।
चाविद्वान रूपद्रविणगुणयुक्तोऽपि तनयः॥

अविवेकी पुत्र का जन्म होने की अपेक्षा गर्भपात हो जाना कहीं अच्छा है या ऐसे पुत्र का जन्म लेकर मर जाना अच्छा है। ऐसे पुत्र की अपेक्षा कन्या का जन्म होना भी श्रेष्ठ है! अथवा अधम पुत्र का प्रसव करने की अपेक्षा स्त्री का वन्ध्या रह जाना ही अच्छा है!

इन तीन प्रकार के पुत्रों मे प्रद्युम्नकुमार उत्तम पुत्र था। सपूत मे जितने भी गुण होने चाहिए, सभी उसमे विद्यमान थे। ऐसी स्थिति मे रुक्मिणी अपने आपको धन्य क्यों न मानती?

माता-पिता के प्रबल पुण्य से उत्तम पुत्र का संयोग होता है। ऐसे पुत्र अपने पराक्रम और सदाचार से वंश के प्रासाद पर यश का मंगल-कलश चढ़ाते है। वे कुल के दीपक कहलाते है।

रुक्मिणी अपने पुत्र के सद्गुणों पर विचार करके अत्यन्त हर्षित हुई। उसने अपने गृहस्थ जीवन को धन्य समझा। वह मन ही मन उसका कुशल मनाने लगी।

सन्तुष्ट करता है, वह उत्तम पुत्र कहलाता है। ऐसे पुत्र की प्राप्ति होने पर माता-पिता प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रहते है। उनके जीवन के अन्तिम दिन शान्ति के साथ व्यतीत होते है। अन्त मे वे सन्तोष और निराकुलता के साथ मृत्यु का आलिगन करते है। ऐसा उत्तम पुत्र अपने गुरुजनों के हार्दिक शुभाशीर्वादो का सुदृढ़ कवच पाकर निर्भय और सुखी बनता है।

जो पुत्र अपने कुल की कीर्ति को बढ़ाता नही और घटाता भी नही जो उसे कायम रखता है, वह मध्यम कोटि का पुत्र कहलाता है। इन दोनो के विपरीत अधम पुत्र वह है जो कुल की कीर्ति को कलंकित करता है, जो अपन कदाचार से अपना भी सर्वनाश कर लेता है और अपने पूर्वजो की प्रतिष्ठा पर भी पोता फेर देता है। नीतिकार ऐसे कपूत के विषय मे कहते है—

एकेन शुष्कवृक्षेण, दह्यमानेन वन्हिना।
दह्यते तद्वनं सर्वं, दुष्पुत्रेण कुलं यथा॥

जैसे वन मे एक सूखे पेड़ मे आग लग जाती है तो वह आग फैलती-फैलती समग्र वन को जला कर भस्म कर डालती है। उसी प्रकार एक कपूत सारे कुल को नष्ट कर डालता है।

अन्याय प्रवृत दुर्योधन सम्पूर्ण कौरव-वंश के विनाश का कारण बन गया था, यह इतिहास किसे नही मालूम? नीतिज्ञ जनों ने कुपुत्र की भर्त्सना बड़े ही कठोर शब्दो मे की है।

वरं गर्भस्त्रावो वरमपि च नैवाभिगमनं।
वरं जातप्रेतो वरमपि च कन्यैव जनिता॥

वरं वन्ध्या भार्या वरमपि च गर्भेषु वसतिर्न ।
चाविद्वान रूपद्रविणगुणयुक्तोऽपि तनयः ॥

अविवेकी पुत्र का जन्म होने की अपेक्षा गर्भपात हो जाना कहीं अच्छा है या ऐसे पुत्र का जन्म लेकर मर जाना अच्छा है। ऐसे पुत्र की अपेक्षा कन्या का जन्म होना भी श्रेष्ठ है! अथवा अधम पुत्र का प्रसव करने की अपेक्षा स्त्री का वन्ध्या रह जाना ही अच्छा है!

इन तीन प्रकार के पुत्रों मे प्रद्युम्नकुमार उत्तम पुत्र था। सपूत मे जितने भी गुण होने चाहिए, सभी उसमे विद्यमान थे। ऐसी स्थिति मे रुक्मिणी अपने आपको धन्य क्यों न मानती?

माता-पिता के प्रबल पुण्य से उत्तम पुत्र का संयोग होता है। ऐसे पुत्र अपने पराक्रम और सदाचार से वंश के प्रासाद पर यश का मंगल-कलश चढाते है। वे कुल के दीपक कहलाते है।

रुक्मिणी अपने पुत्र के सद्गुणों पर विचार करके अत्यन्त हर्षित हुई। उसने अपने गृहस्थ जीवन को धन्य समझा। वह मन ही मन उसका कुशल मनाने लगी।

: ८ :

रुक्मिणी-हरण

माता और पुत्र आमने सामने वैठे थे। माता की आंखो से स्नेह की धारा प्रवाहित हो रही थी और पुत्र के नेत्र श्रद्धा और भक्ति व्यक्त कर रहे थे। तव रुक्मिणी ने कहा–वत्स! तुमने अपना अतीत वृत्तान्त पूरा नही सुनाया। वात अधूरी रह गई। यह तो वतलाओ कि तुम्हे मेरे नाम-ठाम का पता कैसे चला? किसने वतलाया कि तू मेरा बेटा है और मै तेरी माँ हूं। तू उतनी दूर से चलकर किसके साथ यहां तक आया है? तू सत्यभामा को कैसे पहचान गया? कैसे ब्राह्मण-कुमार बन गया? कैसे कच्चा धान्य खाया? कैसे पेट फुलाया? यह सब बाते खोलकर मुझे बतला। तेरा तमाशा देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है।

प्रद्युम्न ने मृदु हास्य करके और हाथ जोड़कर कहा–माता! आपसे कोई बात छिपानी थोड़े ही है! लो, मै सब वृत्तान्त ब्यौरेवार वतलाता हूँ।

इसके बाद प्रद्युम्नकुमार ने कहा–सोलह प्रकार के लाभों से सुशोभित देख मेरी पालक माता के मन मे दुर्भावना उत्पन्न हुई। मै उसके चंगुल मे न फँसा तो उसने ढोंग करके मुझे वदनाम करने की चेष्टा की। पिता के घर से रूठ कर मै एक

उद्यान मे पहुँचा। वहां सौभाग्य से एक मुनिराज विराजमान थे। मेरे जिज्ञासा व्यक्त करने पर उन्होने समग्र वृत्तान्त बतलाया। उनके कथन से मै समझ पाया, कि मेरे जननी जनक वास्तव मे कौन है ? माताजी ! मुनि की मधुर वाणी सुनकर मुझे अमर्याद मोद उत्पन्न हुआ, ऐसा प्रतीत हुआ, मानो मैने अभी-अभी नवीन जन्म ग्रहण किया है।

इतने मे वहां नारद बाबा का पदार्पण हुआ। रही-सही बाते उनसे ज्ञात हुई। उनके परामर्श और आदेश से मै उनके साथ यहाँ आने को तैयार हो गया। वहां के परिवार को रोता-बिलखता छोड़ मै चल पड़ा। रास्ते मे कौरव-सेना दृष्टिगोचर हुई और नारद बाबा से यह भी पता चल गया, कि यह सेना कहां और किस लिए जा रही है। वह भानुकुमार के लिए उदधिकुमारी को लेकर आ रही थी। मैने उस सेना को पराजित किया और उधदिकुमारी को अपने कब्जे मे कर लिया। ऋषि नारदजी के पास उसे विमान मे छोड़कर यहां आ गया। यहां आकर कुछ चमत्कार दिखलाने की इच्छा हुई। इतना करने के पश्चात कुमार ने किस प्रकार भानुकुमार को छकाया, किस प्रकार सत्यभामा के उद्यान को तहस-नहस किया, किस प्रकार रथ मे बैठकर जाती हुई दासियों की खबर लेकर अमंगल किया, किस प्रकार वापी का जल सोख लिया किस प्रकार सारे बाजार मे गड़बड़ मचाई, किस प्रकार सत्यभामा का काला मुंह करके सिर के बाल मुंड़वाये आदि-आदि समस्त वृत्तान्त ब्यौरेवार सुनाया।

रुक्मिणी कुमार के पराक्रम और चातुर्य की कथा सुनकर कितनी प्रसन्न हुई होगी, यह कौन कह सकता है? माता के वत्सलता-पूर्ण हृदय मे हर्ष की हिलोरे उठने लगी। वास्तव मे प्रद्युम्नकुमार विद्याओं और कलाओं का अक्षय भण्डार था। उसके असीम सद्‌गुणों को गिनना सुरगुरु के लिए भी सम्भव नही, तो साधारण मानव का तो कहना ही क्या है?

रुक्मिणी ने असीम प्रसन्नता अनुभव करते हुए कहा—मेरे लाल! तुमने जो कुछ किया, ठीक किया। अब अपने पिता के पास जाओ। जैसे मेरे कलेजे को शीतल किया है, उसी प्रकार उनके हृदय को भी शीतल करो। इस त्रिलोकी मे पिता के समान और कोई नही है। पिता संसार मे सबसे वडा होता है। यदुनाथ तुम्हे देखने के लिए अत्यन्त उत्कंठित है। उनके अन्तर की प्यास बुझाओ। वे समय-समय पर तुम्हारा स्मरण किया करते है।

कुमार—पिताजी से कहाँ जाकर मिलूँ?

रुक्मिणी—वे अभी राजसभा मे विराजमान होगे।

कुमार—माँ, वहाँ जाकर मै क्या कहूँगा? कहूँगा मैं आपका पुत्र आ गया हूँ?

रुक्मिणी—तो अपना असली परिचय देने मे हानि ही क्या है?

कुमार—ना माँ! मुझ से यह न होगा। सभाजन पूछेंगे—यह कौन है? कोई कहेगा—कौन जाने यही प्रद्युम्न है अथवा

नही। कोई मुझ पर दया दिखलाऐंगे! कहेंगे–बेचारा दर-दर भटकता-भटकता यहाँ आ पहुँचा है। चलो अच्छा हुआ, ठिकाने लग गया! माँ, यह सब टीकाएं मुझसे न सुनी जाएँगी। मै इस दीनता को सहन नही कर सकता।

रुक्मिणी—तो फिर कैसे मिलोगे?

कुमार—मै तो विजय-वैजयन्ती फहराकर और विजय के नगाड़े बजा कर पिताजी से मिलूंगा।

रुक्मिणी—क्या पिताजी के साथ युद्ध करोगे?

कुमार—नही, मै उनके चरणों की पावन रज अपने सिर पर धारण करना चाहता हूँ। मगर उससे पहले देखना चाहता हूँ कि यादवों का रणभूमि मे कितना बल है! उनकी शूर-वीरता का परिचय तो प्राप्त कर लूं! फिर मै अपने आपको प्रकट करके पिता के चरणों मे प्रणाम करूँगा। तुम मेरे साथ चलो।

रुक्मिणी—कहां?

कुमार—जहां मे कहूँ।

रुक्मिणी—फिर भी वतला तो सही!

कुमार—सब वात आप ही आप ज्ञात हो जायगी।

रुक्मिणी—मै हरिजी से आज्ञा प्राप्त किये बिना एक कदम भी बाहर नही जा सकती। पतिव्रता नारी की यह मर्यादा है।

कुमार—मां, तुम मां और मै तुम्हारा वेटा हूँ! वेटे के साथ जाने मे कोई हानि नही—मर्यादा का अतिक्रम भी नही। मेरी बात मान जाओ। घड़ी पहर में तो लौट ही आना है।

इस प्रकार अत्यन्त अनुनय और आग्रह करके प्रद्युम्न-कुमार ने रुक्मिणी को समझा लिया। वह माता का हाथ पकड़ कर आकाश मे उड़ा और यादवों की राजसभा मे पहुँचा। वहाँ आकाश मे स्थित होकर सारी सभा सुन सके, ऐसी गम्भीर ध्वनि मे कहा—हे वीर हरि! हे हलधर! हे जुंझार पाण्डवो और कौरवो! यहां बैठे-बैठे क्या करते हो? मै कृष्ण की पत्नी का अपहरण कर रहा हूं। विकट संग्राम मे चन्देरीनाथ को पराजित करके जिस रुक्मिणी का पाणिग्रहण किया था, उसीको आज मै अपने साथ ले जा रहा हूं! मै कोई चोर या लुच्चा नही, नट-विट नही हूं। मै विद्याधरों के राजा का कुमार हूं और सब की बुद्धि पर धूल डालकर इस महासुन्दरी को ले जारहा हूं। अगर तुम क्षत्रियाणी के उदर से जन्मे हो, अगर तुम्हे राजा होने का अभिमान है तो मेरा सामना करो। मै त्रिखंडपति के पत्नी को ले जा रहा हूं। अव तुम्हारी नाक कैसे रहेगी? किसी को युद्ध करने का साहस हो तो सामने आ जाय। मै उसकी भूख मिटाने के लिये तैयार हूं।
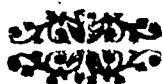
: ९ :

पिता - पुत्र संघर्ष

यादव-राजसभा मे बड़े-बड़े शूरवीर योद्धा मौजूद थे। उन्होने गगनस्थित पुरुष की अहंकारपूर्ण वाणी सुनी और रुक्मिणी के अपहरण की बात जानी तो उन्हे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। सब के सब ऊपर की ओर मुँह करके आश्चर्य करने लगे। किसी के मुख से सहसा कोई शब्द न निकल सका।

तीन खण्ड के अधिपति, महाशक्ति शाली, घोर पराक्रमी वासुदेव श्रीकृष्ण का प्रताप जगत-विख्यात था। उनका सामना करने की किसी मे हिम्मत नही थी। किन्तु अचानक यह कौन आ पहुँचा ? जो इतनी धृष्टता प्रदर्शित कर रहा है! महारानी रुक्मिणी का अपहरण करने की हिम्मत करने वाला यह कौन है ? यही सब के आश्चर्य का कारण था।

प्रद्युम्नकुमार आकाश मार्ग से चलकर नारदजी के पास पहुँचा। माता रुक्मिणी और कुमार ने उन्हे नमस्कार किया और द्वारिका मे घटित सब घटनाएँ सुनाई। इस नवीन घटना की भी सूचना दी। तत्पश्चात रुक्मिणी को नारदजी के पास छोड़कर कुमार पृथ्वी पर आया और युद्ध की तैयारी करने लगा।

उधर प्रद्युम्न के वचन सुनकर सम्पूर्ण यादव-सभा खलवला उठी। क्रोध की चिनगारियाँ प्रकट होने लगी। शूरवीर वीर-रस मे डूब गये। उनके चेहरे रक्तवर्ण हो गये। अंग-अंग क्रोध से काँपने लगा। बलरामजी की भृकुटि चढ़ गई। वासुदेव को ऐसा गहरा आघात लगा कि वे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े!

चारों तरफ तहलका मच गया। 'पकड़ो, मारो' की ध्वनि गूँज उठी। उसी समय दस दशार्ह, पाँच सौ वीर और साठ हजार दुर्दान्त युद्ध सज्जा से सुज्जित होकर समर भूमि की ओर चल पड़े। बड़े-बड़े योद्धा मस्त चाल से रवाना हुए। सभी की नस-नस मे युद्ध का उन्माद भरा था और क्षोभ से परिपूर्ण थे। अंजनगिरि के समान विशालकाय, मदोन्मत्त, घण्टो और घुघरो की ध्वनि से भय उत्पन्न करने वाले बयालीस हजार गजराज रवाना हुए। उनकी चिंघाड़ अच्छे-अच्छे शूरवीरों के अन्तस्तल मे भी कँपकँपी उत्पन्न कर रही थी।

लम्बे-लम्बे उदर वाले घोड़े भी तैयार हुए। उनके ऊपर काठी शोभायमान हो रही थी वे थेई-थेई करके नाच रहे थे और भूतल को कम्पित कर रहे थे।

रूनझुन-रूनझुन की ध्वनि करने वाले रथ भी तैयार हो गये। उनमे धोरी बैल जोते गये। शूरवीर योद्धा रथ मे बैठकर अपने अस्त्र चमकाने लगे।

कवच से लैस पैदल चलने वाले योद्धा भी चल पड़े। उनके नेत्र भी लाल हो रहे थे। अड़तालीस कोटि विशाल सैन्यदल

चुटकियो मे सन्नद्ध होकर शत्रु का सामना करने के लिए उद्यत था ! इस विशाल सेना को देखकर वीर से वीर शत्रु भी काँपे बिना नही रह सकता था।

इस प्रकार सेना सज्जित हो गई। सैनिक अभिमान के साथ अपनी शूरता प्रदर्शित करने के लिए उत्सुक दिखलाई देते थे। कोई कहता—शत्रु को वासुदेवजी का अपराध करने की अच्छी शिक्षा दी जाएगी !

कोई बिजली की भाँति चमचमाती हुई और यमराज की जिव्हा के समान लपलपाती हुई तलवार को म्यान से बाहर निकाल कर प्रसन्न हो रहा था। कोई भाले को उछाल रहा था, कोई खांडे की परीक्षा कर रहा था! कोई वज्र फिरा रहा था, कोई धनुष्य-बाण को सहेज रहा था और कोई दण्ड फटकार रहा था। नाना प्रकार के भीषण शस्त्र-अस्त्रों से सुसज्जित सैनिकों मे युद्ध की उमंग फैली हुई थी।

सैनिको को युद्ध के लिए विदाई देती हुई माताएँ बोली—बेटा जाओ, मेरे स्तन के धवल दूध को कलंकित मत करना, शत्रु को पीठ मत दिखलाना। समरांगण मे पहुँचते ही शत्रु के प्राण लेना ! अपनी विजय से मेरे कलेजे को शीतल करना।

पत्नी ने पति को विदा करते कहा—प्राणनाथ ! शीघ्र ही विजयश्री को मेरी सौत बना कर लाना ! अपने शौर्य से यश की वृद्धि करना और शीघ्र सकुशल लौटकर दर्शन देना !

सेना ने कुच कर दिया। हरि और हलधर सब के आगे

आगे चल रहे थे। चन्द्रमा और सूर्य के समान दैदीप्यमान
युगल भ्राताओं की शान निराली ही थी। दोनो शूरता अ
वीरता की साक्षात मूर्ति जान पड़ते थे। दोनो के चेहरे इस सम
वीर-रस के कारण लोहितवर्ण हो रहे थे। उनको देखते ही
से वड़े शक्तिशाली वैरी भी सहम उठते थे। उनके पराक्रम
कथा कौन कह सकता है ?

सेना ने समरभुमि मे प्रवेश किया। रणनिपुण सेनानियो
सुन्दर मोर्चा-बन्दी की। शत्रु को चुनौती दी। कहा—आजा
सामने ! अभी-अभी यमराज के कराल मुख मे भेजकर दूस
माता के दर्शन कराते है !

उधर प्रद्युम्नकुमार सन्नद्ध ही था। वह अपने पिता
विशाल और प्रभावोत्पादक सेना को देखकर अत्यन्त हर्षि
हुआ। प्रचण्ड पराक्रमी और विद्याबल से विभूषित कुमार कम
कस कर और शस्त्रास्त्र से सुमज्जित होकर मैदान मे अड गया
उसने धनुष्य की प्रत्यंचा चढ़ा कर जो टंकार की तो सा
यादव-सेना एक बार थर्रा उठी। फिर धनुष्य पर बाण चढ़ा
और उसकी प्रत्यंचा को कान तक खीच कर बोला—'आइ
हलधर और माधव ! मै आपका स्वागत करता हूं। शक्ति ह
तो अपनी नारी को छुड़ाइये। आज मुझे आपके वल-पराक्र
की परीक्षा लेनी है और अपने विक्रम की परीक्षा देनी है
देखूं, यादवो मे कितनी शक्ति है !

कुमार के यह वचन सुनकर यादवों के अंग मे क्रोध

ज्वालाएं सुलग उठी। रणभेरियाँ बजने लगी और भयानक कोलाहल से व्योममण्डल आक्रान्त हो गया।

कुमार के ऊपर मेघ की धारा के समान बाणों की वर्षा होने लगी। विविध प्रकार के शस्त्रों का प्रहार होने लगा। उस समय प्रद्युम्नकुमार की फुर्ती देखने योग्य थी। कितनी त्वरा के साथ वह समस्त शस्त्रो एवं बाणों से अपनी रक्षा कर रहा था और शत्रु-सेना पर बाण वर्षा कर रहा था। उसका छोड़ा हुआ एक-एक बाण विद्या के प्रभाव से हजार हजार रूप धारण करके अपने विरोधियों की छाती छेद रहा था! किसी का हाथ, किसी का पैर, किसी का वक्षस्थल और किसी का पेट घायल हो रहा था! थोड़ी देर तक इसी प्रकार घोर संग्राम होता रहा। शत्रु कुमार के हस्तलाघव को देखकर चकित और मूढ़ हो रहे थे और घायल हो-होकर जमीन पर लेटते जा रहे थे। आखिर यादव सेना के छक्के छूट गये। वह पराजित होकर भाग खड़ी हुई।

अपनी सशक्त सेना की यह आश्चर्य जनक दुर्गति देखकर बलदेव और वासुदेव के विस्मय की सीमा न रही। अन्त में दोनो को स्वयं शत्रु का सामना करने के लिए विवश होना पड़ा। दोनो कुमार के सामने आये। मगर वासुदेव हजार प्रयत्न करने पर भी अपने मन को तैयार न कर सके। उनके मन मे एक ऐसा भाव उदित होरहा था, जिसे वह स्वयं ही समझने मे असमर्थ थे! न मालूम किस अतर्क्य कारण से उनके हृदय मे रोष जागृत नही हो रहा था! शत्रु सामने खड़ा चुनौती दे

रहा है, सारी सेना छिन्न-भिन्न हो गई है, नारी का अपहरण हो रहा है प्रतिष्ठा खतरे मे पड़ी हुई है, यह सब जानते हुए भी वासुदेव के दिल मे क्रोध की ज्वाला नही जाग रही थी। यही नही उनकी दाहिनी भुजा और दाहिनी आँख फड़क रही थी। अन्तर मे हर्ष का पूर उमड़ रहा था। वे प्रहार करने के लिए उद्यत होकर भी नही कर पाते थे।

अपनी इस अभूतपूर्व स्थिति पर उन्हें खिन्नता और चिन्ता हो रही थी। वह सोचने लगे-क्या कारण है कि इस व्यक्ति पर मेरा स्नेह उमड़ रहा है और क्रोध नही जाग रहा है! आखिर उन्होने कुमार से कहा—वत्स! तुमने युद्ध तो छेड़ दिया है, मगर तुम्हारे ऊपर मुझे क्रोध नही आता!

कुमार ने किंचित् अकड़ाई दिखला कर कहा—मै वासुदेव का पुत्र हूँ। मेरे सामने आपकी एक नही चलने की! आप क्रोध करके भी मेरा क्या बिगाड़ सकते है?

इतना कहकर कुमार ने अधिक चिढाने के लिए कहा—मैं आपसे अधिक कुछ नही चाहता। मै आपके पैरो पड़ता हूँ। मुझे केवल रुक्मिणी की भीख दे दीजिए।

यह दुस्सह वचन सुनते ही बलदेव के क्रोध का पारा एकदम ऊँचा चढ़ गया। बोले—यह दुष्ट यों नही मानेगा। इसके माथे पर मौत मँडरा रही है! यह कह कर उन्होंने कुमार पर प्रहार किया। कुमार ने एक ऐसा बाण चलाया कि बलदेवजी मूर्छित होकर गिर पड़े।

अब वासुदेव अकेले रह गये। कुमार ने हँसकर उनसे कहा—यदुनाथ ! आप क्यों व्यर्थ परेशान होते है। सकुशल लौट जाइए। रानी अब आपके हाथ नही आ सकती।

वासुदेव ने अत्यन्त खिन्न होकर, निरुपाय होकर अपना अन्तिम शस्त्र-सुदर्शन चक्र चलाया। मगर वह चला ही नही। तब वासुदेवजी अत्यधिक उद्विग्न हो उठे। अब विजय प्राप्ति की उन्हे कोई आशा न रही।

कुमार ने कृष्ण को भड़काने के उद्देश्य से ताना मारा—हरिजी ! अब भी लौट जाइए। क्यों एक नारी के लिए अपना अनिष्ट करते है ? आप बत्तीस हजार रानियों के स्वामी है। उनमे से एक कम हो गई तो क्या हो गया ? सन्तोष धारण कीजिये।

यह सुनकर कृष्णजी से न रहा गया। वह बुरी तरह खीझ उठे, वे दौड़े और कुमार के साथ मल्ल युद्ध करने लगे। दोनो एक दूसरे के लिए कालरूप प्रतीत होने लगे। बाप-बेटे मे भयानक युद्ध छिड़ गया।

रुक्मिणी से यह दृश्य न देखा गया। नारी जीवन बड़ा ही अनोखा है। नारी के लिए पुत्र भी प्राणों के समान है और पति भी प्राणों के समान है। वह दोनो मे से किसी का भी अनिष्ट, अमंगल नही देख सकती। रुक्मिणी पिता-पुत्र के इस भीषण संघर्ष को देख व्याकुल हो उठी। वह नारदजी से हाथ

जोड़ कर प्रार्थना करने लगी--बाबाजी ! यह संकट मेरे प्राणों का संकट है। न मै पुत्र की पराजय देख सकती हूँ और न पति की ही। दोनो का अनिष्ट मेरे लिए असह्य है! अनुग्रह करके बीच बचाव कीजिए। अन्यथा मेरे प्राण न बचेंगे! आपके सिवाय और किसी का प्रयत्न कारगर न होगा। मुझ पर दया कीजिए, मेरे पति-पुत्र की रक्षा कीजिए।

नारद ऋषि ने सान्त्वना देते हुए कहा--पुत्री! चिन्ता न करो दोनो समर्थ है। किसी का अमंगल होने वाला नही है।

इतना कह कर नारदजी उठकर समरभूमि की ओर रवाना हुए। रुक्मिणी की जांन मे जान आई।

: १० :

अपूर्व सम्मिलन

नारदजी उसी जगह आकर खड़े हो गये जहाँ पिता और पुत्र मे द्वन्द्व हो रहा था। उन्होने कृष्णजी को सम्बोधन करके कहा--कानजी यह क्या कर रहे हो? अपने प्रिय पुत्र के साथ मल्लयुद्ध करना अच्छा नही मालूम होता!

ऋषि की यह वाणी सुनकर वासुदेव अत्यन्त विस्मित हुए। वे चकित भाव से ऋषि की ओर देखने लगे।

इसी बीच प्रद्युम्नकुमार अपने प्रतापी पिता के पाद-पद्मों मे गिर पड़ा। उसने दोनो हाथ जोड़ कर कहा–पिताजी ! मेरा अपराध क्षमा हो ! मैंने केवल अपनी शक्ति को प्रकट करने के लिए यह उत्पात किया है। मेरी शक्ति आपकी ही शक्ति है ! बालक को क्षमा कीजिए।

हरि के हर्ष की हद न रही। उन्होने कुमार को हृदय से चिपटा लिया। उनका अन्तरंग आनन्द से परिपूर्ण हो गया। ऐसी तृप्ति का अनुभव हुआ, जैसे अमृतपान किया हो।

सपूत बेटे को देखकर सभी को प्रसन्नता होती है, फिर माता-पिता का तो कहना ही क्या है !

कृष्णजी अपने पुत्र का पराक्रम देख हर्ष विभोर हो गये। कहने लगे–धन्य, वत्स ! धन्य हो ! तुम अपने कुल को उज्ज्वल करने वाले हो ! तुमने प्रकट होते ही यदुकुल की कीर्ति पर कलश चढ़ा दिया। मै तुम्हे पाकर कृतार्थ हुआ !

इस प्रकार कह कर कृष्णजी बार-बार प्रद्युम्नकुमार का चुम्बन करने लगे। परन्तु शीघ्र ही उनका ध्यान अपने ज्येष्ठ भ्राता की ओर, जो मूर्छित होकर पड़े थे, आकृष्ट हो गया। उनकी मूर्छावस्था और सुभटो की दुर्दशा देख कर वे खेदखिन्न हो गये।

प्रद्युम्नकुमार अपने पिता के भाव को ताड़ गया। उसने अपनी विद्या समेट ली और सबको पूर्ववत् ज्यों का त्यों कर

दिया। अकस्मात ही सब सुभटो के घाव विलीन हो गये और चोट का दर्द भी जाता रहा।

सुभट पुनः सावधान होकर मारो-मारो की आवाज करने लगे। हलधर भी अपने शस्त्र सम्भालने लगे। यह सब देखकर वासुदेव ने मंद मुस्कान के साथ कहा—मार-मार कर किसको मारोगे? इस नवयुवक वीर ने तो हम सब के छक्के छुड़ा दिये है! यादव, कौरव और पाण्डव सभी एक साथ पराजित हो गये! एक वीर के सामने इतनी विशाल सेना भी न टिक सकी। किन्तु इस पराजय के लिए लज्जा अनुभव करने का कोई कारण नही है। ऐसी मधुर पराजय भाग्यवानों को ही सुलभ होती है। कहा भी है—

सर्वतो विजयम् इच्छेत् पुत्रादिच्छेत्पराजयम्।

सब के सामने विजय की कामना करने वाले को भी अपने पुत्र से तो पराजय की ही कामना करनी चाहिए।

वासुदेवजी के वचन सुनकर और कुमार का परिचय प्राप्त करके सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए और कुमार की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

कुमार विनम्र भाव से, हाथ जोड़कर आया। दशो दशार्ह को प्रणाम किया। सबने अपने हृदय से लगाकर शुभाशीर्वाद दिया।

उसके बाद कुमार वलदेवजी के सामने पहुँचा। वलदेवजी से उसे विशेष रूप से क्षमायाचना करनी थी। अतएव उनके

चरण छूकर कुमार ने कहा-दादाजी ! मै आपके प्रति अधिक अपराधी हूँ। एक बार सिंह के रूप मे मैने आपका अपराध किया है और दूसरी बार इस समर भूमि मे। आप मेरे मस्तक के छत्र है, बड़े है, क्षमादान दीजिए !

क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात ।

बलदेवजी की भावना परिवर्तित हो चुकी थी। रोष के बदले अब तोष की लहरे उनके मानस सर मे लहरा रही थी। कुमार की वीरता देखकर वे हृष्ट और तुष्ट थे। उन्होने कुमार को वक्षस्थल से लगा लिया और पुचकार कर कहा—शाबास बेटा, शाबास ! तू यादवकुल मे भास्कर के समान प्रकाश करने वाला जनमा है ! तेरी वीरता और कुशलता देख हमे अत्यन्त प्रसन्नता होती है।

तत्पश्चात् पाण्डव, कौरव आदि राजा कुमार से मिले। सेनापति आदि ने भी कुमार का यथोचित अभिवादन किया।

द्वारिका मे पैर धरते ही प्रद्युम्नकुमार ने अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। सच है—

बालस्यापि रवेः पादाः, पतन्त्युपरि भूभृताम् ।
तेजसा सह जातानां, वयः कुत्रोपयुज्यते ?॥

बाल-सूर्य के भी पाद-किरण पर्वतों के ऊपर पड़ते है। जो पुरुष तेज के साथ ही उत्पन्न होते है, उनकी उम्र का खयाल नही किया जाता। वे अल्पवय मे ही अपने असाधारण तेज को प्रकट करके दीर्घवय वालों को भी अभिभूत कर देते है।

इधर मेल मिलाप हो रहा था और उधर भानुकुमार प्रद्युम्न का पता पाते ही सत्यभामा के पास भागा। समरभूमि के समग्र समाचार जानकर सत्यभामा के पैरो तले की भूमि खिसकने लगी। प्रद्युम्न को आते देर नही हुई और उसने अपनी वीरता, तेजस्विता और कुशलता का ऐसा सिक्का जमाया कि सर्वत्र उसकी वाह्-वाह् होने लगी। भानुकुमार उसके तेज के समक्ष ऐसा निस्तेज पड़ गया जैसे सूर्य का उदय होने पर चन्द्रमा फीका पड जाता है। वह एकदम पिछड़ गया! सत्यभामा को यह सोचकर जो व्याकुलता हुई, उसका वर्णन नही किया सकता। मगर उसकी व्याकुलता के दूर होने की कोई दवा भी नही थी।

ईर्षा मनुष्य की शान्ति को भंग करने वाला दुर्गुण है। ईर्षा वह अग्नि है जिसमे पड़कर मनुष्य बेचैन हो जाता है, निरन्तर जलता रहता है। ईर्षालु जन यह नही सोचता कि पर के उत्कर्ष को देखकर जलने से क्या लाभ है? इससे परोत्कर्ष कम नही हो सकता और ईर्षा करने वाले को कुछ नही मिल सकता। उलटी वह अपनी शान्ति खो बैठता है। सत्यभामा प्रद्युम्नकुमार और रुक्मणी के बढ़ते हुए उत्कर्ष को देखकर जलने लगी ; उसने अपनी शक्ति को गवाँ दिया!

इधर प्रद्युम्नकुमार जब सब के साथ मेल-मिलाप कर चुका तब आकाश मे स्थित विमान को उसने नीचे उतारा। उदधिकुमारी को देखकर लोग दंग रह गये और कुमार के विक्रम एवं कौशल की भूरि-भूरि सराहना करने लगे।

बलदेव और वासुदेव का हृदय बांसो उछल रहा था। उन्होने नगरी को सुसज्जित करने का आदेश दिया। सम्पूर्ण द्वारिका तोरणों एवं ध्वजा-पताकाओं आदि से सुशोभित हो गई। सड़कों पर सुगन्धित जल का छिड़काव किया गया। पथ मे पुष्प बिछा दिये गये। सब तैयारी हो जाने के अनन्तर धूमधाम और शान-शौकत के साथ कुमार का नगर-प्रवेश हुआ। पिता-पुत्र और बाबा बलदेवजी ऐरावत के समान सुन्दर गज पर आरूढ़ हुए। चामर और छत्र ढ़ोरे जा रहे थे। वाद्यों की ध्वनि आकाश-मण्डल को गुन्जा रही थी। नर्तकीयां आगे-आगे नृत्य और मंगलगान करती जाती थी। मोतियों की वर्षा की जा रही थी। इस प्रकार चलते-चलते सब लोग बाजार के मध्य मे पहुंचे। कृष्णजी आदि को देखने के लिए भारी भीड़ एकत्र हो रही थी। नर, नारी, बालक, वृद्ध और युवा सभी उस स्वर्गोपम दृश्य को देखने के लिए उत्कंठित होकर सड़क के दोनो किनारे खड़े थे। छतों पर और छज्जों पर इतनी, भीड़ थी, कि तिल-धरने की भी जगह खाली नही थी। जिधर देखो उधर ही मानव समुदाय दिखाई देता था।

प्रद्युम्नकुमार अपनी अनोखी आभा का विस्तार करता हुआ सब की ओर अनुराग भरी नजर डालता चल रहा था। उसके सौन्दर्य और तेज को देखकर लोग चकित रह जाते थे। स्त्रियां परस्पर कह रही थी—धन्य है माता रुक्मिणी, जिन्होने देवोपम कुमार को जन्म दिया है! यदि माता पुत्र को जन्म दे तो प्रद्युम्न के समान ही पुत्र को जन्म दे। जो अपने कुल को उज्ज्वल करने वाला हो और अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व का सिक्का जमा सके।

कृष्णजी आदि सब रुक्मिणी के महल तक पहुँचे। हाथी से उतर कर सब भीतर गये। वहाँ सब परिवार एकत्र हुआ! आनन्द-मंगल होने लगा। हर्ष के नगाड़े बजने लगे। कुमार स्वजनों से आवृत्त और सभी के नेत्रों का लक्ष्य हो रहा था। थोडे समय के वार्तालाप के पस्चात् सब अपने-अपने स्थान पर चले गये।

कृष्ण, रुक्मिणी और कुमार अब एकान्त मे बैठे थे। तीनों अतीव प्रीति के साथ एक दूसरे के मुख को देख रहे थे। तीनों के नेत्रों से मानो अमृत की वर्षा हो रही थी। एक-दूसरे को देख-देख कर अपूर्व आल्हाद का अनुभव कर रहे थे।

कुमार के विषय मे कृष्णजी कहने लगे—बाल्यावस्था मे मैंने भी अनेक विस्मयजनक कौतुक किये थे, परन्तु कुमार मे मेरी अपेक्षा भी अधिक कौशल है! सचमुच, यदुवंश का महान् सौभाग्य है कि उसमे प्रद्युम्न ने जन्म ग्रहण किया है। ऐसे पुत्र-रत्न को पाकर कौन निहाल नही हो जाता?

कुमार ने कहा—पूज्यवर! आप पुत्रस्नेह से प्रेरित होकर मेरी प्रशंसा कर रहे है। वास्तव मे मै किस योग्य हूँ? मेरी समस्त शक्तियाँ आपकी ही देन है। मेरा सर्वस्व आपका ही है।

: ११ :
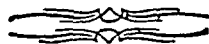
कुमार की उदारता

कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर, एक दिन दुर्योधन श्रीकृष्ण के पास आकर कहने लगा—स्वामिन् ! मेरी कन्या उदधिकुमारी आपकी पुत्र-वधू है। किन्तु इस समय वह विचित्र परिस्थिति मे है। जब तक उसके भाग्य का निर्णय नही हो जाता, तब तक मै भी लौट नही सकता। समय बहुत हो चुका है। कृपया शीघ्र उसके भविष्य का निश्चय कर दीजिये।

श्रीकृष्ण– आपके कहने के पहले ही से यह चिन्ता मेरे चित्त मे व्याप रही है। प्रद्युम्नकुमार महान योद्धा और बलशाली है। उसने उदधिकुमारी को युद्ध करके प्राप्त किया है। ऐसी स्थिति मे किस प्रकार उससे आपकी कन्या माँगी जा सकती है ?

दुर्योधन—नही, ऐसा करने की कोई आवश्यकता नही है। मै अपनी कन्या का प्रद्युम्नकुमार के साथ विवाह-सम्वन्ध करना चाहता हूँ। ऐसा करना मेरे लिए प्रसन्नता का कारण है और इससे आपकी उलझन भी दूर हो जाती है।

श्रीकृष्ण–देखिए, क्या कैसा होता है !

इसी समय प्रद्युम्नकुमार वहाँ आ पहुँचे। इन्हे आया देख

कृष्णजी और दुर्योधन चुप हो गये। कुमार के कानों मे उनके वार्तालाप की भनक पड़ गई थी। वह उदधिकुमारी के पास गया और उसे अपने साथ लेकर पिता के पास आया। बोला-पिताजी, उदधिकुमारी आपके समक्ष है। इसे लीजिए और जो उचित हो सो कीजिए। मेरे कारण आप किसी भी प्रकार की चिन्ता मे न पड़े।

कृष्णजी कुमार की उदारता देख सन्तुष्ट हुए। कहने लगे–वत्स! तुमने युद्ध मे विजय के साथ उदधिकुमारी को प्राप्त किया है। तुम्ही इसका पाणिग्रहण करने के अधिकारी हो। किसी भी प्रकार का संकोच न करो। ऐसा करने की मेरी अनुमति है।

कुमार–यह मेरे लघुभ्राता की नारी है, इस कारण मेरी पुत्री के समान है। आप जो उचित समझे, कीजिए। मै इसे अंगीकार नही कर सकता। मेरी ओर से कहीं कोई बाधा न समझिए।

कुमार नीति और धर्म का ज्ञाता था। उसके उदात्त मनोभावना दुर्योधन और कृष्णजी ने वहुत प्रशंसा की।

: १२ :

विवाह-समारोह

वासुदेव एक दिन रुक्मिणी के महल मे बैठे, रुक्मिणी के साथ इधर-उधर की बाते कर रहे थे। बातचित मे कुमार का प्रसंग छिड़ गया। तब रुक्मिणी ने कहा-नाथ! कुमार का विवाह-समारोह देखने की उत्कण्ठा है। हृदय चाहता है, कब कुमार का पाणिग्रहण संस्कार देखूँ! इस विषय मे आपका क्या विचार है? कृपया वतलाइए।

वासुदेव-शीघ्र ही तुम्हारी अभिलाषा पूरी होगी। कल मै दूत भेजकर आत्मीय-जनो और स्नेही-जनो को आमन्त्रित करता हूं।

दूसरे दिन राजसभा मे पहुंचकर वासुदेव ने अपने प्रधान अमात्य को बुलवाया और कहा-प्रद्युम्नकुमार के विवाह की तैयारिया आरम्भ कर दीजिए। विलम्ब नही होना चाहिए। समस्त द्वारिका सजाई जाय, समग्र सेना सुसज्जित की जाय, महलों को सजाया जाय और आगत अतिथियों के स्वागत, भोजन, पान, विश्राम आदि की समुचित व्यवस्था की जाय। सब अनुचरों को यथायोग्य काम-काज का बँटवारा कर दीजिए।

प्रधान अमात्य-जो आज्ञा महाराज की!

वासुदेव—और देखिए, कुमार के पालक-पिता राजा यमसंवर को बुलाना है। उन्हें सपरिवार आने का आमन्त्रण दूत के साथ शीघ्र भेज दीजिए। यह काम सबसे पहले कर डालिए।

प्रधान अमात्य ने उसी समय विद्याधर-दूत को राजा यमसंवर के पास भेजदिया। दूत वहा पहुँचा और उसने कुमार का सब समाचार उन्हे सुनाया। यमसंवर आदि समस्त सज्जन पुण्य की अप्रतिम प्रतिमा प्रद्युम्नकुमार का वृतान्त सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उससे मिलने की उनकी उमंग बलवती हो उठी।

राजा यमसंवर ने प्रद्युम्नकुमार की पहली ससुराल मे भी समाचार भेज दिये। वे लोग भी कुमार के कुशल-समाचार ज्ञात कर प्रमुदित हुए और सजधज के साथ यमसंवर के घर आ पहुंचे। अब सब एकसाथ द्वारिका चलने को तैयार हुए। यमसंवर का समस्त परिवार और सैन्य सुसज्जित हो गया। एक विशाल विमान बनाया गया। उसमे बैठ कर कनकमाला आदि रानियों के साथ यमसवर ने द्वारिका की ओर प्रस्थान किया।

नाना प्रकार की ध्वजा-पताकाओं को फहराता हुआ, विविध वाद्यों की ध्वनि से व्योमतल को मुखरित करता हुआ राजा यमसंवर का विशाल दल द्वारिका के ऊपर आ पहुंचा। अपूर्व शोभा से समन्वित विद्याधरों के दल को देख कर द्वारिकावासी चकित रह गये। नगरी मे एक प्रकार की खल-

वली मच गई। सर्वत्र उमंग, उत्साह और हर्ष दिखाई देने लगा।

द्वारिका के बाहर राजा यमसंवर ने पड़ाव डालकर अपने आगमन की सूचना देने के लिए दूत भेजा। दूत के द्वारा अपने प्रिय अतिथियो का आगमन जानकर वासुदेवजी आदि को अपार हर्ष हुआ। वे बलदेवजी आदि समस्त परिवार को साथ लेकर विद्याधर राजा यमसंवर का स्वागत करने चले। आपस मे मिलकर, प्रेमपूर्ण आलाप करके और अपना सन्तोष व्यक्त करके उन्हे आदरपूर्वक उतारे पर लाये।

रुक्मिणी और कनकमाला का मिलन बहुत भावपूर्ण था। दोनो को अत्यन्त प्रसन्नता थी। रुक्मिणी ने कहा—बहिन ! मै अपनी कृतज्ञता किन शब्दो मे व्यक्त करूं? आपका मुझ पर असीम उपकार है। आपने मेरे नन्दन की प्राणरक्षा की है, उसे अपने ही पुत्र की तरह पाला है और उसे योग्य बनाया है! मैं आपके ऋण से कभी मुक्त नही हो सकूंगी। आपकी बदौलत ही आज की यह शुभ घड़ी देखने को मिली है।

कनकमाला ने कहा—देवी ! मेरा उपकार स्वीकारकर के आप अपने सौजन्य को प्रकट कर रही है। वास्तव मे मैने आपका क्या किया है ? मैने जो कुछ किया, अपने सुख के लिए ही किया है, मैने निपूती थी, प्रद्युम्न ने मुझे पुत्रवती बना दिया ! प्रद्युम्न की बदौलत मेरा गौरव बढ़ा। मै अपनी सौतो मे सर्वश्रेष्ट बन सकी। प्रद्युम्न की जननी आप है। अतएव उसका समस्त श्रेय आपके हिस्से मे ही आता है।

रुक्मिणी–आपकी सज्जनता सराहनीय है! आपके दर्शन करके मुझे बहुत हर्ष हुआ है।

कनकमाला–बहिन! आपके स्नेह का प्रतिदान मैं किस प्रकार करूँ, यह समझ मे नही आता।

विद्याधर नरेश का असीम ऐश्वर्य देखकर द्वारिकावासी प्रसन्न थे। वे सोचते थे–कुमार प्रद्युम्न अतिशय पुण्यशाली हैं, जिन्होने एक समान सम्पन्न दो घर पाये! वास्तव मे पुण्य की महिमा अपरिमित है। पुण्यवान् पुरुष के लिए विश्व मे कोई भी वस्तु दुर्लभ नही है। संसार की समस्त समृद्धि उसकी दासी है। कुबेर का भण्डार उसकी मुठ्ठियों मे दबा रहता है। उसकी दृष्टि में लक्ष्मी का वास होता है। उसके समस्त मनोरथ अनायास ही सफल होते है। पुण्य के प्रभाव से मनुष्य सर्वत्र आदर–सन्मान पाता है। पुण्य से संसार के सभी सुख सुलभ जाते है। देखो न कुमार वहा गये तो ऋद्धि का भण्डार मिला और यहा तो वे तीन खण्ड के नाथ के ज्येष्ठ पुत्र है ही!

तात्पर्य यह है कि इस वृहत् परिवार को देख-देखकर सभी लोग हर्ष का अनुभव करने लगे। हर्ष नही था तो सिर्फ सत्यभामा और भानुकुमार को! यह मां–बेटे प्रद्युम्न के बढ़ते हुए प्रभाव को देख-देखकर ईर्षा की आग मे झुलसे जा रहे थे।

रुक्मिणी के घर आनन्द- वधाइयां हो रही थी। मंगला-चरण हो रहा था। बड़े-बड़े मेजवानोंकी चहल-पहल थी। ठाठ लग रहा था।

भूचरी (रुक्मिणी) और खेचरी (कनकमाला) की उमंग मन मे नही समाती थी। उनका उत्साह देखने ही योग्य था! आखिर पचास सुन्दरी कन्याओं का उबटन हुआ। उन्हे स्नान कराया गया और महा मूल्यवान आभूषण पहनाये गये। सुन्दर वस्त्रों और आभूषणो से सुसज्जित हुई कन्याएं अप्सरा के समान दिखाई देने लगी।

उधर प्रद्यूम्नकुमार भी विवाहोचित वेष मे अद्भुत सुन्दर दिखाई देने लगा। उसे इत्र-फुलेल लगाया गया, केसर-कस्तूरी का तिलक लगाया गया, उसे जरीदार केसरिया जामा पहनाया गया। ऊपर से कमरबंध बाँध दिया गया। रत्नमय मुकुट सिर पर शोभायमान होने लगा। तुर्रा ऐसा जान पड़ता था, मानो कुमार का प्रताप ऊर्ध्वलोक को उद्भासित करने के लिए ऊपर जाने को उद्यत हो रहा है।

कुमार के कानो मे कुण्डल झिलमिला रहे थे, वक्षस्थल पर मुक्ता-हार अपनी अपूर्व दमक दिखला रहा था। रत्नजटित भुजबन्ध और कटक की शान ही निराली थी। कमर मे रत्नमय कटि-सूत्र शोभायमान था। उत्तम जरी की किनारी वाली रेशमी धोती और दोनो पैरों मे सुवर्ण-जटित उपानह सोह रहे थे। इस प्रकार नानाविध वस्त्राभूषणों से सुशोभित कुमार ऐसा मालूम होता था, मानो कल्पवृक्ष ही सामने खड़ा हो!

कुमार एक अनुपम अश्व पर सवार हुआ। अश्व की शोभा भी अद्भुत ही थी। उसे भारी-भारी गहने पहनाये गये थे।

उसपर मखमली काठी जमाई गई थी। उस अश्व पर आरूढ़ कुमार को देख सुरेन्द्र और नरेन्द्र भी मुग्ध हो गये! सबने मिलकर जय-जयकार किया। घोड़ा थेई-थेई करता नाचता हुआ आगे बढ़ा। कुमार उनकी लगाम खीचे हुऐ था। मंगल-वाद्य बज रहे थे। आसपास का वातावरण सौरभ से महक रहा था। सौरभ के लोभ से आकृष्ट भ्रमरो की पंक्तियाँ गुनगुना रही थी। अनोखी चहल-पहल थी।

वासुदेव, वलदेव, यमसंवर आदि नृपतिगण आनन्द की उत्ताल तरंगो मे वहे जा रहे थे। दशार्हों की अपनी शान-शौकत भी देखने योग्य थी। सब लोग गजराजों पर आरूढ़ होकर कुमार के पीछे-पीछे चल रहे थे। कनकमाला, रुक्मिणी आदि खेचरियाँ और भूचरियाँ अत्यन्त उमंग के साथ, मधुर आलाप करके मंगलगीत गा रही थी। और कुमार के पीछे रथो पर आरूढ़ होकर चल रही थी। वास्तव मे उस समय की शोभा निराली ही थी। चहुं ओर उत्साह और उमंग थी। उस दृश्य का वर्णन नही हो सकता। यादव-परिवार और वहां उपस्थित सभी नर-नारी पूर्ण-रूपेण हर्ष मे निमग्न हो रहे थे।

कुमार रुक्मिणी के महल से रवाना होकर, मध्य वाजार मे होता हुआ और द्वारिकावासियो को आनन्द के सागर मे डुबाता हुआ एक सुरम्य और सुसज्जित उद्यान मे पहुंचा। वहां विवाह विधि के लिए वनाये गये सुशोभित मण्डप मे शुभ मुहूर्त के समय पचास कन्याओं के साथ कुमार का पाणिग्रहण हुआ। पाणिग्रहण की विधि सम्पन्न होने पर नववधुओं के साथ सव लोग वापिस लौट आये।

जैसे इन्द्राणी के साथ इन्द्र और रति के साथ कामदेव आनन्दपूर्वक समय यापन करता है, उसी प्रकार प्रद्युम्न भी अपनी पत्नियों के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

विद्याधर नरेश यमसंवर प्रद्युम्नकुमार की यह समृद्धि देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। वासुदेव आदि के आग्रह से विवाह के पश्चात भी कुछ दिन वहीं ठहरा। फिर सब की आज्ञा लेकर अपने साथियो के साथ रवाना हो गया।

पुण्य के प्रताप से कुमार को सब प्रकार के सुख प्राप्त थे। वास्तव मे पुण्य ही मनुष्य को सुख प्रदान करता है। साधारण लोग सुख की अभिलाषा तो करते है, परन्तु सुख की सामग्री संचित नही करते। जब तक सुख की सामग्री न होगी, सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? जैसे वृक्ष के अभाव से फल नही प्राप्त होते, उसी प्रकार शुभ कर्म किये बिना सुख प्राप्त नहीं होता। अतएव सुख की अभिलाषा रखने वालों को पाप का आचरण त्यागकर पुण्य का आचरण करना चाहिए।

नर जन्म पाना श्रेष्ठ कुल शुभ जाति का मिलना कठिन,
धन धान्य आयु सुदीर्घ अरु आरोग्यतामय हो वदन,।
सुत मित्र त्रिय विद्या विभव स्वाधीन इन्द्रिय-मन दमन,
प्रभुभक्ति और उदारता का पुण्य द्वारा हो मिलन ॥

भव्य प्राणियों! अगर आप सौभाग्य के फल पाना चाहते है तो सौभाग्य का निर्माण कीजिए। सौभाग्य के बीज

बोये विन सुख-रुप अभीष्ट फल की प्राप्ती होना सम्भव नही है। प्रद्युम्न सांसारिक दृष्टि से परिपूर्ण सुखों का जो उपभोग कर रहा है, उसका एकमात्र कारण उसका धर्माचरण ही है। धर्म का आचरण इहलोक और परलोक सम्बन्धी सुखो का जनक है।

धम्मेण कुलपसूई, धम्मेण य दिव्वरूवसंपत्ती।
धम्मेण धणसमिद्धी, धम्मेण सुवित्थडा कित्ती॥

धर्म के प्रभाव से ही उत्तम संस्कार वाले कुल मे जन्म होता हैं, धर्म से ही दिव्य रुप की प्राप्ति होती है, धर्म से ही धन-समृद्धि प्राप्त होती है और धर्म के ही प्रताप से जगत् में कीर्ति का विस्तार होता है।
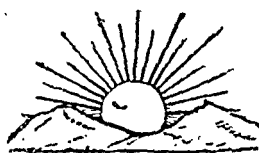
पंचम स्कन्ध

: 9 :

मित्र प्राप्ति

पाठकों को स्मरण होगा कि प्रद्युम्नकुमार पूर्वभव मे मधु राजा के रूप मे था। मधुराज के लघुभ्राता का नाम कैटभ था। दोनों सहोदर भाईयों ने संयम ग्रहण करके और तीव्र तपश्चरण करके देवगति प्राप्त की थी। मधु का जीव देवलोक की आयु पूर्ण करके प्रद्युम्नकुमार के रूप मे उत्पन्न हुआ था। कैटभ का जीव अभी तक बारहव स्वर्ग मे देवता के रुप मे था।

कैटभ देव एक बार सीमन्धर स्वामी की सेवा मे पहुँचा। भगवान सीमन्धरजी को वन्दन-नमस्कार करके और उनका उपदेश सुनकर उसने अपने आपको भाग्यशाली समझा। तत्पश्चात् उसे अपने पूर्वभव का वृतान्त जानने की अभिलाषा हुई। उसने अत्यन्त विनयभाव से जिनवर सीमन्धर भगवान से निवेदन किया—हे वितरागदेव! मेरे मन मे अपना पूर्वभव का वृत्तान्त जानने की उत्कण्ठा जागृत हुई है। प्रभो! आप परम दयालू है। घट-घट की बात जानते है। जगत् के जीवो के निष्काम बन्धु है। मोह से विमूढ़ बने हुए जीवो का अनन्त उपकार

करने वाले है। अज्ञान-अन्धकार मे आकण्ठ निमग्न प्राणियो को ज्ञान-नयन देने वाले है। अनुग्रह करके मुझे पूर्वभव का वृत्तान्त सुनाइए।

सीमन्धर स्वामी ने देव की प्रर्थना से प्रेरित होकर उसे पूर्वभव का वृत्तान्त सुनाया। उसे सुनकर देव हर्षित हुआ। उसने फिर प्रश्न किया—प्रभो! मेरे जेष्ठ भ्राता मधु कहाँ जन्मे है?

सीमन्धर स्वामी—दक्षिण भरत मे, द्वारिका नगरी मे, कृष्ण वासुदेव की वल्लभा पटरानी रुक्मिणी की कूँख से, उनका जन्म हुआ है।

देव—प्रभो! उनका नाम क्या है?

सीमन्धर स्वामी—प्रद्युम्न। उसे प्रद्युम्नकुमार भी कहते है प्रद्युम्न का अर्थ है—कामदेव। प्रद्युम्न कामदेव के रुप मे अवतरित हुआ है।

देव दीनदयाल! मेरे आगामी भव मे उनके साथ मेरा मिलाप होगा या नही?

सीमन्धर स्वामी—होगा। तुम भी कृष्ण के पुत्र के रुप मे जन्म ग्रहण करोगे। प्रद्युम्न तुम्हारा सौतेला भ्राता होगा।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् सीमन्धर स्वामी के मुखचन्द्र से झरे हुए सुधामय वचन सुनकर कैटभ—देव अतीव आनन्दित हुआ। भगवान् को यथाविधी नमस्कार करके वह वहाँ से रवाना हो गया।

जिन भगवान् के मुख से अपना भविष्य सुन करके कैटभ–देव ने सोचा –जहाँ आगे जन्म लेना है उसी भुमि को और जिस परिवार मे जीवन यापन करना है, उसी परिवार को एक बार देख लूं तो अच्छा हो। अपने जन्म लेने की बात वासुदेव को बता देने मे भी क्या हानि है? यह सोच कर देव सीधा द्वारिका की ओर चल पड़ा।

देव द्वारिका की शोभा देखता हुआ सीधा कृष्णजी के पास पहुँचा। पहले तो देवता को आता देख उन्हे किंचित् विस्मय हुआ, किन्तु जब उसने अपना भविष्यत् वृत्तान्त सुनाया तो अपार हर्ष भी हुआ। देवता ने कहा—सीमन्धर स्वामी ने बताया है कि मै आपके यहाँ जन्म ग्रहण करुँगा। प्रद्युम्न-कुमार के साथ मेरी अनुपम प्रीति होगी।

इतना कहकर देव ने एक दिव्य हार वासुदेव को प्रदान किया। बतलाया–जो रानी इस हार को धारण करेगी, उसी के उदर से मेरा जन्म होगा।

हार देकर देवता चला गया। वासुदेव सोच-विचार मे पड़ गए कि किस रानी को यह हार देना उचित होगा ? थोडे समय के विचार मंथन के पश्चात् उन्होने सत्यभामा को हार देने का निश्चय किया उन्होने सोचा– सत्यभामा और रूक्मिणी के बीच सदैव मनसुटाव रहता है। दोनो आपस मे खिची रहती है। दोनो के पारस्परीक विरोध के कारण उनका जीवन अशान्त और व्याकुल बना रहता है। अगर यह देव सत्यभामा के उदर से जन्म ग्रहण करेगा तो प्रद्युम्न के साथ

उसकी प्रीति होगी । जब दोनों रानियों के कुमार पारस्परिक अनुराग के गाढ़े बंधन मे बन्धे रहेगे तो वे दोनों भी आपस मे हिल-मिलकर रहेगी । क्लेश मिट जायेगा । विरोध शान्त हो जायेगा । पारिवारिक अशान्ति मिट जायेगी ।

इस प्रकार निश्चय करके वासुदेव ने सत्यभामा को बुलवाया । उसी समय विद्या ने प्रद्युम्नकुमार को इस घटना की सूचना दे दी ।

प्रद्युम्नकुमार ने विद्या की सहायता से सत्यभामा को किसी काम मे लगा के और आप रुक्मिणी के पास पहुँचा । हार का सारा रहस्य अपनी माता के समक्ष प्रकाशित करके उसने माताकी इच्छा पूछी । माता ने कहा-- मुझे अपने लिए हार की अभिलाषा नही है । कोटि-कोटि पुत्र के सदृश तू एक ही पुत्र मेरे लिए पर्याप्त है । तुझे पाकर मै सन्तुष्ट हूँ । दूसरे पुत्र की मुझे किंचित् भी कामना नही है । सपूत बेटा तो एक हीं पर्याप्त है ।

एकोऽपि गुणवान् पुत्रो निर्गुणैः किं शतैरपि ।
एकश्चन्द्रो जगच्चक्षुर्नक्षत्रैः किं प्रयोजनम् ॥

सैकड़ो गुणहीन पुत्रों की अपेक्षा एक गुणवान पुत्र का होना भला ! अकेला चन्द्रमा सारे संसार को सौम्य प्रकाश देता है, अपने उज्ज्वल आलोक से सकल लोक को आलोकित और उद्भासित कर देता है, बहुतेरे नक्षत्र मिलकर भी ऐसा नही कर सकते ।

रुक्मिणी ने कहा–वत्स ! चन्द्रमा के समान आल्हाद-जनक तू एक ही मेरे लिये पर्याप्त है। तुझे पाकर मै निहाल हो गई हूँ। अब दूसरे पुत्र का मुझे क्या करना है ? बाहुबली अपनी माता के इकलौते पुत्र थे। रामचन्द्र कौशल्या के अकेले बेटे थे। लक्ष्मण और भीष्म भी अपनी-अपनी माताओ के अकेले-अकेले सुपुत्र थे। उन माताओं को क्या कमी रह गई ? उनके इकलौते पुत्रो ने उन्हे अमर बना दिया है। आज भी अपने बेटों की बदौलत उन माताओं की कीर्ति जगत् मे व्यापी हुई है ! उन माताओ ने बहुसंख्यक पुत्र पाने की कामना नही की, किन्तु अपने एक ही पुत्र को सुन्दर संस्कारों और सद्‌गुणो से सुशोभित करने की ओर ध्यान दिया। परिणाम यह आया कि उन्हे सुख भी मिला, यश भी मिला, उनके द्वारा जगत् को दिये हुए उत्तम उपहार से विश्व का मंगलसाधन भी हुआ। वही माता बुद्धिमती है जो अपने पुत्र को योग्य और सद्‌गुणी बनाने का प्रयास करती है। पुत्रो की फौज खड़ी करने से कोई लाभ नही होता।

कुमार—तो वह हार सत्यभामाजी को दिया जाना तुम्हे पसन्द है ?

रुक्मिणी–सत्यभामा को दे दिया जाय तो भी मेरी कोई हानि नही है। पर वे भी कहा निपूती है ? भानुकुमार को पाकर उन्हे भी सन्तोष होना चाहिए।

कुमार–तो फिर हार किसे मिलना चाहिए ?

रुक्मिणी–वत्स ! अगर मेरी चले तो मै कहती हूँ कि वह

हार जाम्ववती को मिलना चाहिए। जाम्ववती अत्यन्त सरल हृदय और भोली है। इसी कारण वह मुझे भी अपने प्राणो के समान प्यारी है। तुम ऐसा प्रयत्न करो कि उस वेचारी को वह हार मिल जाय।

× × × × ×

कुमार प्रद्युम्न अपनी माता की अभिलाषा जानकर सीधा जाम्बवती के महल पहुँचा। हार के सम्बन्ध का सारा हाल सुनाया। जाम्बवती अतीव उत्कण्ठित हुई। उसने कहा— कुंवर! जिस प्रकार भी सम्भव हो मुझे हार दिला दो। मै तुम्हारा उपकार नही भुलूँगी।

कुमार—ठीक है मां! मै प्रयत्न करूंगा और विश्वास है कि सफलता भी प्राप्त कर लूँगा।

इसके पश्चात् प्रद्युम्नकुमार ने जाम्बवती को अपनी विद्या के प्रभाव से सत्यभामा के अनुरुप बना दिया। उसे देखकर कोई नही कह सकता था कि यह सत्यभामा नही है।

उधर असली सत्यभामा काम मे उलझी हुई थी और इधर सत्यभामा रूपधारिणी जाम्बवती वासुदेव के निकट जा पहुँची।

कृष्णजी उसे साथ लेकर वसन्त क्रीड़ा करने के हेतु वाग मे गये। कुछ समय तक आनन्द-विनोद करने के पश्चात् कृष्णजी ने उसे हार प्रदान कर दिया।

जाम्बवती हार धारण करके बहुत प्रसन्न हुई। उस हार का मूल्य एक सुन्दर आभूषण के रूप मे ही नही था, वरन उसका मुल्य एक दैवी सन्तान की प्राप्ति के रूप मे था। इस कारण जाम्बवती को इतनी प्रसन्नता हुई, जैसे पुत्र की प्राप्ति हुई हो। वह प्रसन्न होती हुई अपने महल मे चली गई।

थोड़ी ही देर हुई थी कि सत्यभामा हार पाने की अभिलाषा से कृष्णजी के पास आ पहुंची। आते ही उसने कहा——क्षमा चाहती हूँ। नाथ आने मे विलम्ब हो गया। लाइए, वह हार कहां है!

कृष्णजी चकित रह गये! उनकी समझ मे ही न आया कि सत्यभामा यह क्या कह रही है। अभी-अभी हार लेकर गई है और अभी फिर वही हार मुझ से माँग रही है!

अत्यन्त विस्मित भाव से उन्होने सत्यभामा की ओर देखा। उनके देखने का ढंग देखकर सत्यभामा को भी आश्चर्य हुआ। वह न समझ सकी कि कृष्णजी इस प्रकार घूरकर मेरी ओर क्यो देख रहे है!

पहले सत्यभामा ने ही नीरवता भंग की। बोली—आपने ही तो हार लेने के लिए वुलाया था और अव मेरी ओर मौन होकर देख रहे है!

कृष्ण—सत्यभामा! तुम्हे आज क्या हो गया है? पागल तो नही हो गई?

सत्यभामा–क्यों ? क्या आपने सन्देश नही भेजा था ?

कृष्ण––भेजा था, पर हार भी तो मै तुम्हे दे चुका हूं !

सत्यभामा–क्या कह रहे है आप ? मै पहले आई कब हूं ? कुछ जरुरी काम से रूक गई थी।

कृष्णजी के आश्चर्य का पार नही रहा। वे समझ गये कि मुझे किसी ने धोखा दिया है। किन्तु मर्म की बात सत्यभामा के सामने प्रकट कर देना उचित न समझ कर उन्होने कहा–अच्छा मेरा तो यही ख्याल था। बैठो, देता हूं।

यह कहकर कृष्णजी ने दूसरा हार निकाला और सत्यभामा को भुलावे मे डालकर उसे दे दिया। भोली भामा समझी वही यह दैवी हार है !

सच है, इष्ट वस्तु की प्राप्ति पुण्य के बिना नहीं होती। चाहते तो सभी है कि हमे उत्तम वस्तु की प्राप्ति हो, मगर पाते वही है जिनके पल्ले मे पुण्य होता है। पुण्य और पाप के अनुसार ही सब को संयोग मिलते है।

नर एक का संसार में लाखों करे सन्मान जी,
नर एक भूखा रो रहा मुट्ठी न मिलता धान जी।
नर एक हाथी अश्व पर चढ़कर चढे सुखपालजी,
नर एक बोझे से लदे सिर पर न रहते बालजी ॥

इस विषमता का क्या कारण है ? इसका एकमात्र कारण पुण्य और पाप ही है। जिसने पुण्य के मधुर बीज बोये है, वह

मधुर फल का अधिकारी होता है। जिसने पाप के विषमय काँटे बोये है, उसे मधुर फल कैसे प्राप्त हो सकते है। उसे तो काँटे ही मिलेंगे।

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।

इस आत्मा ने पहले जो भले या बुरे कर्म किये है, उन्ही का शुभ या अशुभ फल पाता है। वर्तमान मे जो कर्म कर रहा है, उसका फल भविष्य मे मिलेगा। अतएव प्रत्येक क्रिया करते समय मनुष्य को सोच लेना चाहिये कि वह इस कार्य को करके अपने भविष्य का निर्माण कर रहा है। इस प्रकार का विवेक जागृत रहने से मनुष्य अकार्य मे प्रवृत्ति नही कर सकता।

जाम्बवती के प्रबल पुण्य का उदय आया तो उसे असली हार अनायास ही मिल गया। मक्खन-मक्खन उसने ले लिया। छाछ बच रही थी सो सत्यभामा के पल्ले पड़ी।

संयोगवश सत्यभामा और जाम्बवती दोनो साथ-साथ गर्भवती हुई। दोनो का गर्भ क्रमशः वृद्धिगत होता गया। गर्भ का काल परिपूर्ण होने पर जाम्बवती ने एक सुन्दर और अतिशय सुकुमार पुत्ररत्न का प्रसव किया। कैटभ देव का जीव अतिशय रुपराशि लेकर अवतीर्ण हुआ। उसके सौन्दर्य को देखकर ऐसा आभास होता था कि वह अपने देवभव का दिव्य रुप अपने साथ ही लेता आया है।

उन्ही दिनो सत्यभामा ने भी एक पुत्र को जन्म दिया।

वह भी पुण्यशाली जीव था। उसके लक्षणो और व्यञ्जनों से प्रतीत होता था की वह बालक भी अतिशय पुण्यात्मा है। उसने अपने जन्म से माता के हृदय को खूब शान्ति प्रदान की।

संसार मे कुछ घटनाएँ ऐसी होती है, जिनका कारण साधारण मनुष्य नही समझ पाता। उसे संयोग या भवितव्य या अकस्मात् कह कर ही सन्तोष धारण करना पडता है।

संयोगवश ही समझिए, द्वारिका मे भी एक घटना ऐसी ही हुई। जिस समय जाम्बवती और सत्यभामा ने पुत्रों का प्रसव किया, उसी समय द्वारिकाधीश के प्रधान सचिव, सेनापति और सारथी के घर भी बालक का जन्म हुआ। इन तीनों के यहां भी पुण्य-लक्षणो से समन्वित पुण्यशील शिशुओं ने जन्म धारण किया। पांचो के यहां से द्वारिकापति को एक ही साथ बधाई मिली। उनको अपरिमित आनन्द हुआ। सभी घरों मे मंगल-गान होने लगा।

यथासमय जाम्बवती के तनुज का नाम 'शम्बकुमार' रक्खा गया और सत्यभामा के नवजात शिशु का नाम 'सुभानुकुमार' रक्खा गया। मन्त्री के पुत्र को 'बुद्धिसेन' नाम दिया गया, सेनापति के पुत्र को 'जयसेन' और सारथि-पुत्र को 'पद्मनाभि' नाम दिया गया।

पाँचो पुत्र अपने-अपने पुण्य के अनुरूप द्वितीया के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगे। सभी गुणवान और तेजस्वी प्रतीत होने लगे।

०

शम्बकुमार और सुभानुकुमार महान् पुण्य के धनी थे। पाँच धायो ने अपरिमित प्रीति के साथ उनका लालन-पालन किया। चंपाकली की तरह दिन-प्रतिदिन उनका विकास होता गया। जब वे बालक्रीड़ा करने योग्य हुए तो विशेष रूप से अपने माता -पिता के मन को मोहने लगे। उनकी चेष्टाएं माता के अन्तःकरण को मुग्ध करने लगी। आंगन मे ठुमक-ठुमक कर चलना, चलते-चलते गिर पड़ना, किलकारियां भरना, खिल-खिलाकर हंसना, अव्यक्त एवं अस्फुट वाणी का उच्चारण करना आदि चेष्टाएं देख-देखकर दर्शकगण निहाल हो जाते थे। उनकी इन चेष्टाओ मे खास आकर्षण था।

दोनों राजकुमार जब बड़े हुए तो शम्बकुमार को प्रद्युम्नकुमार ने शिक्षा देना प्रारम्भ किया और सुभानुकुमार को भानुकुमार सिखाने लगा। दोनो भाई विद्याओं मे तथा विविध कलाओ मे निष्णात हो गये। प्रद्युम्न को शम्ब के रुप मे सच्चे मित्र की प्राप्ति हुई।

: २ :

उत्कर्ष

यस्य मित्रेण संभाषा, यस्य मित्रेण संस्थितिः ।
मित्रेण सह यो भुङ्क्ते, ततो नास्तीह पुण्यवान् ॥

जिसको मित्र के साथ सम्भाषण करने का अवसर मिलता है, जो मित्र के साथ उठता बैठता है और जो मित्रके साथ ही खाता-पीता है, उससे वढ़कर पुण्यवान इस जगत मे और कोई नही है ।

नीतिज्ञो की इस उक्ति मे तनिक भी अतिशयोक्ति नही है । मित्र शब्द आज वहुत सामान्य अर्थ मे प्रयुक्त हो रहा है, किन्तु वास्तव मे उसका अर्थ बड़ा ही गौरवपूर्ण है । अन्यत्र मित्र के लक्षण इस प्रकार बतलाये गये है:—

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यानि गूहति गुणान प्रकटी करोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्र लक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥

सत्पुरुषो का कथन है कि सच्चा मित्र वह है जो अपने मित्र को पाप का आचरण करने से रोकता है। मनुष्य की चित्तवृत्ति चित्रपट की भाँति पल- पल मे पलटती रहती है ।अच्छे संस्कार वाले, कुलीन और विद्वान् भी कदाचित् मलिन भावना के

शिकार हो जाते है और पापाचरण मे प्रवृत्ति करने को उद्यत हो जाते है। उस समय उन्हे सावधान करना, पाप-पथ से रोक कर पुण्य के प्रशस्त पथ की ओर ले आना सन्मित्र का ही काम होता है। सच्चा मित्र ही उसकी मनोवृत्ति को मोड़ कर हित-कारक कार्यो मे लगाता है।

सच्चा मित्र अपने मित्र की गोपनीय बातो को गोपता है। उसके दोषो का ढिंढोरा नही पीटता। वह मित्र के दोषो को जानकर एकान्त मे उसे समझाता है और दूसरो के सामने उसके गुणों को ही प्रकट करता है।

मित्रपर जब किसी प्रकार की आपत्ति आ जाती है तो सच्चा मित्र किनारा काट कर अलग नही हो जाता। वह पूरी तरह उसका साथ देता है और विपत्ति से उद्धार करने के लिए अपना समस्त सामर्थ्य लगा देता है। इसी प्रकार आवश्यकता होने पर सच्चा मित्र अपने मित्र को धन आदि की सहायता करता है।

मित्र कहो या हितैषी कहो, सुहृद् कहो या बन्धु कहो, एक ही बात है। पूर्वोक्त लक्षणो से सम्पन्न सुहृद् की प्राप्ति हुई है, वह निःसन्देह पुण्य का भाजन है। पुण्य का उदय होने पर ही सच्चे हितैषी मित्र की प्राप्ति होती है। शंवकुमार के रुप मे प्रद्युम्न को और प्रद्युम्न के रूप मे शंवकुर को वन्धु-मित्र प्राप्त हुए।

एक दिन की बात है। प्रद्युम्न, शंव, भानु और सुभानु-चारों भाई अनेक प्रकार की क्रीड़ा करते-करते पितृदर्शन के हेतु राज-सभा मे पहुंचे। सभी कुमारों ने वलदेवजी और वासुदेवजी के

चरण छूकर प्रणाम किया और सभाजनों को यथोचित जुहार आदि किया। जैसे दो सूर्यों और दो चन्द्रमाओं से जम्बूद्वीप प्रकाशमान और सुशोभित होता है, उसी प्रकार चारों तेजोमय कुमारों से वासुदेव की सभा सुशोभित होने लगी।

उस समय बलभद्रजी और पाण्डवो के मन मे कुमारों के चातुर्य की परीक्षा करने की इच्छा हुई। प्रद्युम्नकुमार शंव का सहायक हो गया और भानुकुमार सुभानु का एक। करोड स्वर्ण-मुद्राएँ सामने रख दी गई। और दोनों से कहा गया—इच्छानुसार द्यूत-क्रीड़ा करो। देखे, कौन जीतता है !

द्यूत-क्रीड़ा आरम्भ हुई। प्रद्युम्न के प्रभाव से शंवकुमार ने बाजी मार ली। तत्पश्चात् दोनों के कुक्कुट युद्ध मे भी जाम्बवतीसुत ने विजय प्राप्त की और दो करोड़ मोहरे जीती। दो बार अपनी पराजय देख सुभानु का मूहँ उतर गया प्रद्युम्न-कुमार ने सुभानु का चेहरा उतरा देख कर सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए स्वर्ण-मुद्राएं आधी -आधी दोनों मे बाँट दी।

इसी प्रकार कन्दुकक्रीड़ा मे चार कोटि, वस्तुभाव मे आठ कोटि, हार-परीक्षा मे सोलाह कोटि, मुष्टिका प्रसारण मे वत्तीस कोटि, उठक-बैठक म चौसठ कोटि, अश्वक्रीड़ा मे एक सौ आठ कोटि, और युद्ध मे दो सौ छप्पन कोटि, स्वर्ण-मुद्राएं शंबकुमार ने जीती। प्रद्युम्नकुमार की तीक्ष्ण बुद्धि के प्रभाव से हर बार शंव की ही विजय हुई।

अपने लाड़ले लाल की दमनीय पराजय की बात सुनकर

शंब ने मन्द हास्य के साथ कहा—माताजी ! यह तो खेल है। खेल मे एक की विजय और दूसरे की पराजय होती ही है। आप क्यों चिढ़ रही है ! देखना हो तो खेल देखकर मनोरंजन कीजिए।

इसी समय प्रद्युम्न को एक नवीन कल्पना सूझी। उसने उसी समय एक खेल आरम्भ करवाया और उसमे सुभानु को जिता दिया। शंबकुमार ने उसी समय जीत की मुद्राएँ सुभानु को दे दी।

सुभानु का स्वाभिमान जागृत हो गया। उसने अपनी जीत की मोहरो मे से आधी शंब को देनी चाही।

शंब ने निस्पृहता पूर्वक कहा—हम पराजय की एक भी कौड़ी छूना पसन्द नही करते !

सभा मे उपस्थित सभी लोग शंब की उदारता, निर्लोभता, समझदारी, आत्मगौरव शीलता और चतुरता देखकर दंग रह गये। सब के मुख से वाह-वाह निकलने लगी !

सुभानु को लज्जित होना पड़ा। वह जीत कर भी बुरी तरह पराजित हुआ। सत्यभामा बेहद चिढ़ गई। वह सुभानु का हाथ पकड़ कर उसे सभा मे से उठा ले गई।

शंबकुमार ने आज जो स्वर्ण मुद्राएँ जीती थी, उनसे उसने एक दानशाला की स्थापना की। अर्थी जनो को वहां

यथेष्ट दान मिलने लगा। वह उदारता और उल्लास के साथ द्रव्य व्यय करने लगा और याचकजन जगह-जगह उसकी गुण-गाथा गाने लगे। जहाँ देखो, वही शंव का नाम सुनाई देने लगा।

दान की महिमा अपार है। भेरी की ध्वनि एक योजन तक फैलती है, गाज की आवाज वारह योजन तक फ़ैलती है, किन्तु दान-जन्य कीर्ति समस्त दिशाओं और समस्त देशों को व्याप्त कर लेती है।

बहुत से लोग समझते है कि दान देने से लक्ष्मी कम हो जायेगी, मगर उत्तम विचारकों का मत इससे विपरीत है। वे सोचते हैं कि दान के प्रबल प्रभाव से ही लक्ष्मी प्राप्त होती है, दान से ही बढ़ती है और दान देने मे ही उसकी सफलता है। सच पूछा जाय तो जो लक्ष्मी मनुष्य के काम मे आ जाती है अथवा जिसका दान कर दिया जाता है, वही उसकी है। तिजोरियों मे अछूती पड़ी रहने वाली सम्पत्ति उसकी नही, किसी और की है। वह धनी उस लक्ष्मी का पहरेदार मात्र है। कहा है—

> यद् ददासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने।
> तत्ते वित्तमहं मन्ये, शेषमन्यस्य रक्षसि ॥

तुम जो सुपात्र देख कर दान देते हो और भोग लेते हो, वस वही धन तुम्हारा है। शेष किसी अन्य का है और तुम उसके रखवाले मात्र हो।

कुछ लोग सोचते है कि संसार मे वड़े-वड़े धनी विद्यमान

है। मेरे पास उनके बराबर धन नही है। जब बहुत धन हो जायगा तो मै दान करूँगा। किन्तु विचारक कहते है--

ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न यच्छसि ।
इच्छानुरूपो विभवः-कदा कस्य भविष्यति ॥

तेरे पास एक कौर है तो उसमे से आधा दान क्यों नही कर देता ? इच्छानुसार धन कब, किसे मिला है।

धन से किसी की इच्छा पूरी नही होती, क्योकि इच्छा दिन-दिन बढ़ती ही चली जाती है। शास्त्रकार कहते है–

इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ।

जैसे आकाश का अन्त नही है उसी प्रकार इच्छा का भी अन्त नही है। तब उसकी पूर्ति किस प्रकार हो सकती है ? अतएव–

भवन्ति नरकाः पापात्पापं दारिद्र्यसंभवम् ॥
दारिद्र्यमप्रदानेन, तस्माद् दानपरो भवेत् ॥

पाप के कारण से नरक की प्राप्ति होती है और पापों का धारण दरिद्रता दान न देने से होती है, इसलिए मनुष्य को चाहिये कि वह दान देने मे तत्पर रहे।

दान की महिमा सर्वत्र गाई गई है। दान के प्रभाव से विस्तृत कीर्ति होती है, दान की वदौलत प्रतिष्ठा और प्रशंसा प्राप्त होती है, दान से परभव मे सुख और समृद्धि मिलती है!

शंबकुमार ने दानशाला की स्थापना की तो सर्वत्र उसकी प्रसिद्धि हो गई। बलदेवजी और दशार्ह कहने लगे—अहा! धन्य है! यह कुमार हमारे कुल का दीपक उपजा है! इसने यदुकुल की कीर्ति की वृद्धि की है। ऐसे सपूतों से कुल सनाथ होता है।

एकदिन कुमार की दानशीलता की राजसभा मे चर्चा छिड़ गई। सब लोगों ने कुमार की प्रशंसा करते हुए वासुदेव से कहा—शंबकुमार ने दान द्वारा खूब प्रतिष्ठा प्राप्त की है और वंश के यश एवं गौरव को बढ़ाया है। कुछ न कुछ पारितोषिक मिलना चाहिए।

वासुदेव बोले—कुमार को किस वस्तु की कमी है? हाथी और घोड़े की उसे चाह नही है, धन और वस्त्र की कमी नही है। फिर क्या पारितोषिक दिया जाय?

सभाजन—आप स्वयं विचार कीजिए।

वासुदेव—अगर आप सब की सम्मति हो तो कुछ काल के लिए अपना तीन खण्ड का राज्य दे दूं!

सभाजन—यह तो आपकी इच्छा पर निर्भर है। जो उचित समझे दे।

उसी समय शम्बकुमार को सभा मे बुलाया गया। विराट समारोह के साथ उसे एक मास के लिए राज्यतिलक कर दिया गया। सम्पूर्ण राज्य मे इस बात की घोषणा कर दी गई। प्रद्युम्न अपने मित्र-भ्राता का यह उत्कर्ष देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

सत्यभामा को बड़ा क्षोभ हुआ। वह अत्यन्त बेचैन होकर राज-सभा मे आ धमकी। आते ही सत्यभामा चिड़चिड़े स्वर मे पाण्डवों से बोली—आप लोग क्यों बालकों को बिगाड़ने पर उतारु हुए है ? जिनमे सहयोग की भावना उत्पन्न करनी चाहिए, उनमे प्रतिस्पर्धा का भाव उत्पन्न करके आप क्या लाभ उठाना चाहते है ?

सत्पुरुष परकीय उत्कर्ष देख कर प्रसन्न होते है। फिर प्रद्युम्नकुमार तो शम्ब का सच्चा हितैषी था। शम्ब की प्रतिष्ठा-वृद्धि मे उसने अपनी ही प्रतिष्ठा बढ़ती देखी। वह प्रेम पूर्वक शम्बकुमार की सहायता करने लगा।

: ३ :

शम्ब का उत्पात

जाम्ववती-सुत राजा हो गया। मगर होनहार की वात समझिए कि राजा होते ही उसे ऐसा मद चढ़ा कि न पूछो वात! आगे-पीछे सोचे विना ही वह अनीति मे प्रवृत्त हो गया। उसकी अनीति दिनों दिन बढ़ने लगी। उसे धन-मद, यौवन-मद, वल-मद और राज-मद ने वुरी तरह घेर लिया। कहा भी है—

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

यौवन, धनसम्पत्ति, अधिकार और अविवेक, इनमे से एक-एक चीज भी अनर्थ का कारण होती है, तो जहाँ चारो एकत्र हो जाएँ वहाँ क्या कहना है ! वहाँ तो अनर्थ की परम्परा ही खड़ी हो जाती है ।

राजा शम्ब यहां तक गिर गया कि वह जिस किसी भी युवती को देख पाता, बलात्कार करके उसके शील को भंग करने से भी न चूकता ! कदाचित कोई ऐसे कृत्य करने से उसे रोकता तो वह उसे झिड़क देता और किसी की बात पर कान न देता ।

प्रारम्भ मे तो लोग छिपे-छिपे उसकी टीका करते थे, मगर बाद मे खुले रूप मे उसके अत्याचारों की बाते कही जाने लगी । समस्त द्वारिका मे शोर मच गया । प्रजाजन परेशान हो गए । मगर कठिनाई तो यह थी कि फरियाद करे तो किसके आगे ? अन्य लोग अन्याय करते है तो राजा से फरियाद की जाती है, किन्तु जब स्वयं राजा ही अन्याय पर उतारू हो जाय तो क्या किया जाय ? किसके आगे रोना रोया जाय ? शम्ब को प्रबल पृष्ठबल प्राप्त था और वह स्वयं भी बहुत बलवान् था, अतएव सब लोग उससे डरते थे ।

धीरे-धीरे शम्ब के अन्याय एवं दुराचार की कहानी कृष्णजी के कानो तक भी जा पहुँची । उन्हे अत्यन्त खेद हुआ । वे प्रजाको अपनी सन्तान के समान समझते थे, अतएव प्रजा

मे बढ़ते हुए त्रास और असन्तोष को देखकर उन्हे दुःख हुआ।

कृष्णजी जाम्ववती के निकट पहुँचे। उन्होने सोचा—शम्ब को सन्मार्ग पर लाने के लिए उसकी माता की सहायता लेनी चाहिए। अपने पुत्र की अनीति-परायणता को देख सुनकर कृष्णजी गहरा विषाद अनुभव कर रहे थे और उनके चेहरे पर वह विषाद स्पष्ट रूप से झलक रहा था।

जाम्बवती ने अपने पति को चिन्तातुर देखकर विनम्र भाव से प्रश्न किया—सदैव फूल की तरह खिले रहने वाले आपके चेहरे पर आज विषाद की रेखाएँ देख कर चित्त मे खेद होता है। कृपा करके बतलाइए आप आज इतने उदास क्यो है?

कृष्ण—सुन्दरी! तुम्हारे नन्दन ने अनीति आरम्भ कर दी है। आरम्भ ही नही, वह चरम सीमा पर पहुँच चुकी है। उसने कुल की मर्यादा त्याग दी है। वह नगर की नारियों को पकड़-पकड़ कर उनका शील भंग करता है!

जाम्ववती—नाथ! मेरा पुत्र बहुत भोला है। उसे खाने-पीने का तो सहूर ही नही, वह क्या अनाचार करेगा? यह सब विरोधियों का षड्यन्त्र जान पड़ता है। उन्होंने मुझे और शम्ब को वदनाम करने के लिए यह जाल रचा है! मेरा एकलोता वेटा है और सौते उसे देख-देखकर जलती है। दान के कारण जब से उसकी कीर्ति फैली है, तव से तो उनकी जलन का पार ही नही है! इसी जलन के कारण किसी ने आपके आगे चुगली कर दी होगी!

कृष्ण—तो तुम्हारा विचार है कि यह सब कल्पित कहानी है ? प्रिये ! ऐसी बात नही है। माता अपने पुत्र को भोला-भाला ही समझती है, परन्तु पुत्र सदा वैसा नही रहता।

जाम्बवती—कही-सुनी बात पर ध्यान देना योग्य नही है। स्वामिन् ! आप स्वयं परीक्षा करके देखिए।

कृष्ण—तुम भ्रम मे हो। न किसी ने चुगली खाई है, न कोई झूठ बोला है, न किसी ने षड्यन्त्र रचा है। सारी जनता मे आज यही चर्चा है। सब के सब असत्य भाषण नही कर सकते। लोग बड़ो के मुलाहिजे के कारण कुछ कहते नही है, मगर आपस मे बाते करते है और दुखी होते है। कुमार को मैने राजा बनाया है, वह स्वयं अनीति करने पर उतारु हो गया तो फिर न्याय कौन करेगा ? बाड़ ही जब खेत को खाने लगी तो उसका रखवाला कौन ? माता ही बालक को सताने लगे तो कौन उसे बचाएगा ? राजा का कर्तव्य है कि वह अन्याय से प्रजा की रक्षा करे। मगर जब राजा स्वयं ही अनीति पर उतर आए तो प्रजा का रक्षक कौन होगा ?

जाम्बवती—प्राणेश ! आपको विश्वास हो गया है तो आप उसे समझा दीजिए। जैसा मेरा वैसा ही आपका भी वह पुत्र है। पर बिना आँखो देखे मुझे विश्वास नही होता !

कृष्ण—अच्छी बात है, मै तुम्हे आंखो दिखलाने का उपाय करता हूँ।

कृष्णजी ने एक अत्यन्त जराजीर्ण ग्वाल का रूप धारण किया। ग्वाल की कमर झुकी हुई थी। उसकी गर्दन काँप रही

थी, हाथ और पैर भी थर-थर काँप रहे थे। पग-पग पर ऐसा लगता कि अब गिरा, तब गिरा ! उसके मस्तक और दाढ़ी-मूंछ का एक-एक बाल श्वेत हो गया था। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हुई थी। उसके दोनो नेत्र भीतर की ओर धँसे हुए ऐसे जान पड़ते थे, मानो उखड़े पेड़ की खोतर हो ! शरीर मे माँस नही था—अस्थियों का पञ्जर चमड़ी से मढ़ा हुआ था। पोपले मुँह मे से लार टपक-टपक पड़ती थी। चलने के श्रम के कारण लम्बी-लम्बी सांसे भरता हुआ ऐसा लगता था जैसे लौहार की धौंकनी हो !

कृष्णजी ने जाम्बवती को षोड़शी गौपी कुमारी के रूप मे परिणत कर दिया। वह अतिशय रूपश्री से समन्वित नव-युवती बूढ़े ग्वाल के पीछे-पीछे चलने लगी। उसका मुख चन्द्रमा की तरह सुशोभित हो रहा था। काले नाग की तरह आयताकार चोटी उसके पैरो तक लटक रही थी, जो ऐसी जान पड़ती थी कि कामी जनों के मन को बाँधने के लिए सुदृढ़ नागपाश है ! उसके नेत्र हरिणी के सदृश चपल थे। नाक की बनावट असाधारण थी। उसके होठो म नैसर्गिक लालिमा थी जो उसके आन्तरिक अनुराग का प्रतिबिम्ब जान पड़ती थी। उन्नत उरोज उसके सौन्दर्य को शतगुणित बढ़ा रहे थे। वह हंस की चाल से चल रही थी।

उसके सिर पर बोर ललाट पर बेंदी सोह रही थी। नाक मे बड़ी सी नथ थी और कानो मे बालियाँ ! गोल-गोल नथ और बालियाँ ऐसी लगती थी, मानो कामदेव ने चंचल-चित्त

युवकों को कैद करने के लिए घेरा डाल दिया हो! कंठ मे हार, कमर मे करधनी और पैरो मे नूपुर थे। यह सब आभूषण कांसे और पीतल के थे, परन्तु इनसे उसकी सुन्दरता मे किंचित् भी न्यूनता नही आई थी। बल्कि वह अनिन्द्य सुन्दरी नवयुवती गोपी यौवन के मद मे मतवाली हो रही थी। उसके मुख पर मृदु स्मित था और यह उसके सौन्दर्य पर कलश के समान था।

जराप्रतिकृति वृद्ध लाठी टेकता आगे २ चल रहा था और नवयुवती उसके पीछे-पीछे! नवयुवती कोकिला-मधुर ध्वनि मे आवाज लगा रही थी—ले लो दूध, दही, मक्खन!

दोनो चलते २ शम्ब के महल के सामने आये। शम्ब ने गोपी का सौन्दर्य देखा तो पागल हो उठा। उसके अन्त:करण मे वासना की उत्ताल तरंगे उठने लगी। वह सोचने लगा—अहा! कैसी मोहिनी मूर्ति है! विधाता ने जैसे सौन्दर्य का नमूना तैयार किया है! इसे जाने देना ठीक नही।

इस प्रकार सोचकर शम्ब नीचे जाकर रास्ते मे खड़ा हो गया। वह कहने लगा—गोपिके! चलो मेरे घर में। मै तुम्हारी सभी चीजे ख़रीद लूंगा।

वृद्ध शंब की चेष्टाएँ देखकर रुकना नही चाहता था। वह आगे बढ़ने की चेष्टा करने लगा और युवती ने भी पग बढ़ाया। शम्ब रास्ता रोक कर खड़ा हो गया।

जाम्बवती के प्राण सूखने लगे। उसने आँखो से इशारा करके शम्ब को बहुत समझाना चाहा, पर परिणाम विपरीत

ही हुआ। आँखो के इशारे देख शम्ब और अधिक मुग्ध हो गया। ज्यों-ज्यों जाम्बवती उसे रोकने की चेष्टा करती, त्यों-त्यों शम्ब की वासना भड़कती जा रहीं थी। काममूढ़ मनस्क पुरुष, स्त्री की साधारण चेष्टा को भी अपने प्रति अनुराग प्रकट करने वाली समझता है। शम्ब गोपी की चेष्टाओं को भी इसी रूप मे ग्रहण करने लगा। अनेक प्रकार से समझाने पर भी वह रहस्य को न समझ सका।

रास्ता रोक कर खड़े देख अहीर वृद्ध ने कहा—जाने दो भाई, हमे दूध, दही नही बेचना है। हम ऐसे लाभ को हाथ जोड़ते है। लज्जा रह जाय तो सभी कुछ रह गया!

शम्ब नही हटा। तब बूढ़े को क्रोध आ गया। उसने डांट कर कहा—जाने दो, हट जाओ सामने से!

शम्ब ने बूढ़े को एक लात लगाई। बूढ़ा धरती पर गिरा पड़ा। नवयुवती का हाथ पकड़ कर वह अपने महल की ओर घसीट ले जाने लगा। उसी समय कृष्ण मुरारी ने अपना असली रूप प्रकट कर दिया! वे कड़क कर बोले—दुष्ट नीच! तू अपनी सगी माता से भी न चूका! धिक्कार है तेरी जिन्दगानी को! निर्लज्ज! तेरी बुद्धि नष्ट-भ्रष्ट हो गई है! कुलांगार कही के! तू ने मेरे उज्ज्वल यश को भी कलंक लगा दिया।

शम्ब के पैरो तले की जमीन खिसक गई! अपने प्रतापी पिता को देख वह हक्का-बक्का रह गया। उसने युवती की ओर देखा तो माता जाम्बवती उसके सामने खड़ी थी! घोर

युवकों को कैद करने के लिए घेरा डाल दिया हो! कंठ मे हार, कमर मे करधनी और पैरो मे नूपुर थे। यह सब आभूषण कांसे और पीतल के थे, परन्तु इनसे उसकी सुन्दरता मे किंचित् भी न्यूनता नही आई थी। बल्कि वह अनिन्द्य सुन्दरी नवयुवती गोपी यौवन के मद मे मतवाली हो रही थी। उसके मुख पर मृदु स्मित था और यह उसके सौन्दर्य पर कलश के समान था।

जराप्रतिकृति वृद्ध लाठी टेकता आगे २ चल रहा था और नवयुवती उसके पीछे-पीछे! नवयुवती कोकिला-मधुर ध्वनि मे आवाज लगा रही थी—ले लो दूध, दही, मक्खन!

दोनो चलते २ शम्ब के महल के सामने आये। शम्ब नें गोपी का सौन्दर्य देखा तो पागल हो उठा। उसके अन्त:करण मे वासना की उत्ताल तरंगे उठने लगी। वह सोचने लगा—अहा! कैसी मोहिनी मूर्ति है! विधाता ने जैसे सौन्दर्य का नमूना तैयार किया है! इसे जाने देना ठीक नही।

इस प्रकार सोचकर शम्ब नीचे जाकर रास्ते मे खड़ा हो गया। वह कहने लगा—गोपिके! चलो मेरे घर में। मै तुम्हारी सभी चीजे ख़रीद लूंगा।

वृद्ध शंब की चेष्टाएँ देखकर रुकना नही चाहता था। वह आगे बढ़ने की चेष्टा करने लगा और युवती ने भी पग बढ़ाया। शम्ब रास्ता रोक कर खड़ा हो गया।

जाम्बवती के प्राण सूखने लगे। उसने आँखो से इशारा करके शम्ब को बहुत समझाना चाहा, पर परिणाम विपरीत

ही हुआ। आँखो के इशारे देख शम्ब और अधिक मुग्ध हो गया। ज्यों-ज्यों जाम्बवती उसे रोकने की चेष्टा करती, त्यों-त्यों शम्ब की वासना भड़कती जा रही थी। काममूढ़ मनस्क पुरुष, स्त्री की साधारण चेष्टा को भी अपने प्रति अनुराग प्रकट करने वाली समझता है। शम्ब गोपी की चेष्टाओं को भी इसी रूप मे ग्रहण करने लगा। अनेक प्रकार से समझाने पर भी वह रहस्य को न समझ सका।

रास्ता रोक कर खड़े देख अहीर वृद्ध ने कहा—जाने दो भाई, हमे दूध, दही नही बेचना है। हम ऐसे लाभ को हाथ जोड़ते है। लज्जा रह जाय तो सभी कुछ रह गया!

शम्ब नही हटा। तव बूढ़े को क्रोध आ गया। उसने डांट कर कहा—जाने दो, हट जाओ सामने से!

शम्ब ने बूढ़े को एक लात लगाई। बूढ़ा धरती पर गिरा पड़ा। नवयुवती का हाथ पकड़ कर वह अपने महल की ओर घसीट ले जाने लगा। उसी समय कृष्ण मुरारी ने अपना असली रूप प्रकट कर दिया! वे कड़क कर बोले—दुष्ट नीच! तू अपनी सगी माता से भी न चूका! धिक्कार है तेरी जिन्दगानी को! निर्लज्ज! तेरी बुद्धि नष्ट-भ्रष्ट हो गई है! कुलांगार कही के! तू ने मेरे उज्ज्वल यश को भी कलंक लगा दिया।

शम्ब के पैरो तले की जमीन खिसक गई! अपने प्रतापी पिता को देख वह हक्का-बक्का रह गया। उसने युवती की ओर देखा तो माता जाम्बवती उसके सामने खड़ी थी! घोर

लज्जा से पीड़ित वह सामने खड़ा न रह सका। उसी ससय अपने महल मे भाग गया!

वासुदेव और महारानी जाम्बवती लौट कर अपने महल मे आ पहुँचे। कृष्ण ने कहा-प्रिये! अपने लाल का हाल देख लिया न? मैंने जो कहा था, क्या मिथ्या था? अव तो अपनी आंखो देख चुकी?

जाम्बवती के पास कोई उत्तर नही था। वह लज्जित होकर चुप रह गई। उसे अपने पुत्र के लिए वहुत खेद हुआ।

कृष्णजी अपने महल मे चले गये।

: ४ :

उद्धार का उपाय

रात बीत गई। दूसरा दिन हुआ। शम्बकुमार उस समय अत्यन्त लज्जित हुआ। परन्तु उसका लज्जा का भाव अधिक देर तक न टिक सका। अतीत घटना पर विचार करते-करते उसे अपने पिता पर क्रोध हो आया! वह सोचने लगा-पिताजी चाहते तो सीधी तरह मुझे कह सकते थे। उन्होने इतना वड़ा षड्यन्त्र क्यों रचा? मेरी माता के समक्ष मुझे लज्जित क्यो किया?

सोचते-सोचते उसका क्षोभ भयानक कोप के रुप मे परिणत हो गया। उसने अपने दाहिने हाथ मे एक तीखी कटार ली और बायें हाथ मे लकड़ी की खूंटी। कटार से खूँटी छीलता छीलता वह वासुदेवजी के पास पहुँचा। कृष्ण ने पूछा-शम्ब, आज यह क्या धन्धा आरम्भ किया है ?

शम्व--खूंटी बना रहा हूं।

कृष्ण--किस लिए ?

शम्व-जो कल की गुप्त बात प्रकट करेगा, उसके मुख मे ठोकने के लिए !

कृष्णजी को शम्ब की उद्दण्डतापूर्ण उक्ति सुनकर ऐसा दुःख हुआ मानो किसी ने उनके हृदय मे मेख ठोक दी हो। उन्हे कल्पना भी नही थी कि शम्भ इतना नीच और उद्दंड हो सकता है। क्रोध और क्षोभ से वासुदेव कांपने लगे। उन्होने कहा-निर्लज्ज, धृष्ट छोकरे ! तू स्वयं इस योग्य है कि तेरे मुख मे मेख ठोक दी जाय। पर पिता का हृदय इस कठोरता को सहन नही करता। मगर मेरे राज्य मे तेरा रहना अनर्थकारी है। तू अपना काला मुँह लेकर राज्य से बाहर निकल जा। मै तुझे देश-निर्वासन का दण्ड देता हूँ।

शम्ब की आंखे अब खुली। देश निकाले का दण्ड सुनकर वह ऐसा दीन हो गया, जैसे पंख कट जाने पर पक्षी मे दीनता आ जाती है। उसके चेहरे का नूर गायब हो गया। वह गम्भीर सोच विचार मे पड़ गया। उसने सोचा-तीनों खण्डो मे पिता

का राज्य फैला हुआ है। मै जाऊ भी तो कहां जाऊं ? मेरा भविष्य क्या होगा ? प्रतापी वासुदेव जिस पर कुपित हो, उसे किसकी सहानुभूति प्राप्त हो सकती है ?

विषाद और पश्चाताप मे डूबा हुआ शम्ब माता के पास आया। संसार मे माता से बढ़कर आश्रय-स्थान अन्य नही है। किसी भी स्थिति मे पुत्र के लिए माता असदृश शरण भूत होती है। वह अपने पुत्र के लिए अपने प्यारे प्राणो का भी सहर्ष उत्सर्ग कर सकती है। कौन जाने ममता के किन उपादानो से माता का निर्माण हुआ है।

जाम्बवती के पास आकर कुमार रोने लगा। उसे विलख-विलख कर रोते देख माता ने कारण पूछा। सारी घटना कुमार ने कह सुनाई। माता ने कहा—तू ने बहुत बुरा किया। अपने पिता के प्रति दुष्ट विचार और उद्दण्ड आचार करके तू ने अपने जीवन को विषम बना लिया है। तेरी उच्छुंखलता असह्य है। मुझे तो साहस ही नही होता कि मै उनके पास जाऊ और तेरे लिए क्षमा की भीक मागूँ ? किस मुँह मे वहां जाऊ और क्या कहकर क्षमा प्रार्थना करूं ? वत्स ! तेरे व्यव-हार से मुझ भी लज्जित होना पड़ रहा है। मेरी प्रतिष्ठा भी कलंकित हो रही है !

शम्ब—तो अव मुझे क्या करना चाहिए? किसी प्रकार विगड़ी वात सुधर नही सकती ?

जाम्बवती—प्रद्युम्नकुमार की शरण मे जा। कोई उपाय

सम्भव होगा तो उसी के द्वारा होगा। उसी के द्वारा तेरा निस्तार होगा।

शम्ब उसी समय प्रद्युम्न के पास पहुँचा। जाते ही वह प्रद्युम्न के पैरों मे गिर पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा। प्रद्युम्न ने उसे उठाकर छाती से लगाया और रोने का कारण पूछा। शम्ब ने आदि से अन्त तक का समस्त वृत्तान्त बिना किसी बात को छिपाए निष्कपट भाव से कह सुनाया।

वृत्तान्त सुनकर प्रद्युम्न भी गम्भीर हो गया। वह सोचने लगा–शम्ब का अपराध अतिशय गम्भीर है। इसने पिताजी की घोर अविनय की है।

प्रद्युम्न ने प्रश्न किया–अब तुम क्या चाहते हो?

शम्ब–किसी प्रकार निर्वासन का दण्ड क्षमा कर दिया जाय।

प्रद्युम्न–क्या तुम सोचते हो कि पिताजी ने यह दण्ड देकर तुम्हारे साथ अन्याय किया है?

शम्ब–नही, अब मेरी आँखे खुल गई है। मै सही राह पर आ गया हूँ और सही दिशा मे देखने लगा हूँ। वास्तव मे मेरा अपराध इसी दण्ड के योग्य है। पिताजी ने अन्याय नही किया।

प्रद्युम्न–जब दण्ड न्याय युक्त है तो उसे क्षमा कर देने की अभ्यर्थना किस आधार पर की जाय?

शम्ब–इस आधार पर कि दण्ड का उद्देश्य पूर्ण हो चुका

प्रद्युम्न—कैसे ?

शम्ब—दण्ड प्रतिहिंसा की भावना से नही दिया जाता, दण्डित व्यक्ति को सुधारने के प्रयोजन से दिया जाता है। दण्डित व्यक्ति के सुधर जाने पर दण्ड का प्रयोजन पूर्ण हो जाता है।

प्रद्युम्न—मगर उसके सुधार का अर्थ क्या है ?

शम्ब—यही कि वह अन्तरतर से अपने अपराध को अपराध समझे, उसे हेय माने, भविष्य मे उसकी पुनरावृत्ति न करने का संकल्प करे।

प्रद्युम्न—तुम ऐसा समझने लगे हो ?

शम्ब—निःसन्देह ! मुझे वहुत पश्चाताप है।

प्रद्युम्न—तो फिर कोई मार्ग निकल सकता है। प्रयत्न करूँगा। तुम चिन्ता मत करो।

इस प्रकार आश्वासन देकर प्रद्युम्नकुमार श्रीकृष्णजी के समीप पहूँचा। उसने अत्यन्त नम्रता प्रदर्शित करते हुए कहा-तात ! शम्ब ने बालबुद्धि से प्रेरित होकर अक्षम्य उद्दंडता की है, मगर अब उसे अपनी भूल का पता चल गया है। अपने व्यवहार पर उसे लज्जा है। वह आपका वालक है और मेरा प्रिय बन्धु है। एक बार उसे सन्मार्ग पर आने का अवसर दीजिए। दुबारा दुर्व्यवहार करेगा तो मै कभी उसकी सिफारिश नही करुँगा। एक बार की गल्ती क्षमा कर देने योग्य है। कृपा कर वतलाइए कि वह आपके चरणो की वन्दना करने किस समय आवे।

श्रीकृष्ण—उसने मेरा व्यक्तिगत अपराध किया होता तो मै क्षमा कर देता। वह प्रजा के प्रति भी तो अपराधी है। ऐसी स्थिति मे मै उसे क्षमा दान कैसे दे सकता हूं।

प्रद्युम्न—प्रजा आप मे ही केन्द्रित है। प्रजा के प्रति किये गये सद्व्यवहार और दुर्व्यवहार के प्रतिफल मे आप ही अनुग्रह कर सकते है। आप प्रजा के प्रतिनिधि है। प्रजा की ओर से दण्ड देते है तो क्षमा भी कर सकते है।

श्रीकृष्ण— नही प्रद्युम्न, यह नही हो सकता। शम्ब को क्षमादान देना प्रजा की दृष्टि मे अविश्वास-भाजन बनना है। शासक का प्रथम कर्तव्य प्रजा का विश्वास सम्पादन करना है।

प्रद्युम्न—यथार्थ है आपकी आज्ञा ! परन्तु दण्ड का उद्देश्य पूर्ण हो जाने पर भी दण्ड देना क्या उचित है ?

श्रीकृष्ण— पर इसकी क्या खातिरी है ?

प्रद्युम्न—मै उसकी जमानत देता हूं। वह भविष्य मे नीति के अनुसार चलेगा। मैने उससे वचन ले लिया है।

श्रीकृष्ण—मगर यह सब बाते प्रजा को कौन समझाता फिरेगा !

प्रद्युम्न के हृदय मे निराशा का संचार हुआ। उसने अन्यमनस्क भाव से कहा—पिताजी ! तो शंव को क्षमा प्रदान करने का कोई उपाय नही है।

श्रीकृष्ण ने बात टालने के उद्देश्य से कहा—मै तुम्हारी बात को टालना नही चाहता। अगर भानुकुमार की माता शंब को हाथी पर बिठाकर और आप उसके पीछे बैठकर उसे नगरी मे लावे तो मै उसे क्षमा कर दूंगा अन्यथा नही।

प्रद्युम्नकुमार को इससे सन्तोष नही हुआ। वह सोचने लगा—माता सत्यभामा पहले ही शम्ब से जलती है। उसके देश-निर्वासन से उन्हे उलटी प्रसन्नता ही होगी। वे कब उसे हाथी पर बिठलाकर लाएंगी ? वे तो त्रिकाल मे भी ऐसा करना स्वीकार नही करेगी। पिताजी ने रोष के कारण ही ऐसा कहा है। मगर एकान्त अस्वीकृति की अपेक्षा कठोर शर्त के साथ स्वीकृति मिल जाना कुछ तो अच्छा ही है। मैने शंब को वापिस लाने का बीड़ा उठाया है। मै अपनी सम्पूर्ण शक्ति और बुद्धि का प्रयोग करके भी अपने उद्देश्य को सफल बनाने का प्रयत्न करूँगा।

प्रद्युम्नकुमार शंब के पास आया। पिताजी से हुई वातचीत से अवगत किया। शंब का हृदय नैराश्य से परिपूर्ण और विषण्ण हो गया। वह बोला—भैया! मुझे एकमात्र आपका ही आश्रय है। चाहे मारो चाहे उबारो। इच्छा हो सो करो।

प्रद्युम्न ने उसे सान्त्वना प्रदान करते हुए कहा—बन्धु, चिन्ता न करो। मै अपने प्रयास मे कुछ भी कोर-कसर नही रक्खूंगा। आशा है, हम लोग सफल होंगे। अभी तक तो जिस काम मे हाथ डाला, सफलता ही मिली है। अब जो होगा, देखा जायेगा।

पुण्य के प्रबल परिपाक से प्रद्युम्न को अपरिमित प्रतिभा प्राप्त हुई थी। उसका कौशल असाधारण था। उसने तत्काल अपने मस्तिष्क मे एक प्रभावशाली योजना घड़ डाली।

सांगोपांग योजना तैयार करके प्रद्युम्न ने शम्ब से कहा–चलो नगर की वन्द वायु से जी घवरा रहा है। मुक्त वायु मे प्रकृति की शोभा का निरिक्षण करके मन बहला आएँ।

शम्ब– मेरा मन इस समय कही बहलने वाला नही है। फिर भी आपका आदेश शिरोधार्य है। जहाँ इच्छा हो, चलिए।

प्रद्युम्नकुमार और शम्ब दोनों सत्यभामा के बगीचे मे आ पहुचे। प्रद्युम्न ने कहा–भाई, जैसा कहूँ वैसा करना। उसमे मीन-मेष तो न करोगे ? मै चाहता हुँ कि आज ही सबकाम सिद्ध हो जाय।

शम्ब– मेरा मंगल-साधन करने के लिए आप सब कुछ कर रहे है, उनमे मीन-मेष के लिए अवकाश ही कहाँ ? आपका आदेश तो मेरे लिए सदैव आप्तवाक्य रहा है।

प्रद्युम्नकुमार ने अपनी विद्या के प्रभाव से शम्ब का पुरुष रूप पलट दिया। वह एक नवयौवनशालिनी, अद्वितीय सुन्दरी कन्या के रुप मे दिखाई देने लगा। स्वर्ण सदृश सत्कान्ति से सुशोभित उज्ज्वल वर्ण, सुधाकर के समान सौम्य आनन, मृगी के समान चपल और विशाल नयन और सिंह के समान कृशतर कमर। उसके अंग-अंग से सौन्दर्य फूट रहा था। कन्या का मादक लावण्य अनुपम था। देखते ही नेत्र मुग्ध हो जाते थे। सोलह

श्रृंगारों से सुसज्जित वह कन्या ऐसी प्रतीत होती थी, मानो स्वर्ग लोक से कोई देव-कुमारी अभी-अभी उतर कर आई है।

कन्यारूपधारी शम्ब को अथ से इति पर्यन्त सब बाते सिखा पढ़ा कर प्रद्युम्नकुमार ने उसे उद्यान मे एक जगह बैठ जाने का आदेश दिया। स्वयं किसी वृक्ष की झुरमुट मे छिप गया।

सत्यभामा प्रतिदिन इस उद्यान मे बिहार करने के लिए आया करती थी। तद्नुसार आज भी वह आ पहुँची। उद्यान मे आते ही अपार रूप -सम्पत्ति से सम्पन्न कुमारी पर उसकी नजर पड़ी। सत्यभामा उस सौन्दर्य को निहार कर मुग्ध हो गई। वह अनायास ही उसकी और खिची चली आई। आकर सत्यभामा ने कुमारी से कहा—कुमारिके! तुम कौन हो ? इस उद्यान मे तुम्हारा आगमन कैसे हुआ है ? तुम्हारे इस चारु-चेहरे पर चिन्ता के चिन्ह क्यों चक्षुगोचर हो रहे है ?

कुमारी कुछ न बोली। वह फूट-फूट कर रोने लगी।

सत्यभामा के भी आँखो मे आंसू आ गये। उसने पास मे जाकर कहा—पुत्री ! चिन्ता छोड़ो। अपना वृत्तान्त सुनाओ। समझो, तुम अपनी माता के ही समीप हो।

कुमारी सत्यभामा से लिपट गई। सत्यभामा ने उसे अपनी गोद मे बिठाकर और पुचकार कर कहा-घबराओ मत, अपना हाल सुनाओ।

कुमारी ने किंचित आश्वस्त होकर कहा—माता, मै प्रसिद्ध

राजा की कन्या हूँ। मै बचपन से अपने ननिहाल मे रही हूँ, वहीं बड़ी हुई हूँ। मेरी मामी की मुझ पर अपार प्रीति थी। वह अपनी उदरजात कन्या से भी अधिक मुझे चाहती थी। लेश-मात्र भी अलगाव का भाव नही रखती थी।

मुझे वयस्क हुई समझ कर मेरे पिताजी ने मेरा विवाह करने का विचार किया। वह मुझे मामा के घर से अपने घर ले जा रहे थे। मार्ग मे यहां उतारा किया। रात्रि के समय सब लोग सुख की गहरी निद्रा मे सोये मगर मुझे नींद नही आई। आँखें बन्द कर लेने पर भी मामी की मोहनी मूर्ति मेरे सामने खड़ी होने लगी। उनका मधुर स्नेह मुझे स्मरण आता रहा। विचार ही विचार मे रात्रि का अधिकांश भाग व्यतीत हो गया। मामी का विछोह मेरे अन्तस्तल मे शल्य की भाँति चुभने लगा। लाख प्रयत्न करने पर भी निद्रा न आई।

पिछली रात्रि मे न जाने कब और किस प्रकार निद्रा ने मुझे अपने अधीन कर लिया। मै सो गई। जब जागी तो देखा भास्कर की किरणे सर्वत्र अपना प्रसार कर चुकी है। सुनहरी धूप फैल गई।

आँखे मलते-मलते मैंने अपने पिताजी आदि साथ वालों को देखा तो वे कही नजर न आए। मै एकाकी निराधार हो गई। इधर उधर खोजने पर भी कही किसी का पता न लगा। निराश होकर मन मार कर मै यही रह गई। पता नही, मेरे भाग्य मे क्या बदा है ? माताजी, अब मै आपकी आश्रिता हूँ।

आपने मुझे अभय-वचन दिया है। मेरी जीवननौका आपके हाथ मे है। मै आश्रयहीना आपका आश्रय चाहती हूं।

—※※—

: ६ :

रहस्य भेद

भोली भामा! फिर चक्कर मे आ गई। वह कई वार ठगाई जा चुकी है, मगर समझी नही। ठीक ही कहा है—

विच्छूनो विष पूंछ मे, दाढे व्याल विष होय।
ठगनो विष हिये वसे, शाणा समझे सोय॥

बिच्छू का विष डंक मे होता है, सांप का विष उनकी दाढ़ मे रहता है और ठग का विष उनके हृदय मे भरा रहता है। जो इस तथ्य को समझता है, वही स्याना या समझदार कहलाता है।

आम, जामुन, बेर, खारक और खजूर को तो आपने देखा है? ऊपर-ऊपर से वे कैसे कोमल मालुम होते है। किन्तु उनके भीतर कठोरता भरी होती है। सरल व्यक्ति के लिये एक ही मार्ग होता है, किन्तु कपटी के लिए मार्गो की कमी नही होती। वह चाहे जिस रास्ते से निकल भागता है।

सत्यभामा कुमारी का रमणीय रूप निहार कर फिर ठगाई मे आ गई। उसने कुमारी से कहा—अगर तुम मेरे पुत्र सुभानुकुमार के साथ विवाह करने को तैयार हो तो मै तुम्हे अपने महल मे ले चलू। मेरी पुत्रवधू बन जाओगी तो मेरा सम्पूर्ण प्रेम पा सकोगी।

कुमारी बोली—स्वामिनी ! आपके कुंवर हरिजी के सुपुत्र है और आपके आत्मज है। वे मेरे प्राणेश्वर बन जाएं तो मै अपना जीवन धन्य मानूंगी। इससे अधिक मुझे और क्या चाहिये! नारीजीवन की एक बड़ी साध यही होती है कि उसे सुयोग्य, सम्पन्न, सुन्दर और उदार पति की प्राप्ति हो। स्त्री आखिर निरालम्ब तो रह नही सकती। त्रिखण्डनाथ की पतोहू बनना मेरे लिए सौभाग्य की बात है।

सत्यभामा—तो तुम्हे मेरी बात स्वीकार है ?

कुमारी—अत्यन्त प्रसन्नता के साथ। मे आपके सुपुत्र का वरण करूंगी और अपने जीवन को धन्य समझूंगी।

सत्यभामा को असलिअत का पता नही था। उसने गज़राज पर कुमारीरुप शम्ब को आरुढ़ किया और बीच बाजार से होकर अपने महल की ओर प्रस्थान किया।

प्रद्युम्नकुमार के मन मे महान प्रमोद हुआ। सोचने लगा—चलो, मेरी युक्ति काम कर गई। जो सोचा था, पुरा हुआ।

वह सीधा जाम्बवती के पास पहुँचा। उन्हे समग्र वृत्तान्त

बतलाकर खूब हंसा। जाम्बवती को भी प्रद्युम्न की चतुरता देख बहुत प्रसन्नता हुई।

सत्यभामा ने शम्ब-कुमारी को कन्याओं के अन्तपुर मे रख दिया। वह उसकी बड़ी सावधानी के साथ सार-सम्भाल करने लगी। वह गहरी प्रीति के साथ उसके प्रति व्यवहार करने लगी। रात दिन उसकी यथोचित सेवा करती। कुमारी को किसी बात का कष्ट न होने देती और न उसके चित्त को कभी उदास होने देती! कुमारी के नहाने-धोने की, भोजन-पान की और वस्त्र-आभूषण की खूब फिक्र किया करती थी।

कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गये। वसन्त ऋतू का आगमन हुआ। वसन्त ऋतुओं का राजा कहलाता है। वसन्त का आगमन होने पर प्रकृति नववधू की तरह सज जाती है। जिधर देखो, उधर ही अतीव सुहावने दृश्य नज़र आने लगते हैं।

बसन्त ऋतु के आते ही बगीचों की सम्पत्ति खिल उठी। फूलों के रुप मे वे स्वर्ग का उपहास करने लगे। पुष्पों को मनोहर सौरभ से अवनी और आकाश व्याप्त हो गये। भ्रमर अपनी श्रुति मधुर गुञ्जार से कामी-जनों की सुप्त वासना को जागृत करने लगे और कानों मे अमृत ढोलने वाली कोकिला मानो ऋतुराज के यश का मधुर गान करने लगी।

निसर्ग ने रमणीय रूप धारण किया। उद्यानों की अलबेली छटा जन-मन को मोहित करने लगी। विरहिणियों का विरह जागृत हो गया और संयोगिनियों ने सुख का अनुभव किया।

एक नवीन उल्हास, नवीन उमंग और नवीन उत्साह सर्वत्र दृष्टि-गोचर होने लगा।

शम्ब कुमारी अपनी सखियों के साथ बगीचे मे क्रीड़ा करने गई। एक विशाल और सघन वृक्ष के नीचे झूला डाला गया। कुमारी झूलने लगी और सखियाँ प्रफुल्लित–चित्त से मधुर राग आलापने लगी।

नवयुवक सुभानुकुमार भी अपने मन्त्री के साथ उस बगीचे मे आ पहुँचा। वह आभूषणों से ही सुसज्जित नही था, हृदय के अनुरागमय भावो से भी सुसज्जित था। घूमता-फिरता वह वही आया जहाँ कुमारी झूला झूल रही थी। उसकी दृष्टि कुमारी पर पड़ी। कुमारी के अपूर्व रुप-लावण्य को देखकर वह अतिशय मुग्ध हो गया और उसके नयनबाणों से विद्ध हो गया। कवि ने ठीक ही कहा है—

सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणां,
लज्जा तावद् विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव।
भ्रू चापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथजुषो नीलपक्ष्माण एते,
या वल्लीलावतीनां हृदि न धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतन्ति॥

मनुष्य तभी तक सन्मार्ग पर रहता है, तभी तक अपनी इन्द्रियों को वश मे रख पाता है, तभी तक उसमे लज्जा रहती है और तभी तक वह विनीत रह सकता है, जब तक भौंहो रूपी धनुष्य को खीच कर छोड़े हुए नीले-नीले पांखों वाले, धैर्य को नष्ट करने वाले, स्त्रियों के दृष्टिरूपी वाण उसके हृदय मे

नही लगते है। रमणियों के नयन वाण जिसके हृदय को घायल कर देते है, वह पुरूष विवेक का परित्याग कर देता है। विवेक से रहित होने पर फिर उसके लिए कोई मर्यादा नही रह जाती। वह सन्मार्ग और कुमार्ग का भेद नही समझता, इन्द्रियों का क्रीत दास बन जाता है तथा निर्लज्ज और अविनीत बन जाता है। रमणी के नयन बाणों का विष मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क पर असर करता है।

सुभानुकुमार का हृदय भी कुमारी के नयन-वाणों से बुरी तरह घायल हो गया। वह काम-वासना से पीड़ित होकर मूर्छित हो गया और धरती पर गिर पड़ा।

मन्त्री उठाकर उसे घर पर लाया। यथोचित उपचार करने पर वह सचेत हुआ। मन्त्री कुमार की मूर्छा का कारण समझ तो गया था फिर भी निश्चय करने के इरादे से उसने पूछा—कुमार! आपके अचानक बेहोश होने का क्या कारण है?

कुमार—तुम नही समझे?

मन्त्री—मेरी समझ मे भ्रम भी हो सकता है।

कुमार—तो फिर मेरे मन्त्री कैसे?

मन्त्री—जिन बातो का सम्बन्ध सम्पूर्ण जीवन से हो, उनके विषय मे कोरा अनुमान काम नही देता।

कुमार—तुम्हारा क्या अनुमान है?

मन्त्री कुछ लजा गया। फिर उसने कहा—मै सोचता हूं, कुमारी ने आपके मन को मोह लिया है।

कुमार–सचमुच तुम मेरे मन्त्री होने योग्य हो।

मन्त्री–मेरा विचार ठीक है न ?

कुमार–सच्चा सेवक वही है जो अपने स्वामी के मन की बात ताड़ ले।

मन्त्री–मगर ताड़ कर चुप-चाप बैठा रहे तो ?

कुमार–नही, उसे रोग की चिकित्सा की भी चिन्ता करनी चाहिए।

मन्त्री– दवा तो घर मे ही है, मगर वैद्यराज जब सेवन करने की आज्ञा दे तब काम चले।

कुमार–वैद्यराज बड़े दयालु है। उन्हे जताने भर की जरूरत है।

मन्त्री–यह काम मेरे जिम्मे मे।

मन्त्री, कुमार के पास से उठ कर सीधा महारानी सत्यभामा के पास पहुँचा। कुमार का वृत्तान्त सुनाकर उसने कहा–महारानीजी ! अब समय आ गया है कि शीघ्र ही विवाह कर दिया जाय।

सत्यभामा कुमार सुभानु के पास आई। उसने कहा-वत्स! घबराओ मत। वह कन्या तुम्हारे विवाह के लिए ही अन्तःपुर मे रक्खी गई है। जल्दी ही पाणिग्रहण-समारोह किया जायेगा।

सुभानु के विवाह के लिए सत्यभामा ने सौ कन्याएँ एकत्र

की थी। सत्यभामा शीघ्र ही उन्हे अपनी पुत्रवधू वना लेना चाहती थी। वह सब के शील-स्वभाव को परख चुकी थी। सब के रहन-सहन बोल-चाल आदि से उसे सन्तोष हो चुका था।

आखिर सत्यभामा ने शुभ मुहूर्त निकलवा कर विवाह का उत्सव आरम्भ किया। ठाठ के साथ तैयारियाँ होने लगी। जब विवाह का समय सन्निकट आ गया तो शम्व-कुमारी ने सत्य-भामा से कहा—मां, मै सब कन्याओं के कर पर अपना कर रक्खूंगी। आपके कुमार को अपना बायां हाथ दूंगी और सब कन्याओं का मै वरण करूँगी।

सत्यभामा इस कथन का मर्म न समझ सकी। वह सोचने लगी कुमारी का यह एक कुतूहल है। ऐसा हो भी तो क्या हानि है? वास्तव मे भोली भामा कुमारी के इस अद्भुत सौन्दर्य से अत्यन्त प्रभावित थी और विवाह के महत्वपूर्ण अव-सर पर उसे अप्रसन्न नही करना चाहती थी। अतएव उसने गहरा विचार किये बिना ही कुमारी की वात स्वीकार कर ली।

विवाह का दिन आ पहुँचा। सुन्दर और सुसज्जित मंडप मे वर और वधुएं एकत्र हुई। पाणिग्रहण का समय आया तो पुरोहित ने कुमारी से अपना दाहिना हाथ आगे करने को कहा। मगर पुरोहित को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कुमारी ने दाहिने के बदले अपना वाम कर आगे बढ़ा दिया। पुरोहित ने कहा—राजकुमारी, वाम कर नही, दक्षिण कर आगे करो।

कुमारी ने सत्यभामा की ओर अपनी उत्सुकतापूर्ण दृष्टि डाली। सत्यभामा ने पुरोहित से कहा—महाराज, ठीक है। दक्षिण

वाम कर मे कोई अन्तर नही है। एक ही बात है। पुरोहित चुप रह गया। शंब कुमारी ने वाम कर से सुभानु का हाथ पकड़ा और दाहिने हाथ से शेष कन्याओं का पाणिग्रहण किया।

विवाह-समारोह सानन्द सम्पन्न हो गया। शम्ब कुमारी ने महल मे पदार्पण किया। वहां पहुँच कर और शय्या पर आसीन होकर उसने अपना रूप पलट लिया। कुमारी अब शम्व-कुमार के रूप मे है! उसकी प्रसन्नता का पार नही है।

जब सुभानुकुमार उसके पास पहुंचा तो देखकर विस्मय विमूढ़ हो गया! कुमारी के बदले शम्बकुमार यहाँ विराजमान है! उसे अपनी आँखो पर विश्वास न हुआ। सोचने लगा—मै भूल से दूसरे कमरे मे तो नही आ पहुँचा हूँ। उसने इधर-उधर देखा तो मालूम हुआ कि कमरा वही है। इतने मे शम्वकुमार ने भ्रुकुटि चढ़ा कर उससे कहा—'भला चाहता है तो भाग जा यहाँ से।'

सुभानु का सारा सन्देह दूर हो गया। वह उल्टे पांव वहाँ से भागा और सत्यभामा के पास पहुंचा। सुभानु बुरी तरह हांफ रहा था। उसे घबराया और हाँफता हुआ देख माता ने छाती से लगा लिया। फिर पूछा—बेटा क्या बात है? घबराता काहे को है? इस समय क्यों भाग कर यहाँ आया है?

सुभानु ने कहा—मुझे शम्ब मारने को तैयार हो रहा है। वह मेरे शयनगृह मे बैठा है।

सत्यभामा—डरपोक कही का! अब शम्व यहाँ कहां? वह तो न जाने कहाँ भटकता फिरता होगा!

सुभानु–हाथ कंगन को आरसी क्या? चलो, देख लो न!

सत्यभामा सुभानु के साथ शयनगृह मे आई। अपनी वड़ी माता को देखते ही शम्ब खड़ा हो गया। मधुर और मन्द मुस्कान के साथ उसने माता को वन्दन किया। चरण-स्पर्श करके, हाथ जोड़े उनके सामने खड़ा हो गया।

. शंव के द्वारा अतिशय विनयभाव प्रदर्शित करने पर भी सत्यभामा क्रोध से कांपने लगी। उसका अंग-अंग प्रज्जलित हो उठा। भौंहे चढ़ गई। नेत्र रक्तवर्ण हो गए। उसने शंब को तिरस्कार करते कहा–रे धूर्त, लम्पट! तू विना बुलाये क्यों मेरे घर आया?

शम्ब–माताजी! झूठ न बोलिए। आप स्वयं ही तो मुझे लाई है और गजराज पर सवार करके लाई है। आपने सौ कन्याओं के साथ मेरा विवाह किया है। सभी लोग मेरे कथन के साक्षी है।

भामा को अतीत की समग्र घटना स्मरण हो आई। उससे कुछ उत्तर देते नही बना। वास्तव मे कुमार की बात का कुछ उत्तर हो ही नही सकता था। उसने जो कुछ कहा, सत्य ही कहा था।

सत्यभामा यह सोचकर कि इन लोगों ने मुझे जबर्दस्त धोखा दिया है मन ही मन कुढ़ने लगी। उसका मुख वन्द न रह सका। उसने जी भर गालियां दी। धूर्त कही के, तेरे पिता, माता, भाई आदि सभी ठग है तो तू ठग क्यों नही होगा? जंसे के यहां तैसा ही उपजते है।

शम्ब फिर कुछ न बोला। वह मुस्कराता हुआ चुपचाप सत्यभामा के विष मय वाग्वाणो को सहन करता रहा। उसका प्रयोजन पूर्ण हो चुका था। उसे किसी से लड़ाई मोल नही लेनी थी।

नवपरिणीता सौ बहुएँ जाम्बवती के महल मे आई और उनके चरणो मे गिर पड़ी। उस समय जाम्बवती का हृदय कितना प्रफुल्लित हुआ होगा, यह कौन कह सकता है ? कहाँ तो पुत्र के देश-निर्वासन की कठोर आज्ञा के कारण वह सन्तप्त हो रही थी और कहाँ एक साथ सौ बहुओं के साथ पुत्र का मिलन हो गया! सच है—संसार बड़ा ही विषम है।

चक्रवत्परिवर्त्तन्ते दुःखानि सुखानि च।

संसार मे दुःख और सुख गाडी के पहिये के समान घुमते ही रहते है। कभी दुःख की असह्य ज्वालाएँ लपलपाती हुई समग्र शान्ति और सुख को भस्म कर देने के लिए उद्यत होती है तो कभी-कभी सुख का शीतल निर्झर अन्तस्थल को शान्त करता हुआ बहने लगता है। यहाँ न किसी का दूख स्थायी रहता है और न सुख ही अक्षय हो सकता है। इसी कारण ज्ञानी पुरुष सोचते है—

होकर सुखमें मग्न न फूलूँ,
दुख मे कभी न घबराऊँ।

सचमुच ज्ञानी जन सुख और दुख को समान भाव से ग्रहण करते है। सुख के साधन उपलब्ध होने पर वे हर्ष की उत्तंग तरंगो पर नाचने नही लगते और दुख के निमित्त मिलने

पर वे व्याकुलता का अनुभव नही करते। जो सुख मे हर्ष मनाएगा उसे दुख मे विषाद का भी अनुभव करना पडेगा। जो सुख को समभाव से भोगेगा, उसे दुख भी समभाव से विचलित नही कर सकेगा।

समभाव जीवन की एक महान कला है। तत्वज्ञानियों ने दीर्घ चिन्तन और अनुभव के पश्चात् जगत को यह महान अमृत प्रदान किया है। ज्ञानी जन परमात्मा को प्रार्थना करते हुए उनसे समभाव की याचना करते है। कहते है—

दु:खे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे,
योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः,
समं मनो मेऽस्तु सदाऽपि नाथ।

हे नाथ! दुख और सुख मे, वैरी और वन्धु पर, संयोग मे और वियोग मे, भवन मे और वन मे, मेरा मन समस्त ममत्व-भाव को त्याग कर सदा समभाव मे ही रमण किया करे।

कितना उच्चतर आदर्श है! यहां परमेश्वर से यह अभ्यर्थना नही की गई कि मै दु:ख से बचूँ और सुख पाऊँ। वरन् यह चाहा गया है कि चाहे दु:ख आ जाय, चाहे सुख आ जाय, कुछ भी आ जाय मेरा समभाव न जाय। समभाव आ जाने पर दु:ख निष्फल हो जाता है। विषैली दाढ़े निकल जाने पर जैसे सर्प की भयंकरता दूर हो जाती है, उसी प्रकार विषम

भाव का विष हट जाने पर दु:ख की भीषणता भी नष्ट हो जाती है। समभाव मे ऐसा चमत्कार है।

भव्य जीवो! अपने जीवन को एकान्त सुखमय बनाना चाहते हो तो समभाव की सुधा का पान करना सीखो। समभाव के अभाव मे स्थायी सुख कदापि प्राप्त नही हो सकता।

: ६ :

कुन्दनपुर में

एक बार रुक्मिणी देवी ने विचार किया—मेरी भतीजी वैदर्भीकुमारी अतीव लावण्यमयी है। उसका दिव्य रूप मनमोहक है। उसकी शांति अद्भुत है। वह मेरी जैसी सोहती है। वह मुझे मिल जाय तो कितना अच्छा हो। हम दोनों भुआ-भतीजी हिल-मिलकर साथ-साथ रहने मे उसका मुझे बड़ा सहारा हो जायगा।

इस प्रकार की तरंग मन मे आते ही रुक्मिणी ने एक दौत्यकर्म मे कुशल दूत को बुलवाया। उसे सब बात समझाते हुए कहा—तुम कुन्दनपुर जाओ। रुक्म राजा को मेरा आशीर्वाद कहकर कन्या वैदर्भी की प्रद्युम्नकुमार के लिये मंगनी करना।

महारानी का आदेश शिरोधार्य करके दूत कुन्दनपुर के लिए रवाना हो गया। कुछ दिन चल कर वह वहाँ जा पहुंचा। जय-विजय से रुक्म को बधा कर और रुक्मिणी देवी का शुभाशीर्वाद सुना कर दूत ने अपने आने का उद्देश्य प्रकट किया। उसने कहा—महाराज ! मै एक विशेष प्रयोजन से आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ।

रुक्म—कहो, क्या सन्देशा लाये हो ?

दूत—आपकी भगिनी आपकी सुकन्या वैदर्भी को अपनी पुत्रवधू बनाना चाहती है। प्रद्युम्नकुमार की कीर्ति तो विश्व-विश्रुत हो चुकी है। आप उनके असदृश सदगुणों से भलीभांती परिचित होंगे। उन्ही के लिये राजकुमारी की मांग की गई है।

द्वारिका के दूत को अपने समक्ष उपस्थित देखकर रुक्म को रुक्मिणी के विवाह का प्रसंग स्मरण हो आया था। अत-एव वह उदास हो गया था। पर जब दूत ने उसकी कन्या की मांग की तो रुक्म को क्रोध आ गया। वह लाल-लाल लोचनों से दूत की ओर देखने लगा।

कुछ ही क्षणों के पश्चात् उसने कहा—दूत, जाकर कह देना कि वैदर्भी उन्हे नही दी जा सकती !

दूत—महाराज, क्या आपका यह निर्णय है ?

रुक्म—हाँ, यह निर्णय है और अटल है।

दूत—क्या मै इसका कारण जान सकता हूँ ?

रुक्म–यह आवश्यक नही कि मै तुम्हारे सामने सफाई पेश करूँ !

दूत–नही, मै सफाई नही चाहता, सिर्फ कारण जानना चाहता हूँ और वह इस उद्देश्य से कि द्वारिकाधीश की पटरानी को वह बता सकूँ ।

रुक्म–मैने जो कह दिया है, वही पर्याप्त है ।

दूत–आपने जो कहा है, शीघ्रता मे कहा मालूम होता है। जरा आगा-पीछा सोच लीजिए ।

रुक्म–दूत, यह तुम्हारी धृष्टता है । चुप रहो ।

दूत–महाराज ! क्षमा कीजिए । चुप रहने के लिए मै इतनी दूर नही आया हूँ । मुझे अपना कार्य करके स्वामिनी को सन्तोष देना होगा ।

रुक्म–तुम्हारी स्वामिनी मेरी स्वामिनी नही है दूत ! मै अधिक कुछ नही कहना चाहता ।

दूत–महाराज ! आप विवेकवान है, इसी कारण मै कह रहा हूँ कि तीन खण्ड के नाथ, महापराक्रमी वासुदेव के पुत्र, समग्र विद्याओं मे निपुण, दिव्य रूप से सुशोभित और सभी तरह से अद्वितीय प्रद्युम्नकुमार को जामात बनाना आपके लिए अत्यन्त हितकर होगा ।

रुक्म कृष्णजी की प्रशंसा सुनकर आग-बबूला हो गया । क्रोध आने पर मनुष्य विवेक को बिसार देता है और जब विवेक

की लगाम उसके हाथ मे नही रहती तो चाहे जैसे वचन बोलने मे भी संकोच नही करता। रुक्म का भी यही हाल हुआ। वह कहने लगा—मै खुब जानता हूँ उस काले कपटी ग्वाल को। वह मेरा शत्रु है। मै अपनी रत्नावली को उससे सौ कोस दूर रखना चाहता हूँ। मेरी बहिन भी महाकुलच्छनी है। उसने मेरे कुल को कलंक लगाया है। मेरा भानेज कुवंश मे जन्मा है। इस कारण मै उसे अपनी कन्या नही दे सकता। मेरी कन्या के लिए योग्य वर न मिलेगा तो मै उसे कुँवारी रखना पसन्द करूँगा। यादवकुल की अपेक्षा चाण्डाल कुल मे मेरी कन्या अधिक सुखी हो सकेगी।

दूत—मै नही जानता था कि नृपति भी इतने बे लगाम हो सकते है। खैर, आपकी इच्छा। मै तो यही चाहता था कि महारानी रुक्मिणी के भ्राता को फिर नीचा न देखना पड़े। अब मै जाता हूं।

दूत अनादर पूर्वक कुन्दनपुर से रवाना होकर द्वारिका लौट आया। प्रद्युम्नकुमार की मौजूदगी मे ही उसने रुक्मिणी को कुन्दनपुर की बात चीत सुनाई। दूत के मुख से अपने सहोदर भाई का उत्तर सुनकर रुक्मिणी को बहुत बुरा लगा। वह कहने लगी—इस संसार मे ऐसे-ऐसे कृतघ्न भी मौजूद है। मैने ही उसके प्राणों की रक्षा की थी। मेरी प्रार्थना पर वासुदेवजी ने उसे प्राणों की भीक्षा दी थी। आज वही रुक्म ऐसे कटुवाक्य कहता है। नीतिज्ञ विद्वानों ने कृतघ्न के विषय मे कहा है—

उपकारिणि विस्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्।
तं जनमसत्यसन्धं, भगवति! वसुधे! कथं वहसि॥

जो पुरुष उपकार करने वाले के प्रति, भरोसा रखने वाले के प्रति और सरल-बुद्धि वाले के प्रति दुर्व्यवहार करता है-पापाचार करता है, ऐसे असत्य प्रतिज्ञा वाले मनुष्य को, हे वसुधे ! तुम क्यो धारण करती हो ?

आशय यह है कि अपने उपकारी का उपकार भूल कर उनके साथ अवांछनीय व्यवहार करने वाले लोग इस पृथ्वी पर रहने योग्य नही है।

अपनी महनीय माता के चेहरे पर विषाद के चिन्ह देखकर प्रद्युम्नकुमार ने वैदर्भी कुमारी को किसी भी उपाय से ब्याह लाने का निश्चय किया। वह बोला—माताजी चिन्ता न किजीए। विषाद को अपने पास भी न फटकने दीजिए। आप थोड़े ही समय मे अपनी भतीजी को अपने पास ही देखेगी।

यह कहकर शम्बकुमार को अपने साथ लेकर प्रद्युम्नकुमार कुन्दनपुर की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँच कर प्रद्युम्नकुमार ने अतिशय रूपवान् चाण्डाल का वेष बना लिया और शम्ब ने भी यही वेष धारण कर लिया। दोनों ने गाना और बजाना आरम्भ किया। प्रद्युम्न गाने लगा और शम्ब विविध वाद्य बजाने लगा। स्वर साधकर प्रद्युम्नकुमार ने ऐसा मनोहर राग आलापना शुरु किया कि किन्नर भी चकित हो गये। वह सातों स्वरों को आलापता, इक्कीस मूर्छनाओं और उनंचास तानों का प्रयोग करता था। उसके स्वर मे अनोखी मादकता थी, अपूर्व लालीत्य था। वह जब राग आलापता तो श्रोता चित्रलिखित से रह जाते। उसके संगीत का जादू आस-पास वालों को भी खीच कर ले आता था।

प्रद्युम्न के संगीत का सम्पूर्ण प्रकृति पर प्रभाव पड़ा। उसके हृदयहारी नाद से मुग्ध होकर वनचर भागे-भागे आने लगे। पक्षी आकाश मे मँडराने लगे। वड़े-वड़े रईस, सेठ सामन्त, वाल-गोपाल सव मुग्ध होकर उसके पास जमा होने लगे। नारियो का अनोखा ही हाल था। प्रद्युम्न के संगीत को सुनकर वे आत्मविस्मृत हो उठती थी। उन्हे अपनी अवस्था का भान ही नही रह जाता था। वे उलटा-सीधा श्रृंगार करके और पति-पुत्र को छोड़कर बाहर निकल पड़ती। संगीत का समा बँधने पर अनेक पद्मनियाँ तो नाच उठती थी। वे अपने वंश के गौरव को भूलकर पगला जैसी वन जाती थी। यहां तक कि प्रद्युम्न की संगीत सुधा का पान करनेके लिए व्योम देवता भी अटक गये। प्रद्यम्न की संगीत-साधना चमत्कारपूर्ण थी। उसकी प्रति-स्पर्धा करने की किसी मे शक्ति नही थी।

यद्यपि प्रद्युम्नकुमार के संगीत से नागरिकों के कार्यक्रममे व्याघात पड़ रहा था. तथापि उसके संगीत के अपूर्व माधुर्य के कारण किसी को भी उसके प्रति द्वेष न उपजा। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रद्युम्न ने मोहिनी-मंत्र का प्रयोग कर दिया है और समस्त चर-अचर प्राणी उसके वश मे हो गये है। सभी उसकी प्रशंसा करते थे, सभी उसके पीछे-पीछे फिर रहे थे! लोगों ने उस समय छूआछुत का भेद भाव भुला दिया था। जब सद्गुणों को ग्रहण करने की विमल दृष्टि जागृत हो जाती है तब जात-पात आदि के काल्पनिक भेद आप ही आप हवा मे उड़ जाते है।

शम्ब सोने मे सुगन्ध का काम कर रहा था। वीणा, वंशी, सितार, तबला और झांझ आदि वाद्य बजाकर वह संगीत की प्रभावक शक्ति को द्विगुणित कर रहा था। उसकी वादनकला भी अद्भूत थी। दोनो के मेल ने सारे नगर मे एक अपूर्व वातावरण खड़ा कर दिया। सर्वत्र चहल-पहल मच गई। सब लोग प्रद्युम्न के अधीन हो गये।

नर-नारियों के झुण्ड से गिरा प्रद्युम्न राजा रुक्म के दरबार मे पहुंचा। वहाँ उसने उच्च स्वर से गाना आरम्भ किया। वैदर्भीकुमारी के कानो मे भी वह मोहिनी मंत्र जा पहूँचा और वह मानो खिची हुई दरबार मे आ गई। कुमारी आकर राजा की गोद मे बैठ गई।

प्रद्युम्न का गाना सुनकर और साथ ही रूप देखकर राजकुमारी एकदम मुग्ध हो गई। निर्निमेष नयनों से वह कुमार की ओर ताकने लगी। वह कुमार के चातुर्य को भी भली-भांति लक्षित कर रही थी और पल-पल पर उसका मोह और आकर्षण बढ़ता जा रहा था। ज्यों-ज्यों वह कुमार को देखती त्यों-त्यों उसका प्यार प्रबल से प्रबलतर होता जाता था। राजकुमारी कुमारकी ओर इतनी आकृष्ट हुई कि अपने आपको ही भूल गयी। वह कुमार के सौन्दर्य और कौशल मे मानो विलीन हो गई।

वैदर्भीकुमारी ने अपने हृदय की प्रेरणा को रोकने का बहुत प्रयत्न किया, पर वह अपने प्रयत्न मे कृतकार्य न हो सकी। वह प्रद्युम्न के साथ वार्तालाप करने की अपनी उत्कण्ठा का

प्रतिरोध करने मे विफल रही । तब उसने प्रश्न किया – आप कहां से आ रहे है ?

प्रद्युम्न ने मन्द मुस्कान के साथ कहा–हम लोग स्वर्ग से मृत्यु लोक मे अवतरित हुए है । मध्यलोक मे भ्रमण करने की इच्छा हुई । बहुत से गांव देखे, नगर देखे अब यहाँ आये है ।

कुमारी–कौन नगर आपको पसंन्द आया ?

कुमार–यों तो अनेक नगर अच्छे है, पर द्वारिका की होड़ कोई नही कर सकता। बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी विशाल द्वारिका तो स्वर्गलोक का ही एक खण्ड जान पड़ती है, । प्रकृति की अनोखी छटा वहाँ देखने को मिलती है। वहां के नन्दन-कानन की प्रतिस्पर्धा करने वाले मनोरम उद्यान, आकाश से बाते करते भव्य प्रासाद, चौड़े-चौड़े राजमार्ग, सभी कुछ असाधारण है । वहां के नर-नारी भी अत्यन्त कलाप्रिय है, गुणग्राहक है, चतुर है, और समृद्ध तथा सुखी है ।

द्वारिका के अधिपति कृष्ण मुरारी साक्षात् इन्द्र के समान है । उनका बल, विक्रम, वैभव, प्रताप, यश आदि सभी कुछ असाधारण है । इस मत्युलोक मे उनके समान दूसरा कोई प्रताप-शाली पुरुष नही देखा है ।

कुमारी–ऐसा ? उनके परिवार का भी कुछ हाल जानते हो ?

प्रद्युम्न–जानता क्यो नही राजकुमारी ! जानने-देखने के लिए ही तो भटकता फिरता हूँ ।

इस प्रकार द्वारिका और कृष्णजी के प्रति वैदर्भी के हृदय मे उत्सुकता उत्पन्न करके कुमार को प्रसन्नता हुई। कुमार, राजकुमारी के मनोभावों की गहराई मे उतर कर उन्हे समझ गया। उसे अपने उद्देश्य मे सफल होने की आशा तो पहले ही थी, अब विश्वास हो गया।

—※※—

: ७ :

वैदर्भी-परिणय

भद्रपुरुष अपने मुख से अपनी बढाई नही करते। अपने आप अपनी प्रशंसा करने वाला गुणवान् पुरुष भी निर्गुण समझा जाता है, महान् पुरूष भी दूसरे की दृष्टि मे हीन और तुच्छ जचने लगता है।

परैः प्रोक्ता गुणा यस्य, निर्गुणोऽपि गुणी भवेत्।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति, स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः॥

जिसके गुणों का वखान दूसरे करते हैं, वे गुणहीन होने पर भी गुणवान् समझे जाते है। इसके विपरीत, अपने मुँह से मियां मिट्ठू वनने वाला इन्द्र भी लघुता ही पाता है।

प्रद्युम्नकुमार महान् व्यक्तित्व से सम्पन्न व्यक्ति थ

राजकुमारी ने जब कृष्णजी के परिवार के विषय मे उससे प्रश्न किया तो उसके उत्तर मे प्रद्युम्नकुमार का उल्लेख होना आवश्यक था। वह अपने विषय मे स्वयं कुछ कहना नही चाहता था, अतएव राजकुमारी के इस प्रश्न का उत्तर शम्वकुमार ने दिया।

शम्ब ने कहा—राजकुमारीजी ! वासुदेव के परिवार के विषय मे पूरी तरह कह सकना सम्भव नही है। उनका परिवार बहुत विशाल है और उसमे जो व्यक्ति सम्मिलित है, सभी अपनी-अपनी विशेषताएँ लिए है। तथापि वासुदेव के परिवार मे प्रद्युम्नकुमार परम रत्न है। वे महान सौभाग्यशाली, समस्त कलाओं और समग्र विद्याओ मे पारंगत, अद्भुत प्रभावशाली, तेजस्वी, ओजस्वी, शूरविर और पराक्रमी है। उनका रुप-सौन्दर्य अनुपम है। उन्हे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि विधाता ने सौन्दर्य की पराकाष्ठा का एक नमूना तैयार किया है और प्रद्युम्न के रुप मे उसे जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया है। पुराण-प्रसिद्ध रतिराज कामदेव भी उनकी रुपराशि के सामने फीका दिखाई देता है।

प्रद्युम्नकुमार सभी दृष्टियो से अनुपम है। विश्व की किसी भी वस्तु से उनकी तुलना नही की जा सकती। वे रुप से इन्द्र को, स्वरमाधुर्य से किन्नरों को, बल मे वासुदेवको, शूरविरता मे मे शार्दूल को, दानशीलता मे वैश्रपण को, सौम्यता मे चन्द्रमा को और तेजस्विता मे अग्नि को भी मात करने वाले है। कामिनियां उनकी कामना करती है और जिन्हे पुण्ययोग से वे

सुलभ है, वे अपना अतीव अहोभाग्य मानती है, अपने सौभाग्य-पर इतराती है, । वास्तव मे प्रद्युम्नकुमार की बरोवरी करने वाला कोई पुरुष हमने नही देखा । वे प्रकृष्ट पुण्य के धनी है । वैभव उनके चरणों मे लौटता है, निधान उनकी नजरो से उत्पन्न होते है । प्रद्युम्नकुमार मत्युलोक के मानव-समूह मे असाधारण नवयुवक है ।

शम्बकुमार के मुख से प्रद्युम्न की प्रशंसा सुनकर वैदर्भी-कुमारी के मुँह से एक लम्बी और गहरी सांस निकल पड़ी । उसका हृदय कुमार की कामना करने लगा । उसने निश्चय किया मै विवाह करूँगी तो प्रद्युम्नकुमार के साथ ही, अन्यथा आजीवन कौमार्यव्रत का पालन करूँगी । प्रद्युम्नकुमार के सिवाय संसार के समस्त पुरुष मेरे लिए पिता या भ्राता के समान है ।

इसी समय एक विशिष्ट घटना हो गई । राजा का पट्ट-हस्ती अचानक छूट गया । वह मदोन्मत्त हो गया और नगर में तहलका मच गया । उसने छूटते ही अनर्थ करना आरम्भ कर दिया । महावतों ने मिलकर लाख प्रयत्न किये मगर हाथी काबू मे न आया ।

राजा रुक्म अपने गजराज के द्वारा होने वाले अनर्थों का समाचार सुनकर बहुत चिन्ताकुल हुआ । उसने उसी समय सभा मे घोषणा कर दी—मतवाले हाथी को वश मे करने वाले को मुँह माँगा पारितोषिक दिया जायगा ।

प्रद्युम्नकुमार ऐसा स्वर्ण-अवसर कब चुकने वाले थे ।

उसने हाथी को वश मे करने का बीड़ा उठाया। वह हाथी के पास गया और एक ऐसी तान छेड़ी कि मदोन्मत्त हाथी पालतू कुत्ते की तरह सीधा होकर उसके सामने खड़ा हो गया। प्रद्युम्न-कुमार ने उसे ले जाकर यथास्थान बांध दिया।

प्रद्युम्न पहले ही लोगों के मनको मोह चुका था। इस घटना से तो सब लोगों के मुख से धन्य-धन्य की ध्वनि निकलने लगी। राजा रुक्म भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ। राजा ने कहा—श्वपाक! मै तुम्हारे कौशल से अत्यन्त सन्तुष्ट हुँ और तुम्हारे स्पृहणीय साहस की प्रशंसा नही कर सकता। तुम निश्शक और निस्संकोच होकर जो चाहो माँग लो। मै अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वही दे दूंगा।

श्वपाक ने कहा—अन्नदाता, आपके अनुग्रह से मुझे किसी वस्तु की कमी नही है। मुझे केवल रोटी बनाने वाली चाहिए। उसके अभाव मे सभी सुख अधूरे है। अतः आप कृपा करके अपनी कन्या वैदर्भीकुमारी मुझे दे दीजिए। इस भूमण्डल पर आपको मुझ जैसा वर नही मिल सकता।

रुक्म की दृष्टि मे प्रद्युम्नकुमार विद्यावान् और कलाविद होने पर आखिर एक चाण्डाल ही था। राजा चाण्डाल की इस हिमाकत भरी माँग को किस प्रकार सहन कर सकता था? चाण्डाल की माँग सुनतेही राजा आग बबूला हो उठा। घोर अपमान से उसकी नस-नस मे मानो ज्वालामुखी फूट पड़ा। वह अश्लील गालियों की बौछार करने लगा। बोला—नीच, पाजी, गँवार! जी चाहता है तेरी जीभ खिचवा लूँ। तेरा

इतना बड़ा साहस ! तू धेड होकर राजकुमारी की कामना करता है। बौना आकाश के तारे तोड़ना चाहता है। इस बार तो तुझे क्षमा करता हूँ, फिर कभी ऐसा वचन निकाला तो याद रखना, चटनी बनवा दूंगा।

प्रद्युम्न–राजन् ! आपका कोप अनुचित है। ऐसा था तो पहले ही सोच–समझ कर बोलना था। चाण्डाल नीच हो सकता है और नही भी हो सकता, मगर वचन देकर बदल जाने वाला पुरुष अवश्य ही नीच हो सकता है। आपने पहले मनचाहा माँगने के लिये कहा था, तो मेरे मन ने जो चाहा सो माँग लिया। अब अपने कहे से मुकरते हुए आपको लाज नही आती ? आप कैसे क्षत्रिय है मेरी समझ मे नही आता। धिक्कार है ऐसे क्षत्रिय कहलाने वाले को, ऐसे लोग तो मुझसे भी गये-बीते है। माँ-बाप! आपको मेरे वचन अतिशय कठोर प्रतीत हो रहे होंगे परन्तु बहुत बार सत्य को अत्यन्त कठोर और कटुक रूप भी धारण करना पड़ता है। क्षत्रिय कुल की आन स्थिर रखने के उच्च उद्देश्य से ही मैने इतना कहा है।

रुक्म वुरी तरह खीझ उठा। उसने धक्के दिलवा कर दोनों को नगर से वाहर निकलवा दिया। सभा विसर्जित हो गई।

सभा मे उपस्थित सभी जन चाण्डाल की निर्भीकता की मुक्त कण्ठ से सराहना करने लगे। कोई उसके कला-कौशल का बखान करने लगे, कोई उसकी खरी-खरी सुना देने

विशेषता का स्मरण करने लगे, सम्पूर्ण कुन्दनपुर मे वही चर्चा का एक-मात्र विषय बन गया।

कुमारी वैदर्भी राजसभा से उठकर सीधी अपने महल मे चली गई। आज उसके चित्त मे क्षोभ है, बेचैनी है, अशान्ति है, सन्ताप है। महल मे जाते ही वह अपनी शय्या पर गिर पड़ी। उसका शरीर और मस्तिक शिथिल हो गया था। किसी से बात करने की भी उसे इच्छा नही थी। वह दिन भर अनमनी ही बनी रही।

धीरे-धीरे रजनी का आगमन हुआ। उसका मन द्वारिका मे भटक रहा था। उसकी कल्पना दृष्टि मे प्रद्युम्न की मनोहर मूर्ति नाच रही थी। कुमारी नेत्र खोलती तब भी और बन्द कर लेती तब भी प्रद्युम्न ही प्रद्युम्न उसे दिखाइ पड़ रहा था। प्रद्युम्न के अतिरिक्त उसे अन्य कुछ सूझता ही नही था। ऐसे समय मे निद्रा भी वैरिन बन जाती है। वह भी पास नही फटकती। वैदर्भी करवट बदल-बदल कर रात्रि व्यतीत कर रही थी।

रात्रि के दो पहर बीते होंगे कि प्रद्युम्नकुमार विद्या-बल से उड़कर राजकुमारी के महल के उसी कमरे में जा पहुँचा, जहाँ कुमारी उसके वियोग मे तड़प रही थी। कुमारी ने प्रद्युम्नकुमार को देखा तो उसे आश्चर्य हुआ और निसर्ग की न जाने किस रहस्यमयी प्रेरणा से उसके हृदय ने सन्तोष और प्रसन्नता का अनुभव किया।

कुमार को देखते ही वह उठकर खड़ी हो गई। उसने

कहा–महानुभाव आप कौन है ? कहाँ से आये है ? आपका नाम-ठाम क्या है ? इस असमय मे किस प्रयोजन से पधारे है ?

कुमार ने मुख से कुछ न कहा। केवल एक लिखित पत्र कुमारी के सामने रख दिया।

कुमारी ने ज्यों ही पत्र मे रुक्मिणी का आशीर्वाद पढ़ा. उसके रोम-रोम मे विद्युत का संचार हो गया। उसने कुमार की ओर देखकर पूछा–आपका नाम जानने की बड़ी उत्कण्ठा है। कृपया वतला कर आभारी कीजिए।

प्रद्यम्न–मै वही हूँ जिसे तुम चाहती हो। मेरा नाम प्रद्युम्नकुमार है। तुम्हारी कामना पूरी करने के उद्देश्य से आया हूँ।

कुमारी के हर्ष का पार न रहा। लज्जा के कारण उसके मुख मण्डल पर लालिमा दौड़ गई। नयनों से अनुराग टपकने लगा। वह धरती की ओर देखने लगी।

प्रद्युम्न राजकुमारी के मनोभावो को समझ गया। फिर भी बोला–दाम्पत्य सम्बन्ध जीवन भर का सम्बन्ध है। गृहस्थ-जीवन का सुख दुःख उसी पर निर्भर है। अतएव जीवन मे विवाह का स्थायी और गम्भीर महत्व है। वह अपनी आन्तरिक अभिलाषा पर ही अवलम्बित होना चाहिए। उसने कहा कुमारी ! किसी क्षणिक आवेश के वशीभूत होकर विवाह के सम्वन्ध मे निर्णय न करना। खूब सोच समझ लेना। यह भी

स्मरण रखना कि तुम्हारे पिता इस सम्बन्ध को पसन्द नही करेंगे। फिर भी चाहो तो मै प्रस्तुत हूँ। अपनी अभिलाषा सफल कर सकती हो।

कुमारी कृतसंकल्पा थी। उसने प्रद्युम्नकुमार का मानसिक वरण कर लिया था। अतएव कुमार की बात सुनकर उसने कहा—प्राणनाथ ! आपकी चेतावनी यथार्थ है। परन्तु मुझे अब कुछ नवीन नही सोचना है। मै पहले ही सोच चुकी हूँ। मै अपना जीवन आपके श्रीचरणो मे समर्पित कर चुकी हूँ। मुझे केवल यही जानना था कि आप भी मुझे अंगीकार करने को उद्यत है! वह भी जान चुकी। अब मेरे मन मे कोई दुविधा नही है। आपके दर्शन पाकर मै कृतार्थ हुई।

इसके पश्चात् वैदर्भीकुमारी ने एक ओर जाकर विवाहोचित पीताम्बर धारण किया और हाथ मे कंकण-सूत्र बाँध लिया। दोनों का विवाह हो गया।

कुमार ने रात्रि मे वही विश्राम किया। प्रात:काल उठकर वह शम्ब के पास आ पहुँचा। शम्ब ने जब सुना कि उनका कुन्दनपुर आने का प्रयोजन पूर्ण हो गया है तो उसे असीम हर्ष हुआ।

: ८ :

पुण्य - प्रकर्ष

रजनी-जागरण के कारण राजकुमारी को प्रद्युम्नकुमार के चले जाने के पश्चात् गहरी निद्रा आ गई। सूर्योदय हो गया था, फिर भी वह सो रही थी। नित्य-नियम के अनुसार कुमारी की धाय माता दातौन और पानी लेकर कुमारी के कमरे मे आई। प्रतिदिन कुमारी पहले ही जाग उठती थी। आज इतना दिन चढ़ चुकने पर भी यह क्यों नही जागी है, यह सोच धाय माता को आश्चर्य हुआ। वह धीरे-धीरे दबे-पाँव उसके पास पहुँची। पास जाकर उसने विवाह के चिन्ह देखे तो बिस्मित हो गई। उसे भय भी हुआ। धायमाता उसी समय वापिस लौट आई। वह सोचने लगी—राजकुमारी ने रात्रि के समय न जाने किसके साथ विवाह कर लिया है! माता और पिता की अनुमति प्राप्त किये बिना ही विवाह करके इसने बड़ी जोखम उठाई है। राजकुमारी ने अन्याय किया है।

इस प्रकार मन ही मन विचार करती धाय माता राजा-रानी के पास पहुँची। उसने अपनी आँखो से जो कुछ देखा था, उन्हे कह सुनाया। राजा-रानी को पहले तो विश्वास नही हुआ, फिर धायमाता के कहने पर वे राजकुमारी के पास

आये। विवाह के चिन्ह देख कर उनका संशय दूर हो गया। क्रोध से वे पागल हो गए।

मनुष्य किसी घटना को उसके गुण या अवगुण की दृष्टि से न देख कर अपने विचारो या पूर्वकृत निश्चय की दृष्टि से देखता है। यहाँ भी यही हो रहा था। वैदर्भी का विवाह होना आवश्यक था। माता-पिता स्वयं उसके लिए चिन्तित थे। विवाह योग्य वर के साथ होना चाहिए, यह भी वे मानते थे। कुमारी ने विवाह करके इन दोनों बातों मे से किसी का विरोध नही किया था। उसने विवाह कर लिया और योग्यतर वर के साथ कर लिया। माता-पिता की अभिलाषा अनायास ही पूर्ण हो गई। इस दृष्टिकोण से उनके अप्रसन्न या कुपित होने के लिए कोई अवकाश नही था। फिर भी उनके व्यक्तिगत अहंकार को चोट पहुँची। वर का निश्चय करना वे अपना अधिकार मान बैठे थे। उस अधिकार का अपहरण हो जाने के कारण उन्हे क्रोध आया! मनुष्य मे कितनी दुर्बलता है। अगर व्यक्तिगत दुर्बलताओं से मुक्त होकर गुणावगुण की तराजू पर ही घटनाओं को तोलना सीख ले तो उसकी कितनी ही परेशानियाँ दूर हो जाएँ।

लोक व्यवहार मे कन्या पूजनीय गिनी जाती है, परन्तु रुक्म उस समय आपे से बाहर हो गया था। उसने सोती हुई राजकुमारी को लात मार कर जगाया। राजकुमारी सहसा उठी और सामने माता-पिता को देखकर घबराहट एवं लज्जा से सिकुड़ गई। उसने अपने अंगोपांग वस्त्र से आच्छादित कर लिये।

रुक्म ने कड़क कर कहा—निर्लज्जे ! सच बता, तू ने किसके साथ यह कुकर्म किया है ?

कुमारी चुप थी। लज्जा के मारे वह एक भी शब्द न बोल सकी। स्वेच्छा से किये गये पवित्र पाणिग्रहण को कुकर्म, संज्ञा से सम्बोधित करने वाले अपने पिता के प्रति उसे क्षोभ हुआ। मगर वह अपने क्षोभ को पी गई। उसने कुछ भी उत्तर न दिया।

राजकुमारी को मौन देख रुक्म ने बड़बड़ाते हुए कहा—यह कुलक्षणी है। हमारे कुल मे विष की बेल की तरह जनमी है। यही हमारी वैरिन है। इस पापिनी ने मुझे नीचे दिखलाया है ! मैने चाण्डाल के मुख से इसके लिए कितनी गालियां सुनी।

रानी सोच-विचार मे पड़ी थी। वह कुमारी के कार्य का समर्थन नही कर सकती थी, परन्तु उसके कार्य को इतना बुरा भी नही समझ सकती थी। कम से कम जब तक उसके पति का पता न चल जाय तब तक वह ऐसी कठोरता दिखलाना उचित नही समझती थी। मगर रुक्म के क्रोध का ख्याल करके अपने मनोभाव को व्यक्त करने मे भी असमर्थ थी। आखिर वह बोली—नाथ, अब आगे का विचार कीजिए।

रुक्म—विचार क्या करना है ? बिगड़े अन्न को घर मे रखना ठीक नही है। उसे तो उकरड़े पर फेंक देना ही योग्य है। यह राजघराने के योग्य नही, चाण्डाल कुल के योग्य है।

योग्यं योग्येन योजयेत् ।

जो जिस योग्य हो, उसे उसीके साथ जोड़ना चाहिए।

राजा ने कल वाले चाण्डाल को उसी समय बुला लिया। चांडाल भी तत्काल आ गया। राजा बोला—मातंग, जो चाहो, माँग लो। मै कल वाली अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना चाहता हूं। मै प्रतिज्ञा-भ्रष्ट होने का कलंक अपने माथे पर नही लगाना चाहता।

चाण्डाल—मै तो कल ही निवेदन कर चुका हूं। देना चाहे तो कुमारी को दे दें। मुझे और किसी चीज की चाह नही है।

रुक्म ने राजकुमारी वैदर्भी उसे सौप दी।

चाण्डाल आश्चर्य का भाव प्रदर्शित करता हुआ बोला—महाराज! आपके सत्य की परीक्षा करने के लिए ही मैने वैदर्भी-कुमारी की याचना की थी। कहां राजदुलारी और कहाँ चाण्डाल! चाण्डाल के घर मे वह नही सोहेगी। आप और कुछ दे दीजिये। राजकुमारी मुझे नही चाहिए।

रुक्म—नही, तुम कलाविद् हो। इसे ले जाओ।

चाण्डाल—पृथ्वीनाथ! कला से अन्त:करण की तृप्ति होती है। कला अन्तरतर की भूख बुझा सकती है। उदर की पूर्ति तो कला से होगी नहीं। पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए अन्न के दानों की आवश्यकता है। मेरे घर मे वह नही है।

बड़ी मेहनत करके हम दोनो अपना पेट पालते है। राजकुमारी का पेट किस तरह भर सकेंगे ?

रुक्म— तुम अपना पेट पालना वह अपना पेट पाल लेगी।

चाण्डाल—राजदुलारी सुकुमारी है। उससे श्रम न होगा। मुझे उलटी उसकी सेवा करना पड़ेगी।

रुक्म—जो दे चुका सो दे चुका। तुम चाहे सेवा कराओ, चाहे सेवा करो। मुझे इससे कोई प्रयोजन नही है।

राजकुमारी को पता नही था कि पिता अपनी सन्तान पर इतना अधिक निर्दय हो सकता है। रुक्म का रुख देखकर वह चकित रह गई। इस व्यवहार से उसे कैसी मार्मिक व्यथा हुई, कहा नही जा सकता। परन्तु यथेष्ट वर पाकर उसे सन्तोष भी हो रहा था।

राजकुमारी अपने हृदय को रोक न सकी। वह फूट-फूट कर रोने लगी। आखिर चाण्डाल-वेशी प्रद्युम्नकुमार उसे लेकर गाँव से बाहर आया। नगर भर मे यह चर्चा फैल गई। किसी ने राजा की निन्दा की, किसी ने प्रशंसा की। भांति-भांति के विचार व्यक्त किये जाने लगे।

शम्बकुमार ने नवागत भाभी का अतिशय प्रीति के साथ स्वागत किया। दोनो मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। आगे का कार्यक्रम निर्धारित होने लगा। तब शम्ब ने कहा—हमारे प्रवास का प्रयोजन पूर्ण हो चुका है। परन्तु अपनी वास्तविकता को

प्रकट किये बिना यहाँ से जाना योग्य नही जान पडता। भाभी के हक मे भी यह अच्छा नही है। अतएव कोई उपाय करना चाहिये जिससे हमारी वास्तविकता लोग समझ ले।

कुमार के लिए कोई भी करामात दुष्कर नही थी। शम्ब की बात कुमार को भी जंच गई। उसने विद्या के प्रभाव से उसी समय नौ खण्ड का महल तैयार कर लिया। राजसी ठाठ जम गया। रत्नजटित स्तम्भों और नवविध रंगो से सुशोभित प्रासाद स्वर्ग-विमान का स्मरण कराने लगा। उसमे कहीं नाटक होने लगा, कहीं विविध प्रकार के वाद्य वजने लगे। कही गणिकाएं नाचने-गाने लगी।

कुमार, शम्ब और राजकुमारी तीनो अपूर्व शोभासम्पन्न सिंहासन पर विराजमान होकर नाटक देखने लगे।

महल के बाहर के भाग मे एक विशाल दानशाला खोल दी गई जहाँ याचकों को मुह-माँगा दान मिलने लगा।

उधर रुक्म की मानसिक स्थिति वदल रही थी। क्रोध के वश होकर उसने अपनी प्राण-प्यारी कन्या चाण्डाल के हाथ मे सौप तो दी, मगर जब उसका क्रोध शांत हुआ तो उसे अपना यह कार्य बुरी तरह खलने लगा। उसे ऐसी मर्मवेधी पीड़ा होने लगी, जैसे हजार बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारा हो। वह सोचने लगा—हाय! क्रोध से पागल होकर मैने कितना अनर्थ कर डाला है! मैने अपनी कन्या की बलि चढ़ा दी है! आह! मै कितना गिर गया। मेरे पतन की कही सीमा नही है। अपनी बिटिया को चाण्डाल के सुपुर्द करके जीवन भर दुखी

बनाने की अपेक्षा तो उसका गला घोंट देना ही क्या बुरा था ? मै कितना क्रूर हूँ ! मुझे धिक्कार है ! मैने घोर अनर्थ कर डाला है, ऐसा अनर्थ कि उसका प्रतिकार होना भी अब सम्भव नही रहा। लोग कहते है—पूत कपूत हो जाता है, पर माता-पिता कुमाता-पिता नही होते। मगर मै, कितना अधम हूँ ! मै कु-पिता हो गया ! पानी काष्ठ को बड़ा करता है। बड़ा होकर वह नौका का रूप धारण करता है। और पानी की छाती पर अपना मार्ग बनाता है। फिर भी पानी उसे डुबाता नही। माता-पिता भी ऐसे होते है। लेकिन क्रोध ने मुझे अन्धा कर दिया। मै विवेक से भ्रष्ट हो गया।

वास्तव मे क्रोध महान् अनर्थकारी है। क्रोध के वशीभूत होकर मनुष्य घृणित से घृणित पैशाचिक कृत्य भी कर डालता है। यथार्थ ही कहा है—

क्रोधान्धाः पश्य निघ्नन्ति, पितरं मातरं गुरुम् ।
सुहृदं सोदरं दारानात्मानमपि निर्घृणाः ॥

क्रोध से अन्धे बने हुए लोग अपने पिता, माता और गुरु की भी हत्या करने से नही चूकते। वे अपने मित्र, सहोदर भ्राता और पत्नी के भी प्राण ले लेते है। कई लोग आत्मघात का भी पातक कर डालते है। क्रोध मनुष्य को कठोर, क्रूर और कलंकित कर देता है।

अतएव बुद्धिमानों का कथन है कि—

येनान्धीकृतमानसो न मनुते प्रायः कुलीनोऽपि सन्,
कृत्याकृत्यविवेकमेत्यधमवल्लोके परित्यज्यताम् ।

धर्मं नो गणयत्यतिप्रियमपि द्वेष्टि स्वयं खिद्यते,
स क्षान्ति-क्षुरिकाधरेण हृदय! क्रोधो विजेयस्त्वया॥

क्रोध से अन्धा होकर मनुष्य कुलीन होकर भी भूल जाता है कि मेरा क्या कर्त्तव्य है और क्या अकर्त्तव्य है ? क्रोध की बदौलत वह मनुष्य अधम पुरुष की भाँति सबकी दृष्टि मे हेय बन जाता है। क्रोधी धर्म की परवाह नही करता, अपने अतीव प्रेमपात्र के प्रति भी द्वेषमय बन जाता है और आप स्वयं पश्चात्ताप करता है, खेद पाता है। अतएव हे अन्तरात्मन् ! इस क्रोध को क्षमा की छुरी लेकर जीत ले।

राजा रुक्म पर यह उक्ति पूरी तरह घटित होती है। उसने कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का विस्मरण कर दिया, पितृधर्म का परित्याग कर दिया, अपनी प्यारी पुत्री से द्वेष किया और फिर स्वयं को भी पश्चाताप एवं खेद करना पड़ा।

रुक्म पश्चात्ताप की धूनी मे दग्ध हो रहा था कि गाँव के बाहर से आये हुए एक आदमी ने उसे दानशाला और महल आदि सम्बन्धी सब समाचार सुनाये। राजा ने उसी समय अपने कुछ सेवकों को असल बात जानने के लिए भेजा। सेवकों ने वहाँ जाकर और यथासम्भव पता लगा कर राजा से कहा— स्वामिन् ! महाराज श्री कृष्णजी के कोई कुमार आये है। वे अतिशय पुण्यशाली है। पुण्य के प्रभा से उनके लिए वहां नौ मन्जिल का महल बन गया है। विशाल दानशाला बन गई है। सब शाही ठाट जमा हुआ है।

राजा के विस्मय का अन्त न रहा। वह समझ गया की चाण्डाल वाली घटना से ही इसका सम्वन्ध जान पड़ता है। वह उसी समय पैदल उस ओर चल पड़ा, जहां कुमार निवास कर रहे थे।

मामाजी को अपनी ओर आते देख दोनो कुमार उठ खड़े हुए। दोनों ने सामने कुछ दूर जाकर उनका स्वागत किया। नीचे झुक कर प्रणाम किया। रुक्म ने उन्हे उठाकर अपनी छाती से चिपटा लिया। वह हर्ष से गद्गद् हो उठा। आशीर्वाद देकर उसने अपनी प्रसन्नता प्रदर्शित की।

बहुत धूमधाम के साथ राजा ने राजकुमारों का और राजकुमारी का नगर प्रवेश कराया। अपने महल मे रक्खा। नगर-जन यह सब देखकर आश्चर्यान्वित हो गये और यदुवंश की भूरि-भूरि-सराहना करने लगे। कहने लगे—प्रद्युम्नकुमार धन्य है! सुयोग्य पिता ने सुयोग्य पुत्र पाया। प्रद्युम्न यदुवंश के अवतंस है।

वैदर्भीकुमारी की माता के प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। उसने सोचा मेरा भाग्य जाग गया है जो ऐसे अद्वितीय जामात की प्राप्ति हुई है।

कुछ दिनों तक रुक्म का अतिथि रहकर कुमार ने द्वारिका लौटने का निश्चय किया। राजा ने खूव दहेज देकर [illegible] विदाई दी। दोनों कुमार नवोढा वधू के साथ द्वारिका पहुंचे। माता-पिता के चरणस्पर्श करके प्रद्युम्न ने [illegible], [illegible], जिसे

तुम चाहती थी, ले आया हूँ। माता ने प्रसन्न होकर वैदर्भी को हृदय से लगा लिया और अपने पुत्र के पुण्य की मन ही मन सराहना की। वास्तव मे प्रद्युम्नकुमार का पुण्य अनुपम और प्रबल था। वह जिस काम मे हाथ डालता, सफलता पाता ही था। पुण्यवान् पुरुष के सभी मनोरथ अनायास ही सफल हो जाते है। पुण्य का उदय होने पर सब अनुकूल और अभीष्ट संयोगों की प्राप्ति होती है। ऐसे पुण्यात्मा पुरुष कोई विरले ही होते है। कहा है–

> पत्नी प्रेमवती सुतः सविनयो, भ्राता गुणालङ्कृतः,
> स्निग्धो बन्धुजनः सखाऽतिचतुरो नित्यं प्रसन्न प्रभुः।
> निर्लोभोऽनुचरः स्वबन्धु–सुमुनिप्रायोपभोग्यं धनं,
> पुण्यानामुदयेन सन्ततमिदं कस्यापि सम्पद्यते ॥

इस जगत् मे कोई विरले ही मनुष्य ऐसे पुण्यशाली होते है जिन्हे प्रेम परायणा पत्नी की प्राप्ति हो, विनीत पुत्र मिले, सद्‌गुणवान भाई मिले, स्नेहशील भाई-वन्द मिले, चतुर मित्र मिले, सदा प्रसन्न रहने वाला स्वामी मिले, लालच रहित सेवक मिले और अपने बान्धववर्ग तथा साधु सन्तो को साता उपजाने मे व्यय होने वाला धन प्राप्त हो !

इन सब संयोगों का मिलना दुर्लभ होते हुए भी प्रकृष्ट पुण्यशाली पुरुष को सुलभ होता है। प्रद्युम्नकुमार ऐसा ही पुण्य पुरुष था। उसे सभी अनुकूल संयोग प्राप्त हुए थे।

प्रद्युम्नकुमार के पुण्य प्रभाव से प्रोज्ज्वल इस चरित्र को

पढ़-सुन कर किस को पुण्य की अभिलाषा न होगी ? मगर पुण्य का आचरण किये बिना पुण्य का फल प्राप्त नही हो सकता। बीज बोये बिना फल नही मिल सकते। अतएव जो प्रशस्त पुण्य का फल प्राप्त करना चाहते है, उन्हे पुण्य के बीज पहले बोने होंगे। पुण्य के बीज क्या है, यह समझ लेना आवश्यक है।

दाने शक्तिः श्रुते भक्तिर्गुरूपास्तिर्गुणे रतिः।
दमे मतिर्दयावृत्तिः, षडमी सुकृतांकुराः ॥

निम्नलिखित छह बातों से पुण्य के अंकुरों का आरोपण किया जाता है, अर्थात् पुण्य के बीज बोये जाते है:–

(१) दान देने की शक्ति होना–बहुत से लोग ऐसे है जो दान देने की सामग्री पाकर के भी दान नही दे सकते। पहले वतलाया जा चुका है कि दान देने के लिए विपुल वैभव की आवश्यकता नही है, वल्कि उदार भावना की ही अपेक्षा है। जो वैभवविहीन होकर भी उदार भावना से विभूषित है, वही दान देने की शक्ति से भी सम्पन्न है। एक उदार हृदया-निर्धन जितना दान दे सकता है और उस दान के द्वारा जितना पुण्योपार्जन कर सकता है, उतना अनुदार श्रीमंत नही। तात्पर्य यह है कि सम्पति चाहे कम हो या ज्यादा, उदार भावना के साथ अगर दान दिया जाता है तो उदार दाता पुण्य को प्राप्त कर लेता है। प्रद्युम्नकुमार ने उदारता और प्रीति के साथ पूर्वभव मे मुनि को आहारदान दिया था, यह बात पहले ही प्रकट की जा चुकी है।

(२) श्रुतभक्ति–दूसरा पुण्योपार्जन का कारण है श्रुत मे

भक्ति होना। स्वयं आदर पूर्वक वीतराग भगवान की वाणी को श्रवण करना, शास्त्रों का स्वाध्याय करना, दूसरों को श्रवण कराना, भगवान् की वाणी का जगत् के कल्याण के लिए प्रचार करना, शास्त्रों के ज्ञान का प्रचार करके जगत् के अज्ञान को दूर करना, जिज्ञासु जनों को ज्ञान-प्राप्ति के साधन सुलभ कर देना, शास्त्रों की प्रभावना करना और जिनेन्द्रदेव की वाणी के प्रति विनय का भाव रखना, यह सब श्रुतभक्ति के अन्तर्गत है।

(३) गुरु की उपासना-ज्ञानवान और सदाचार-प्रवृत्त गुरु के सानिध्य मे रहना गुरु की संगति करना, उनके मुखारविन्द से उपदेश श्रवण करना और उनके प्रति हृदय मे अत्यन्त आदर का भाव रखना गुरु उपासना है।

(४) गुणानुराग—सद्गुणों के प्रति सहज प्रीति होनी चाहिए। सदैव दूसरों के गुणों को ग्रहण करने की भावना रहना, गुणीजनों का आदर एवं बहुमान करना, गुणवानों को यथोचित सहाय्य देकर उन्हे निश्चिन्त कर देना और अपने गुणों को वढ़ाना, यह गुणानुराग कहलाता है। गुणानुरागी पुरुष अपने शत्रु के भी गुणों की प्रशसा करता है। दोषों की ओर उनकी दृष्टि नही जाती। वह सब के गुण देखता है और अपने आपको गुणगरिमा से विभूषित करता है।

(५) इन्द्रियदमन की भावना—जहाँ तक सम्भव हो, अपनी इन्द्रियों को अपने वश मे रखना चाहिए। इन्द्रियों को वशीभूत कर रखने वाला ही आनन्द और सन्तोष पा सकता

है। जिसने अपनी इन्द्रियों को स्वच्छन्द छोड़ दिया है, वह कदापि सुखी नही हो सकता। इन्द्रियाँ उसे दूर-दूर तक घसीट ले जाती है। वह सदैव अतृप्त बना रहता है। और उसकी अतृप्ति उसके अन्त:करण मे व्याकुलता उत्पन्न करती रहती है। जिसने इन्द्रियों को अपना गुलाम नही बनाया, वरन जो स्वयं इन्द्रियों का गुलाम बना हुआ है, वह पाप के पथ मे प्रवृत्त होता है और पुण्य के प्रकाशमय पथ पर एक पैर भी नही बढा पाता।

(६) दयाभावना—दया पुण्य की जननी है। जिसके अन्त-स्तल मे दया का अखण्ड स्रोत बहता रहता है। वह धन्य है! जो दुखी जीवों को देखकर स्वयं दुख का अनुभव करता है और उनके दुख के प्रतिकार के लिए प्रयत्नशील होता है, वह परमोत्कृष्ट पुण्य प्राप्त करता है।

प्रद्युम्नकुमार ने पूर्व मे पुण्य रूपी वृक्ष के जो बीज बोये थे, आज वही अपना मधुर फल दे रहे है। वह संसार सम्बन्धी सभी सुखों को भोग रहा है। उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो रहे है। कांति फैल रही है, प्रशसा हो रही है। सभी उसका रौब मानते है।

शम्ब और प्रद्युम्न मे गाढ़ी प्रीति है। दोनों दो तन और एक मन है। प्रद्युम्न को देखकर उसके माता-पिता का हृदय शीतल हो जाता है। वास्तव मे प्रद्युम्न पुण्य की प्रतिमा जान पड़ता है।

: ९ :

धर्म-श्रवण

पूर्वभव मे उपार्जित पुण्य, पिता के परिश्रम द्वारा उपार्जित पूँजी के समान है। पिता की पूँजी को पाकर कोई पुत्र अपने परिश्रम द्वारा उसे वढ़ाता है, कोई पूँजी को कायम रखता है और कोई उसे आमोद-प्रमोद मे उड़ा कर समाप्त कर देता है। लोक व्यवहार मे ऐसे पुत्र अनुक्रम से उत्तम, मध्यम और अधम कहलाते है। शास्त्र मे भी ऐसी ही उपमा दी गई है–

जहा य तिन्नि वाणिया, मूलं घेत्त् ण निग्गया।
एगोऽत्थ लहई लाभं, एग्गो मूलेण आगओ ॥
एगो मूलं पि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ।
ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह ॥

शास्त्रकार कहते है–कल्पना कीजिए, तीन वणिक् पूंजी लेकर व्यापार करने के उद्देश्य से अपने घर से निकले। उनमे से एक ने सोचसमझकर व्यापार किया और नफा कमाया। दूसरा व्यापार करके भी लाभ न उठा सका, उसने अपनी मूल पूंजी ही कायम रक्खी। मगर तीसरा वणिक व्यापार कुशल नही था। उसने बिना सोचे समझे व्यापार किया और मूल-पूंजी भी गंवा दी। यह व्यवहारिक उपमा धर्म के विषय मे भी लागू होती है।

धर्म के विषय मे इस उपमा को घटाते हुए शास्त्रकार ने बतलाया है कि पुण्य से प्राप्त (मानव भव) मूल पूंजी के समान है। जो मनुष्य इस पूँजी का प्रयोग करके विशिष्ट पुण्य का उपार्जन करते है, वे धर्म के व्यापार मे नफा पानेवाले वणिक के समान है,। उन्हे मनुष्यभव के पश्चात् देवगति की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य मध्यम कोटि का पुण्य उपार्जन करते है अर्थात् जितने पुण्य का भोग करते है, उतना ही नवीन पुण्य भी उपार्जन करके फिर मनुष्य भव पाते है, वे मध्यम-पुरुष कहलाते है और जो पुण्य के उदय से प्राप्त हुए मनुष्यभव को भोग-विलास मे एकान्त रूप से आसक्त होकर गँवा देते है, नवीन पुण्य का उपार्जन नही करते, वे मूल-पूँजी गँवाकर दुखी होने वाले वणिक के समान है। उन्हे आगे चलकर नरक या तिर्यञ्च गति का अतिथि बनना पड़ता है।

इस प्रकार अपने पुण्य की पूँजी को गँवाने वाले, भविष्य की ओर से आँखे मूंद लेने वाले व अदीर्घदर्शी जनों को देखकर ज्ञानी जनों के हृदय मे अनुकम्पा का स्रोत प्रवाहित होने लगता है। वे अनुकम्पा प्रेरित ज्ञानी उससे कहते है–

सुखमास्से सुखं शेषे, भुङ्क्षे पिबसि खेलसि।
न जाने त्वग्रतः पुण्यैर्विना ते किं भविष्यति॥

हे भोले भाई! तू मजे मे रहता है, सुख की नींद सोता है, मनचाहा खाता पीता और खेलता है, तनिक भी पुण्य का उपार्जन नही करता। समझ मे नही आता कि आगे चलकर तेरी क्या दशा होगी?

हे भव्य ! जितना पुण्य तेरे पल्ले मे है, उसे यही समाप्त करलेगा और आगे के लिए कुछ नवीन उपार्जन नही करेगा तो तेरी अवस्था अत्यन्त दयनीय हो जायगी । इसलिए तू आगे की भी चिन्ता कर। वर्त्तमान मे ही अपने को मत भूल । यह न सोच कि जीवन लम्बा है । अभी भोग विलास कर लूं, आगे धर्म-कर्म कर लूंगा । मुत्यु का क्या भरोसा है ?

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वऽत्थि पलायणं ।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥

जिसकी मृत्यु के साथ मैत्री हो अथवा मृत्यु आने पर जो भागकर बच सकता हो या जानता हो कि मेरी मृत्यु आने वाली नही है; वही भविष्य पर निर्भर रह सकता है।

इन तीनों बातों मे से तुम किस पर विश्वास करते हो ? मृत्यु के साथ तुम्हारी मित्रता है ? वह तुम्हे अपना मित्र समझ कर छोड़ देगा ? नही।

तो फिर क्या तुम्हारी टांगो मे इतनी ताकत है कि मृत्यु के आने पर तुम भाग जाओगे और वह तुम्हे नही पकड़ सकेगा ? यह भी नही।

अच्छा, तुम समझते हो कि मृत्यु आएगा ही नही ? अथवा यह जानते हो कि इतने समय तक तो नही आएगा ? यह भी नही जानते।

तो पगले ! किस भरोसे पर निश्चिन्त बैठा है ? आगे की

चिन्ता क्यों नही करता ? तुझे परलोक जाना पड़ेगा। संसार की कोई बड़ी से बड़ी शक्ति भी तुझे बचा नही सकेगी। तेरा असीम वैभव और प्रेमी परिवार, कोई भी तेरी रक्षा करने मे समर्थ न होगा। एक असहाय और दीन जन की तरह ही तुझे यहां से रवाना होना है।

अक्षय धन-परिपूर्ण खजाने शरण जीव को होते,
तो अनादि के धनी सभी इस भूतल पर ही होते।
पर न कारगर धन होता है बन्धु! मृत्यु की वेला,
राजपाट सब छोड़ चला जाता है जीव अकेला॥

यह सत्य है, कटु भले ही हो परन्तु इसमे अतिशयोक्ति का अंश भी नही है। इस कथन की सत्यता के प्रमाण प्रतिदिन मिलते रहते है। फिर भी आश्चर्य है कि यह जीव प्रमाद मे पड़ा हुआ है।

उपरोक्त तीन प्रकार के पुरुषों मे प्रथम कोटि के पुरुष ही विवेकशील कहे जा सकते है जो पूर्वकृत पुण्य का उपभोग करते हुए नवीन पुण्य का भी संचय करते हं, बल्कि जो अपने समग्र पुण्य को आत्मकल्याण के पावन अनुष्ठान मे लगा देते है।

प्रद्युम्नकुमार ऐसे ही विरल विवेकशील व्यक्तियों मे था। वह उड़ाऊ पूत नही, कमाऊ बेटा था। अवसर मिलते ही किस प्रकार उसकी परिणति सहसा पलट जाती है और किस प्रकार वह आत्मा का उद्धार करता है, यह बात पाठक आगे पढ़ेंगे।

उस समय बाईसवे तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि इस महीमण्डल पर विचर रहे थे। भगवान् अरिष्टनेमि यदुवंश की विमलतम विभूति थे, कृष्णजी के लघुभ्राता थे और द्वारिका मे ही बाल्यावस्था मे रहे थे। परन्तु अब वे प्राणी मात्र के बन्धु थे। सारे संसार के कल्याण के निमित्त वे मध्यलोक मे विचरते थे। वे धर्म का प्रकाश फैलाते और मिथ्यात्व के गहन अन्धकार का विनाश करते हुए भास्कर की तरह विचरण कर रहे थे। वे धर्म की लोकोत्तर नौका मे भव्य जीवों को बिठा कर संसार-सागर से पार उतारते थे। अठारह हजार मुनियों और चालीस हजार आर्यिकाओं का उनका परिवार था। कोटि-कोटि देववृन्द उनकी सेवा मे उपस्थित रहकर अपना अहोभाग्य समझते थे। चौतीस अतिशय और पैंतीस वाणी की असाधारण विशेषताओं से विभूषित थे।

विचरते-विचरते प्रभु ने द्वारिका मे पदार्पण किया और नगरी के बाह्य भाग मे स्थित देवरमण नामक उद्यान मे, उद्यानपाल की आज्ञा लेकर ठहरे।

उद्यानपाल यथोचित उपहार लेकर वासुदेव को प्रभु के पदार्पण का संवाद देने के लिए रवाना हुआ। सम्वाद पाकर वासुदेव अत्यन्त प्रसन्न हुए। तीर्थंकर देव के आगमन की बधाई देने वाले उद्यानपाल को उन्होने राजमुकुट को छोडकर शरीर पर धारण किये हुए समस्त आभूषण उतार कर इनाम दे दिये। उसी समय सिंहासन से नीचे उतर कर भगवान को भावमय वन्दना की। भेरी बजवाई, जिससे समस्त जनता को

भगवान् के आगमन की खबर लग जाय। तत्पश्चात् चतुरंगी सेना तैयार करने का आदेश दिया और आप स्वयं वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो गये। फिर गजराज पर आरूढ़ होकर सेना और परिवार के साथ प्रभु की उपासना के लिए रवाना हुए। भगवान के नजदीक पहूँचने पर, पाँचों अभिगम साध कर हाथी से नीचे उतर कर उसी जगह पहुंचे जहाँ जगत् के नाथ भगवान् विराजमान थे।

प्रद्युम्न, शम्ब, भानु और सुभानुकुमार अपने-अपने महल मे थे। उन्हे भी भगवान के पदार्पण का समाचार विदित हुआ। वे भी यथोचित शृंगार कर जिन-दर्शन के लिए चल दिये।

भगवान् का समवसरण लग रहा था। चारों निकायों के देव और देवियाँ उपस्थित थे, मनुष्य और तिर्यञ्च भी यथा-स्थान बैठे थे। परिषद् भरी हुई थी। अरिहन्त प्रभु ने धर्म-कथा आरम्भ की:—

भव्य जीवो! संसारी जीव अनादि काल से भवभ्रमण कर रहा है। स्वभाव से सिद्ध-बुद्ध स्वरूप होने पर भी विभाव परिणति के अधीन होने के कारण जीव जन्म-मरण के चक्कर मे पड़ा है। यह चौरासी का चक्कर उस समय समाप्त होता है, जव जीव अपनी विशुद्ध स्थिति को प्राप्त करने का उपाय रत्नत्रय की आराधना है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र, यह तीनों रत्नत्रय कहलाते है। इनकी परिपूर्णता ही मुक्ति का कारण है।

रत्नत्रय की पूर्णता मनुष्य जीवन मे ही हो सकती है,

परन्तु मनुष्य जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। स्वर्ग के अधिपति और देवों के राजा इन्द्र भी मानव जीवन प्राप्त करने की अभिलाषा करते है। आत्म कल्याण की दृष्टि से मानव-जीवन महा मूल्यवान् है। प्रचुर पुण्य के परिपाक से इसकी प्राप्ति होती है। जिन्हे यह जीवन प्राप्त हो गया है, समझना चाहिए कि उन्हे मुक्ति के प्रथम सौपान पर चढने का अवसर प्राप्त हो गया है। ऐसा अनुकूल अवसर बार-बार नही मिलता। अतएव हे भद्र मनुष्यो! इस जीवन को निष्फल मत बनाओ। इस महिमामय जीवन को सार्थक कर लो। इस जीवन की सार्थकता धर्म का आराधन करने मे है।

संसार के सभी पदार्थों का संयोग अनित्य है। धन, जन, तन आदि कुछ भी सदा स्थिर रहने वाला नही है। जीवन ही क्षणभंगुर है, तो अन्य पदार्थों के साथ आत्मा का संयोग कैसे हो सकता है?

कुसग्गे जह ओसबिन्दुए, थोवं चिट्ठइ लम्बमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए।।

जैसे दूब के अग्रभाग पर लटकने वाली ओस की बूंद अधिक देर तक नही ठहरती, कुछ ही समय मे गिर जाती है और पृथ्वी मे समा जाती है, उसी प्रकार यह मानव-तन किसी भी क्षण अलग हो सकता है। जीवन का भरोसा नही है। एक क्षण रह कर दूसरे ही क्षण विनष्ट हो सकता है। ऐसी स्थिति मे पल भर भी प्रमाद करना योग्य नही है। जो अनमोल अवसर तुम्हे मिला है उसका पूरा लाभ उठा लो।

जगत् का वैभव अस्थिर है, पुण्य का योग मिलने पर इसकी प्राप्ति होती है और पुण्य का क्षय होते ही वह देखते-देखते विलीन हो जाता है।

आत्मा वैभव और परिवार आदि के मोह मे पड़ा हुआ है। मगर इनमे से कोई भी वस्तु परलोक मे काम नही आती। जीव जब स्वकृत पापोंका कटु फल भोगता है, तो कोई भी कुटुम्बी उसके कष्ट का बटवारा करने मे समर्थ नही होता। कर्म सब को अपने आप ही भुगतने पड़ते है।

भव्य प्राणियो! कुछ लोग सोचते है कि प्राप्त भोगों को भोगने के पश्चात और तृष्णा शान्त होने पर धर्म का आराधन कर लेगे, परन्तु तृष्णा का अन्त कहां है? जिन्होंने विशाल साम्राज्य पाया है, शत्रुओं को पराजित करके कीर्ति पाई है, जो देव या इन्द्र की पदवी पा चुका है, अन्तकरण मे उत्पन्न होने वाली अब तक की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण किया है, उसकी अभिलाषाओं का क्या अन्त आ गया है? नही! 'इच्छा हु आगाससमा अणंतिया' अर्थात् जैसे आकाश का कही अन्त नही है, उसी प्रकार आशा तृष्णा का भी कही विराम नही है। वह निरन्तर बढ़ती ही चली जाती है। ऐसी अवस्था मे आशा की पूर्ति करने का प्रयत्न करना वृथा है। आशा का विनाश करके ही मनुष्य शान्ति पा सकता है।

यमराज बड़ा बलवान है। वह किससे चुका है? बड़े-बड़े प्रतापी, चक्रवर्त्ती इस पृथ्वी तल पर जन्मे, पर उन्हे भी एक साधारण आदमी की भांति ही मृत्यु के जाल मे फँसना पड़ा।

इन्द्र भी कहां वच पाता है ? जव नरेन्द्र और सुरेन्द्र भी मृत्यु के आगे विवश है तो सामान्य जन का तो कहना ही क्या है ? यमराज के पाश को तोड फेकने का उपाय एक ही है और वह यह कि धर्म का आचरण करके मुक्त दशा प्राप्त की जाय।

पूर्वभव मे उपार्जित पुण्य की जो पूँजी लाये थे, उसे इस भव मे खा रहे हो। इस भव मे कुछ संचय करोगे तो आगामी भव मे उसका उपभोग कर सकोगे। अगर कोरे जाओगे तो क्या पाओगे ? वहाँ तुम्हारा कौन बैठा है ? क्या किसी का पत्र आया है ? क्या यह मकान और यह धन अपने साथ लेते जाओंगे ? अगर ऐसा कुछ नही है तो निश्चिन्त क्यों बैठे हो ? क्या वहाँ जाने की इच्छा नही है ? किन्तु तुम्हारी इच्छा अनिच्छा को कौन पूछता है ? जाना तो पड़ेगा ही। अतएव विवेकशीलता इसी मे है कि पहले ही सावधान हो जाओ।

बन्धुओ ! इस जीव के लिए धर्म के अतिरिक्त और कोई सहायक नही हो सकता।

एगो हि धम्मो नर-देव ताणं।

एक मात्र धर्म ही सहायक और रक्षक होता है। धर्म ही उभय लोक मे वन्धु है। धर्म के अतिरिक्त संसार की कोई वस्तु काम नही आती।

धर्म दो प्रकार का है—श्रुतधर्म और चारित्रधर्म। आगमों का श्रवण करना, मनन करना, जिनवाणी के मर्म को पहचानना श्रुतधर्म कहलाता है। श्रुतधर्म की आराधना करने से आन्तरिक

नेत्र खुल जाते है। सत्य वस्तुस्वरुप हथेली पर रक्खे आँवले की तरह स्पष्ट दिखाई देने लगता है। जिसने श्रुतधर्म की आराधना नही की, शास्त्रों का अभ्यास नही किया, वह नेत्र होते हुए भी अन्धे के समान है। वह भावतिमिर मे भटकता और ठोकर खाता फिरता है। उसे हेय और उपादेय का विवेक नही प्राप्त होता। वह अज्ञानी है। अतएव सर्वप्रथम श्रुत का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

श्रुतधर्म की आराधना करने पर चारित्रधर्म का पालन करना सरल हो जाता है। चारित्रधर्म भी दो प्रकार का होता है-अणगारधर्म और सागारधर्म अर्थात् गृहस्थ धर्म है। अणगार-धर्म का पालन करके जो समस्त कर्मो का क्षय कर डालते है वे मुक्ति के भाजन बनते है। उन्हे शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है। वे जन्म-जरा-मरण पर विजय प्राप्त कर लेते है, उन्हे फिर कभी भवभ्रमण नही करना पड़ता। जो जीव मुनि-धर्म का पालन करने मे असमर्थ है, उन्हे कम से कम श्रावकधर्म का पालन करना ही चाहिए। श्रावकधर्म द्वादश व्रतरुप है। इस धर्म का पालन करने से कुगतियों से बचाव होता है।

भव्य प्राणियो! वस्तु-तत्व को यथार्थ रूप से समझ कर शक्ति के अनुसार संयम का पालन करो, तपस्या करो और कर्मो की जड़ को काटो। तप और सयम की आराधना करने मे अत्यल्प कष्ट है। इस कष्ट को कष्ट न गिनते हुए प्रवृत्ति करोगे तो वहुत सुख पाओगे, यह थोड़ासा कष्ट अनन्त दुख और विपत्तियों को नष्ट करता है।

स्मरण रक्खो कि तुम्हे आज जो अवसर मिला है, यह बड़ा ही मूल्यवान् है। यह विरल अवसर वार-वार नही मिलता है। अतएव इसका सदुपयोग कर लो। अनादिकालीन भव भ्रमण को यहीं समाप्त कर लो। ऐसा करोगे तो चौरासी लाख जीव-योनियों मे नाना प्रकार के कष्ट भोगने से बच जाओगे। अनन्त, अक्षय, अव्याबाध और असीम सुख के भाजन बनोगे।

तीर्थंकर देव की इस प्रकार की प्रेरणापूर्ण वाणी श्रवण कर भव्य जीवों को कितना आनन्द हुआ, यह कहना सम्भव नही है। भगवान् के मुखचन्द्र से झरने वाले उस अमृत का पान करके श्रोता मुग्ध हो गये। उनके हृदय की कली-कली खिल गई। कइयों ने सम्यक्त्वरत्न का लाभ किया, कई व्रत-धारी श्रावक बने और कई सौभाग्यशाली संयम ग्रहण करने के लिए उद्यत हो गए।

अहा! धन्य है वे पुरुष-पुंगव, जिन्हे साक्षात परम वीतराग, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अरिहंत देव के मुख से धर्मोपदेश श्रवण करने का सुअवसर प्राप्त होता है।

: १० :

वैराग्य और दीक्षा

प्रद्युम्न, शम्ब, भानु और सुभानु नामक चारों राजकुमार समवसरण मे उपस्थित थे। उन्होने भी जिनवर की वाणी-सुधा का पान किया। धर्मकथा समाप्त होने पर वे उठे और पंचांग नमा कर उन्होने भगवान् को नमस्कार किया। फिर चारों ने निवेदन किया—हे तारण तरण ! हमने आपके प्रवचन का पीयूष पिया है। उससे हमारे अन्तस्तल को अपूर्व शान्ति प्राप्त हुई है। आपके वचन अविरल है, तथ्य है, पथ्य है, सत्य है। प्रभो! उन पर हमारी गहरी आस्था है। आपके वचन-अंजन ने भव्यजनों के नयन खोल दिये है। प्रभो ! हमने धर्म की महिमा को हृदयंगम कर लिया है और आत्म-कल्याण की प्रशस्त साधना करने का संकल्प किया है। भगवान् ! हम जननी और जनक की अनुमति प्राप्त करके संयम ग्रहण करना चाहते है और आपके चरण-कमलों के भ्रमर बनना चाहते है।

भगवान् ने गम्भीर स्वर मे कहा—'जहां सुहं देवाणुप्पिआ ! मा पडिबंधं करेह।' देवों के वल्लभ ! वही करो जिससे सुख की प्राप्ति हो, उसमे ढील मत करो।

भगवान् की अनुज्ञा पाकर कुमार हर्षित हुए। उन्होने

फिर प्रभु के पावन और पुण्यमय पाद-पद्मो मे प्रणाम किया और वहाँ से प्रस्थान कर दिया।

● ● ● ●

चारों कुमार श्रीकृष्ण के सामने खड़े थे। उनके चेहरे अपूर्व उल्लास से खिल रहे थे। श्रीकृष्ण बोले—आज तुम लोगों के आनन पर अद्‌भुत आनन्द की झलक दिखाई दे रही है। क्या नवीन बात है?

प्रद्युम्न—तात! आज हमारे सौभाग्य का सूर्य मध्यान्ह मे आ पहुंचा है।

कृष्ण—कहो, ऐसी क्या घटना घटी है?

प्रद्युम्न—आज का दिवस हमारे जीवन मे अतिशय धन्य है। आज महा प्रभु अरिष्टनेमि के दर्शन और वचनामृत-श्रवण का हमे सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

कृष्ण— यथार्थ है। वीतराग भगवान् के दर्शन से नयन पावन होते है, उपदेश श्रवण से श्रोत्र पवित्र हो जाते है और उपासना करने से जीवन धन्य हो जाता है।

प्रद्युम्न—पितृवर! हम अपने अनन्त भविष्य को मंगलमय बनाने की साधना करना चाहते है।

कृष्णजी यह सुनकर चौंक उठे। प्रद्युम्न का सही आशय समझने के लिए उन्होने पूछा—वत्स! उस साधना का रूप क्या है?

प्रद्युम्न–गृहत्याग कर मुनिव्रत धारण करना।

मोह की महिमा का अन्त नही ! मोह के वशीभूत होकर मनुष्य कैसी चेष्टाएं करता है। वासुदेव और हलधर–दोनों ने कुमार के वचन सुने। सुनते ही दोनों को दु:सह आघात लगा। कुमार के वचन उनके हृदय मे वाण की तरह चुभ गये। वे उस भीषण आघात को सहन करने मे असमर्थ हो गये।

राजसभा मे सन्नाटा छा गया। सामन्त दौड़े। शीतोपचार करके वासुदेव और बलदेव को होश मे लाये। होश मे आने पर उनके नेत्रों से नीर बहने लगा। वे अत्यन्त दैन्यभाव से बोले–वत्सगण ! अभी दीक्षा लेने का क्या कारण है ? तुम्हे किस चीज की कमी है ? तुम मेरी छत्रछाया मे सुख-पूर्वक रहो। तुम्हे कोई चिन्ता नही करनी है। आमोद-प्रमोद करो और यौवन का आनन्द लो।

प्रद्युम्न–पिताजी, आप यथार्थ कहते हैं। हमे किसी वस्तु की कमी नही है। आपके पुण्य प्रताप से संसार के सभी सुख हमे प्राप्त है। मगर आपकी छत्र-छाया मे रहकर क्या हम यमराज के आक्रमण से बच सकेंगे ? आप जन्म-मरण के चक्र से बचा सकते हो, यमराज के पाश से दूर रख सकते हो, दुर्गति मे जाने से रोक सकते हो, और अनन्तकाल तक सुखी बनाये रख सकते हो तो ठीक है। फिर भगवान् की शरण मे जाने की आवश्यकता नही रहेगी।

तीन खण्ड के नाथ अपनी असमर्थता का विचार करके

मौन रह गये । यमराज के पाश से बचा लेने की शक्ति उनमे नही थी। जो स्वयं नही बच सकता, वह दूसरों को कैसे बचा सकता है? मृत्यु की अमोघ औषध तो मृत्युञ्जय अरिष्टनेमि के पास ही है। वे ही ऐसे वैद्य है जो अनन्त आरोग्य देनेवाले और शाश्वत सुख देने वाले है।

कुमार ने आगे कहा—तात! हमारा निवेदन सुन लीजिये। इस असार संसार मे तीन लोक का समग्र वैभव पाकर भी मनुष्य असली सुख नही पा सकता। संसार नाना प्रकार की पीड़ाओं की क्रीड़ाभूमि है। बड़े सौभाग्य से यह दुर्लभ अवसर मिला है। इसे वृथा खो देना बुद्धिमत्ता नही है। अतएव हमे अनुमति प्रदान कीजिए।

श्रीकृष्ण—परमार्थ की बात तो यही है वत्स! पर तुम लोगों का वियोग हमारे लिए असह्य है।

प्रद्युम्न—पिता की गहरी प्रीति प्राप्त करने वाला पुत्र भाग्यशाली है, परन्तु महाराज! वियोग तो प्रकृति का अटल-विधान है। संयोग का फल वियोग ही है। आज या कल, स्वेच्छा से या अनिच्छा से, वियोग को सहना ही पडेगा। उससे बचना असम्भव है। अब तक संसार के किस प्राणी के साथ हमारा संयोग नहीं हुआ है?

सब जीवों के सब जीवों से सब सम्बन्ध हुए है।

मगर उन सबका अन्त आ गया। इसी प्रकार इस संयोग का भी अन्त अवश्यम्भावी है। इस स्थिति मे उसे स्वेच्छा

पूर्वक स्वीकार कर लेना ही व्यथा से बचने का एक मात्र उपाय है।

कुमारों के दीक्षा लेने का समाचार बिजली की भाँति सर्वत्र फैल गया। वसुदेवजी आदि भी सभा मे आ पहुंचे। सब ने मिलकर कुमारों को समझाने की भरसक चेष्टाएं की। परन्तु उन पर कोई प्रभाव नही पड़ा।

कुमारों ने वसुदेव आदि से विनयपूर्वक कहा—आप वृद्ध है, विवेकवान् है, वस्तुस्वरुप के ज्ञाता है। फिर इस धर्म कार्य मे क्यों अन्तराय डालने की इच्छा करते है? आप हमे देखकर विरक्त हो, आप भी संयम को धारण करे, हमारे उत्साह को बढ़ाएं और अपनी आत्मा का कल्याण करे, मगर ऐसा न करके आप तो हमे ही रोकना चाहते है? यह कहाँ तक योग्य है? इस बात पर आप स्वयं विचार कीजिए। अन्तराय लगाने से आपको क्या लाभ होगा?

आखिर सभी को चुप रहना पड़ा। तथ्य की दृष्टि से कुमार का पक्ष प्रबल था। सभी लोग संयम की श्रेष्ठता को स्वीकार करते थे। केवल मोह की प्रेरणा ही उन्हे मना करने को विवश कर रही थी। मगर सच्चे वैराग्य के सामने मोह निर्बल और निस्तेज हो जाता है। चूहों पर जोर जतलाने वाली बिल्ली जैसे सिंह के सामने दीन बन जाती है, उसी प्रकार प्रबल वैराग्य के सामने मोह के पैर उखड़ जाते है।

आखिर हरि और हलधर को कहना पड़ा—जिसमे तुम्हे

सुखप्राप्त हो वही करो, परन्तु पहले अपनी माताओं की अनुमति प्राप्त करलो।

× × × × ×

चारों कुमार हर्षित होकर माताओ के पास आये। साधारणतया सत्यभामा और रुक्मिणी मे अनबन रहती थी, परन्तु इस समय उनका मनोमालिन्य दूर हो गया था। दोनों एक जगह बैठी थी और जाम्बवती भी उन्ही के पास आ बैठी।

कुमारों ने पहुंच कर माताओ से दीक्षा अंगीकार करने की अनुमति मांगी। मगर वे भी कुमारों की बात सुन कर मूर्छित हो गई। उनके हाथ की चूड़ियाँ निकल कर गिर पडी, केश बिखर गये, हाथ पैर शिथिल पड़ गये। दासियों के उपचार करने पर वे सावचेत हुई। तीनों माताएं अविरल अश्रुधारा बहाती हुई, निर्निमेष दृष्टि से कुमारों की ओर देखने लगी। मुख से कोई शब्द नही निकला।

प्रद्युम्न ने कहा—माताओ ! हर्ष के अवसर पर विषाद करना योग्य नही। हम कल्याणपथ के पथिक बनना चाहते है। सुख की राह तलाश करने जा रहे है। इसमे खेद का क्या कारण है ?

वे बोली—तुम हमारे प्राणों के आधार हो। तुम्हारे बिना हमारा जीवन कैसे निभेगा ? क्या हमारे बहुत से पुत्र है ? तुम्ही तो हमारे जीवन मे प्रकाश देने वाले हो ? तुम चले जाओगे तो हम जीवित रहते भी मृतवत् हो जाएंगी। इसलिए

कुमारो ! कुछ दिन और ठहरो। बहुत कष्ट सहन करके तुम्हे जन्म दिया है। अनन्त-अनन्त आशाएं लेकर तुम्हारा पालन-पोषण किया है। यह सब क्या इसलिये कि तुम बड़े होकर इस प्रकार हमे दारुण वेदना का पात्र बनाओ ?

प्रद्युम्न—माता ! जब तक यह शरीर है तब तक तुम्हारा ऋण हमारे ऊपर चढ़ा रहेगा। पर हम लोग आपकी कूंख को दिपाने का विचार करते है, आपकी कूंखको लजाने का नही। कुछ दिन और ठहरने से भी आपको तृप्ति होनेवाली नही हैं। तृप्ति तो वैराग्य मे है। उसके आये बिना कदापि तृप्ति नही हो सकती। मोह तृप्ति दाता होता तो अब तक कभी की तृप्ति हो गई होती।

आप हमे अपने जीवन का आधार मानती है परन्तु जो स्वयं निराधार है वह दूसरों का आधार किस प्रकार वन सकता है ? वास्तव मे इस जगत् मे कोई किसी का आधार नही है। दूसरे को अपना आधार मानना दीनता है और अपने को दूसरों का आधार मानना अहंकार है। सव जीव पुण्य-पाप लेकर आते है और अपने-अपने पुण्य-पाप के अनुरुप ही सुख-दुख भोगते है। कोई किसी का अपना पुण्य या पाप देकर सुखी या दुखी नही बना सकता।

माता ! काल वड़ा वलवान् है। उसके आगे किसकी चली है ? उसके आने का कोई समय निश्चित नहीं है कव किसे ले जायेगा, यह कोई नही जानता। ऐसी हालत मे अधिक ठहरना उपयुक्त नही है। आत्मा का कल्याण करने मे पल भर भी विलम्ब न करना ही वुद्धिमत्ता है।

माताजी ! आपके समान अनन्त माताएं मेरी हो चुकी है। कभी मै पहले मरा तो वह मेरे लिये रोई और कभी वे पहले मरी तो मै उनके लिये रोया। मगर वह रोना व्यर्थ ही रहा, क्योंकि न वे मुझे वापिस ला सकी और न मै उन्हे वापिस लौटा सका।

यह संसार बड़ा विषम है। हमारी अभिलाषा है कि आप ही हमारी अन्तिम माता हो। आपके बाद किसी अन्य को अपनी माता न बनानी पड़े। आप हमारी अन्तिम माता होगी तो संसार मे आपका यश अमर और कीर्ति अक्षय हो जायेगी।

माताएं निरुत्तर हो गई। कहने लगी—वत्स ! हमारी तरफ से कोई बात नही है, मगर अपनी-अपनी पत्नियों को समझा लो। वे अनुमति दे दें तो जो इच्छा हो सो करो।

कुमारों को पहली विजय अपने पिता, ताऊ और पिता-मह आदि के सामने मिल चुकी थी। दूसरी विजय माताओं के समक्ष भी प्राप्त कर ली। अब सिर्फ तिसरा मोर्चा ही उन्हे जितना शेष रह गया था और यह मोर्चा इतना अधिक भयंकर नही था। अतएव कुमार प्रसन्नता का अनुभव करते हुए अपनी अपनी पत्नियों के पास आये।

पत्नियों को अभी तक पता ही नही था कि उनके महलों के बाहर कितनी प्रभावक घटना घट रही है। इस घटना का उन के जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। परन्तु उन्हे इसका खयाल ही नही था।

चारों कुमारो नें अपनी-अपनी पत्नियों को एकत्र किया। सब वस्त्रों और अनमोल आभूषणों से सुसज्जित होकर इकट्ठी हुई। यदुकुल की वधुएं ऐसी जान पड़ती थी, मानो स्वर्गलोक मे अप्सराओं की सभा हो रही है। सब अपूर्व रूप-लावण्य से सम्पन्न, असीम सुषमा से सुशोभित और सौन्दर्य की प्रतिमाएं जान पड़ती थीं।

अन्य अवसरो पर अपने-अपने हृदयवल्लभ की अनुरागमयी दृष्टि पड़ते ही वे निहाल होजाती थी, मगर आज वातावरण मे निरालापन था। कुमारों की विरक्तिपूर्ण दृष्टि आज उनके मुख-चन्द्र की ओर न होकर धरती की ओर थी। आखिर प्रद्युम्न कुमार बोले—देवियो ! आज हम चारों भाइयों ने जिनेश्वरदेव की कल्याणकारी वाणी सुनी है। हमने भोगोपभोगों को आत्महित का विघातक, श्रेयोनाशक और विपत्तिजनक समझ लिया है। हम चारों ने संयम ग्रहण करने का निश्चय किया है। माता-पिता की अनुमति हमे प्राप्त हो चुकी है। सिर्फ आपकी अनुमति लेना शेष है। आप भी अनुमति दीजिए, जिससे श्रेयस्कर कार्य मे विलम्ब न हो।

समस्त वधुओं के हृदय का हर्ष सहसा विलीन हो गया और उसके वदले गम्भीर विषाद का भाव उनके आनन पर चमकने लगा। उनके नेत्रों से आंसू वरसने लगे। वे कलेजे को थाम कर रह गई।

कुछ समय तक सन्नाटा रहा। किसी को न सूझ पड़ा कि आगे किस ढंग से क्या कहा जाय ?

माताजी ! आपके समान अनन्त माताएं मेरी हो चुकी है। कभी मै पहले मरा तो वह मेरे लिये रोई और कभी वे पहले मरी तो मै उनके लिये रोया। मगर वह रोना व्यर्थ ही रहा, क्योंकि न वे मुझे वापिस ला सकी और न मै उन्हे वापिस लौटा सका।

यह संसार बड़ा विषम है। हमारी अभिलाषा है कि आप ही हमारी अन्तिम माता हो। आपके बाद किसी अन्य को अपनी माता न बनानी पड़े। आप हमारी अन्तिम माता होगी तो संसार मे आपका यश अमर और कीर्ति अक्षय हो जायेगी।

माताएं निरुत्तर हो गई। कहने लगी—वत्स! हमारी तरफ से कोई बात नही है, मगर अपनी-अपनी पत्नियों को समझा लो। वे अनुमति दे दें तो जो इच्छा हो सो करो।

कुमारों को पहली विजय अपने पिता, ताऊ और पिता-मह आदि के सामने मिल चुकी थी। दूसरी विजय माताओं के समक्ष भी प्राप्त कर ली। अब सिर्फ तिसरा मोर्चा ही उन्हे जितना शेष रह गया था और यह मोर्चा इतना अधिक भयंकर नही था। अतएव कुमार प्रसन्नता का अनुभव करते हुए अपनी अपनी पत्नियों के पास आये।

पत्नियों को अभी तक पता ही नही था कि उनके महलों के बाहर कितनी प्रभावक घटना घट रही है। इस घटना का उन के जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। परन्तु उन्हे इसका खयाल ही नही था।

चारों कुमारो ने अपनी-अपनी पत्नियों को एकत्र किया। सब वस्त्रों और अनमोल आभूषणों से सुसज्जित होकर इकट्ठी हुई। यदुकुल की वधुएं ऐसी जान पड़ती थी, मानो स्वर्गलोक मे अप्सराओं की सभा हो रही है। सब अपूर्व रूप-लावण्य से सम्पन्न, असीम सुषमा से सुशोभित और सौन्दर्य की प्रतिमाए जान पड़ती थीं।

अन्य अवसरो पर अपने-अपने हृदयवल्लभ की अनुरागमयी दृष्टि पड़ते ही वे निहाल होजाती थी, मगर आज वातावरण मे निरालापन था। कुमारों की विरक्तिपूर्ण दृष्टि आज उनके मुख-चन्द्र की ओर न होकर धरती की ओर थी। आखिर प्रद्युम्न कुमार बोले—देवियो! आज हम चारों भाइयों ने जिनेश्वरदेव की कल्याणकारी वाणी सुनी है। हमने भोगोपभोगों को अत्महित का विघातक, श्रेयोनाशक और विपत्तिजनक समझ लिया है। हम चारों ने संयम ग्रहण करने का निश्चय किया है। माता-पिता की अनुमति हमे प्राप्त हो चुकी है। सिर्फ आपकी अनुमति लेना शेष है। आप भी अनुमति दीजिए, जिससे श्रेयस्कर कार्य मे विलम्ब न हो।

समस्त वधुओं के हृदय का हर्ष सहसा विलीन हो गया और उसके बदले गम्भीर विषाद का भाव उनके आनन पर चमकने लगा। उनके नेत्रों से आंसू बरसने लगे। वे कलेजे को थाम कर रह गई।

कुछ समय तक सन्नाटा रहा। किसी को न सूझ पड़ा कि आगे किस ढंग से क्या कहा जाय?

फिर किसी प्रकार हृदय को कठोर करके, उनमे से प्रद्युम्न की एक पत्नी ने कहा—नाथ ! प्राणाधार ! हम क्या कहे ? हमारी दयनीय दशा की कल्पना करके, हमारे भविष्य का खयाल करके आप स्वयं अपने कर्त्तव्य को निर्धारित कीजिये। आपको ऐसे मर्मवेधी वचन मुख से नही निकालने चाहिये जिसे हम सहन न कर सके। आपको किस चीज की कमी है जिसे प्राप्त करने के लिए जीवन भर जवानी मे तपस्या का आश्रय लेना पड़ रहा है ? तपस्या के फल स्वरुप जो कुछ प्राप्त होता है, वह तो आपको अनायास ही प्राप्त है। आपको तीन खण्ड का विशाल तर साम्राज्य प्राप्त है, पारिवारिक दृष्टि से सब प्रकार का सुख है, यौवन है, सभी कुछ है। अभी संसार के भोग भोग लीजिए, फिर वृद्धावस्था मे दीक्षा लेना शोभा देगा।

कुमार—देवियो ! आपकी ओर से जो कुछ कहा गया है, पहले पहले वही सुननेकी संभावना थी। यह वाक्यावली आपकी अन्तरात्मा की नही, मोह की है। आपकी आत्मा को अभिभूत करके उसके नाम पर मोह बोल रहा है। आपकी अन्तरात्मा को मोह से मुक्ति मिली होती तो उसकी ध्वनि कुछ और ही प्रकार की होती। क्या आपकी आत्मा जीवन की विनाशशील प्रकृति से परिचित है ? क्या आपको नही विदित है कि जीवन मे बुढापे का आना अनिवार्य नही है। बहुत-से मनुष्य बाल्या-वस्था और युवावस्था मे ही परलोक की ओर प्रयाण कर जाते है।

रह गई भोग-भोगने की। सो उसमे क्या स्वाद है ? भोग रोग का घर है, दुख का कारण है।

खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा अणिगामसुक्खा।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा॥

कामभोग क्षण भर सुख देते है और चिरकाल तक घोर दुःख के कारण बनते है। राई भर सुख देते है तो पहाड़ के बराबर दुःख देते है। यह संसार से छुटकारा पाने मे बाधक है और अनर्थो की खान है।

विषय विष से भी अधिक विषम है। इनके निमित्त से आत्मा को दुर्गति मे जाना पड़ता है। अतएव ज्ञानी जन इनसे दूर ही दूर भागते है।

पत्नी–यथार्थ है स्वामिन् आपका कथन! मगर संयम धारण करके उसका निर्वाह करना सरल नही है। मुनिवृत्ति को अंगीकार करना तलवार की धार पर चलना है, लोहे के चने चबाना है। नंगे पैरो और उघाड़े सिर चलना, पैदल ही विहार करना, भिक्षा के द्वारा उदरपूर्ति करना, शीतकाल मे सर्दी और ग्रीष्मकाल मे गर्मी सहना, पृथ्वी पर शयन और केश-लोच करना आदि बड़ी ही कठिन साधना है। जब इस आचार का पालन करते न बनेगा तब पश्चाताप करना पड़ेगा। आप तो दीर्घदर्शी और विवेकवान् है। इन् सब कठिनाइयों का विचार कर लीजिए।

कुमार–देवियो! यह कठिनाइयाँ कायरों को भयभीत कर सकती है, हमे नही। हम क्षत्रियपुत्र है, जो कदम आगे बढ़ा देते है, उसे पीछे नही हटाते। मैने अपने जीवन मे आगे

ही बढ़ना सीखा है, पीछे हटना नही। संयम अवस्था मे कष्ट झेलने पडते है, परन्तु आत्मा का सामर्थ्य भी कम नही है। इस आत्मा ने अनन्त बार नरकगति की पीड़ाएं सहन की है। नरक की पीड़ाएं, संयम-अवस्था की कठिनाइयों के समक्ष लाख गुणा अधिक है। फिर चिन्ता करने की और डरने की क्या बात है?

एक बात और है। मुनि होने पर समभाव का अमृत अन्त:करण से झरने लगता है। उस समभाव मे अपूर्व आनन्द है। आत्मरमण का अतीन्द्रिय और अनिर्वचनीय आनन्द समस्त बाह्य कष्टों को नगण्य बना देता है। साधु-अवस्था मे संसार सम्बन्धी सब प्रकार की झंझटे दूर हो जाती है, एक अनोखी मस्ती और निराकुलता आ जाती है। वह आत्मा को अपूर्व आनन्द देती है। कहा भी है—

न च राज्यभयं न च चौरभयं,
न च वृत्तिभयं न वियोगभयम्।
इहलोकसुखं परलोकहितं,
श्रमणत्वमिदं रमणीयतरम्॥

अहा! साधु-अवस्था अतिशय आनन्ददायिनी है। साधु बन जाने पर न राजा का भय रहता है, न चोरों का भय रहता है, न आजीविका का भय रहता है और न वियोग का भय रहता है। यह साधु-अवस्था इस लोक मे सुख देने वाली है और परलोक मे भी हित करने वाली है।

साधु-अवस्था की इस निर्भयता और निश्चिन्तता के

के सामने सर्दी-गर्मी आदि के कष्ट किसी गिनती मे नही है।

देवियो! आपके साथ हम लोगों का जो संयोग हो गया है, उसका अन्त अवश्यम्भावी है। कोई भी संयोग सदा स्थिर नही रह सकता। संसार का यही स्वरूप है। कहा भी है–

पुत्रं कलत्रमितरः परिवारलोको–
भोगैकसाधनमयाः किल सम्पदो नः।
एकः क्षणः स तु भविष्यति यत्र भूयो–
नायं न यूयमितरे न वयं न चैते॥

आज मित्र है, कलत्र है, परिवार के अन्य जन भी है और भोग की साधनभूत सम्पदायें भी है–सभी कुछ है, परन्तु एक क्षण ऐसा आएगा और अवश्य ही आएगा, जब इन मे से कुछ भी नही रहेगा। न वह रहेगा, न तुम रहोगे, न दूसरे रहेगे और न हम हीं रह जायेंगे।

देवियो! यह कोई सम्भावना नही है, मन की कल्पना नही है, यह तथ्य है, चाहे अवांछनीय हो अप्रिय हो, मगर अटल सत्य है। सदा से यही होता आया है और यही होता रहेगा। ऐसी अवस्था मे मोह के वशीभूत होकर शाश्वत श्रेयस् का विघात करना योग्य नही है। यह सुअवसर पुनः पुनः मिलने वाला नही है। अतएव शीघ्र ही आत्मकल्याण मे प्रवृत्त होकर अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेना चाहिए।

प्रद्युम्नकुमार की वाणी मे सत्य था–अटल संकल्प था। मन का पूरा निश्चय था। यदुकुल की बहुओं पर उसका गहरा

प्रभाव पड़ा। सब थोड़ी देर तक एक दूसरी की ओर भावपूर्ण दृष्टि से देखती रही। अन्त मे सभी ने मिलकर एक निर्णय कर लिया। कुमारों को उस निर्णय की सूचना दे दी गई। बहुओं की ओर से कहा गया—आप लोगों ने धर्म की विशिष्ट आराधना करने का निश्चय किया है, तो हम भी आपका अनुगमन करना चाहती है। पत्नी, पति के भोग की ही साथिन नही धर्म की भी साथिन होनी चाहिए। अतएव आपके साथ-साथ हम भी संयम ग्रहण करेंगी।

कुमारों को यह निर्णय सुनकर अत्यन्त हर्ष हुआ। वे अत्यन्त उल्लास के साथ संयम ग्रहण करने के लिए तैयार हो गए।

उधर सत्यभामा, रुक्मिणी और जाम्बवती तीव्र उत्कण्ठा के साथ परिणाम की प्रतीक्षा कर रही थी। उनका खयाल था कि सम्भव है कुमारों को बहुएँ समझा ले और संयम लेने से रोक दे। परन्तु जब उन्होने सुना कि कुमारों के साथ सब बहुएँ भी दीक्षा लेने को उद्यत हो गई है तो उन्हे बड़ी निराशा हुई। क्षणिक निराशा के अनंतर उनके हृदय की सद्भावना भी जाग उठी। उन्होने सोचा—जब पुत्रों और पुत्रबधुओं ने विषय-भोगों को ठुकरा कर साधु बनने का निश्चय कर लिया है तो हमे भोगों के कीचड़ मे फँसा रहना शोभा नही देता। इन सब के चले जाने पर जीवन के रस का झरना तो सूख ही जायेगा, फिर गृहस्थी मे रहने से क्या लाभ है? न इधर की रहेगी, न उधर की रहेंगी। अतएव हम लोगों को भी इस अवसर से

पूरा लाभ उठा लेना चाहिए। आत्म-हित की साधना कर लेनी चाहिए जिससे बार-बार वियोग की व्यथा न भुगतनी पड़े।

सब रानियों ने वासुदेव को अपने निश्चय से अवगत करा दिया और दीक्षा धारण करने की अनुमति मांगी। वासुदेव बड़े पशोपेश मे पड़े। वे सोचने लगे—पुत्र मुझे त्याग रहे है, पतोहू जा रही है और पत्नियों ने भी गृह त्यागने का निश्चय कर लिया है। उन्हे अत्यन्त दुख हुआ। सारी समझ और शक्ति लगा कर उन्होने सत्यभामा आदि को समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु वे अपने सकल्प से न डिगी। अन्त मे वासुदेव को अनुमति देनी पड़ी।

कृष्णजी ने विषाद और खिन्नता के साथ दीक्षा-महोत्सव की तैयारी आरम्भ कर दी। प्रद्युम्नकुमार के पालक पिता यमसंवर को सूचना दे दी। विद्याधर द्वारिका आ पहुँचा। उसने भी समझाने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु वह कारगर न हुआ। अन्य सम्बधी भी समझा कर थक गये। लम्बा वार्त्तालाप हुआ। मगर कुमारों का निश्चय पलट नही सका।

दीक्षा का समय निकट आ गया। चतुरंगी सेना सुसज्जित की गई। एक हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली पालकी तैयार हुई। वैरागियों और वैरागिनियों को स्नान कराके सुन्दर वस्त्राभूषण पहराये गये। यद्यपि उन्हे शृंगार कराने की कोई अभिलाषा नही रह गई थी, फिर भी कुटुम्बी जनों की अन्तिम कामना को भंग करना उन्होने योग्य न समझा और सुन्दर एवं मूल्यवान् वस्त्राभूषण धारण किये। पालकी रवाना हुई। उनके

पीछे वासुदेव, बलदेव, दसार, यमसंवर आदि अनेक राजा, सम्बन्धी आदि रवाना हुए। यादवकुल की अन्य नारियां और विद्याधर रमणियाँ मंगल-गीत गाने लगी और गगन को गुञ्जित करने लगी।

समग्र वायुमण्डल मे गम्भीरता व्यापी हुई थी। सभी लोग वैरागियों की और वैरागिनों की प्रशंसा कर रहे थे, उन्हे धन्य-धन्य कह रहे थे, किंतु विरक्ति का भाव सर्वोपरि था।

दीक्षा का जुलूस रवाना होकर देवरमण उद्यान के समीप आ पहुँचा। उद्यान के समीप पहुँचते ही सब लोग अपनी-अपनी सवारियों से नीचे उतर पड़े और अतिशय भक्तिपूर्ण होकर भगवान् के निकट पहुँचे। विधिपूर्वक वन्दना करके दीक्षार्थी ईशान कोण की ओर गये। वहाँ वस्त्रों और आभूषणों को उतारा तथा दीक्षोचित वेष को धारण किया। सबने अपने-अपने हाथों से केशलोच किया। कृष्णजी ने वस्त्र फैला कर उन केशों को उसमे ले लिया। इस समय उनकी आँखों से आँसुओं का प्रवाह बह रहा था। उन्होने आँसू रोकने की बहुत चेष्टा की मगर हृदय न माना। प्रतापी योद्धा सम्राट आज बालकों की तरह रो रहा था! मोह की लीला विचित्र है!

दीक्षार्थी प्रभु के समक्ष आकर, हाथ जोड़ कर और मस्तक नमाकर खड़े हो गये। तब हरि और हलधर ने रुद्ध-कण्ठ से कहा—प्रभो! दीनानाथ! हे तरण-तारण! यह शिष्य-भिक्षा स्वीकार कीजिए। यह हमारी ओर से दी जाने वाली बहुमूल्य भिक्षा है। यह पुत्र, पत्नियाँ और पतोहू हमे प्राणों के

समान प्रिय है। इनको वहराने मे हमे जो व्यथा हो रही है, उसे आप भली-भाँति जानते है। आप अन्तर्यामी है। वज्र के समान कठोर हृदय करके हम इन्हे आपको सौपते है। अनुग्रह करके इन्हे सुख मे रखिए और इनके चरम मनोरथ को सफल कीजिए।

प्रभु अरिष्टनेमि ने सब को स्वयं दीक्षा दी। अन्त मे सब लोग यथायोग्य वन्दना नमस्कार करके वापिस लौट आये।

आमोद-प्रमोद, रागरंग और चहल-पहल से भरी हुई द्वारिका नगरी आज सुनसान दिखलाई पड़ रही थी। सर्वत्र गम्भीरता, खिन्नता और विषाद का ही राज्य था। द्वारिका की श्री लुट-सी गई थी। वासुदेव का हृदय बोझिल था। राज-महल खाली मालूम पड़ते थे! प्रजा की उमंगे समाप्त-सी हो गई थी।

धीरे-धीरे, सभी आगत अतिथि चले गये और वासुदेव प्रजा का पालन करने लगे।

: 99 :

निर्वाण

परम प्रतापी वासुदेव श्रीकृष्ण जैसे पिता, रुक्मिणी समान माता, इन्द्राणी को भी अपने लावण्य से लज्जित कर देने वाली रमणियां, अक्षय ऋद्धि, असीम सम्पति, अनुपम सामर्थ्य, अपार प्रभुता, अद्वितीय बुद्धि वैभव, असाधारण विद्यासिद्धि और जगत्मान्य यादववंश पाकर भी जिन्होने सड़े-गले तिनके की तरह सब कुछ त्याग दिया, एक ही वार धर्मोपदेश श्रवण करके जिन्हे सिद्धि प्राप्त करने की कामना उत्पन्न हो गई वे भाग्यशाली! धन्य है! इतना महान् त्याग करने वालो को मुक्ति का परमानन्द प्राप्त हो, यह स्वाभाविक ही है।

अतीत काल का वायुमण्डल कितना पावन था। उस समय की धर्मभावना कितनी उच्च, उज्ज्वल और त्यागमयी थी। आज की स्थिति के साथ उसकी तुलना करे तो चकित रह जाना पड़ता है। आज लोग अपनी तुच्छ ऋद्धि और कुरूपा नारी का भी त्याग नही कर सकते। कितना अन्तर पड़ गया है। काल की बलिहारी है।

प्रद्युम्न आदि चारों राजकुमारों ने लोकोत्तर साधना के दुर्गम मार्ग पर चलना आरम्भ किया। भगवान् अरिष्टनेमि ने समस्त नवदीक्षिता साध्वियों को राजीमती के सिपुर्द कर दिया। सब मुनि और आर्यिकाएं अपनी अपनी आराधना मे तन्मय हो

गई। सबने आसेवनी शिक्षा और ग्रहणी शिक्षा प्राप्त की। उन्होने कठोर तपश्चरण आरंभ किया। पांच महाव्रत तीन गुप्ति और पांच समिति आदि मुनि के मूलोत्तर गुणों का पालन करने लगे। यदुवंश की रानियों ने गृहस्थाश्रम मे एकावली, कनकावली, मुक्तावली आदि आभूषणों से अपने शरीर का श्रृंगार किया था। वह अब इन सब तपस्याओं द्वारा शरीर को निर्बल और आत्मा को सबल बनाने लगी। उनकी तपस्या को देखकर कायर काँप उठते थे। मगर वे दृढ़ता के साथ अपने तप:कर्म मे तल्लीन थी। वास्तव मे आत्म-शुद्धि का समर्थ साधन ही तप है। तपस्या की महिमा अचिन्त्य है। तप के प्रभाव से सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते है। यही कारण है कि जिनमार्ग मे तपस्या को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कहा है–

तनोति धर्मं विधुनोति कल्मषं,
हिनस्ति दुःखं विदधाति सम्पदम्।
चिनोति सत्वं विनिहन्ति तामसं,
तपोऽथवा किं न करोति देहिनाम्॥

अर्थात्– तपस्या से धर्म की वृद्धि होती है, पापों का विनाश होता है, दुखों का अन्त होता है, आध्यात्मिक गुणों की उत्पत्ति होती है, आत्मबल की वृद्धि होती है और तमोभाव का विनाश होता है। तपस्या के प्रकृष्ट प्रभाव से जीवों को क्या क्या प्राप्त नही होता? तपस्या के फलस्वरूप प्राणी सर्वोत्कृष्ट सिद्धि भी प्राप्त कर लेता है।

तप की महिमा प्रकाशित करते हुए और भी कहा है–

यस्माद्विघ्नपरम्परा विघटते, दास्यं सुराः कुर्वते,
कामः शाम्यति दाम्यतीन्द्रियगणः कल्याणमुत्सर्पति।
उन्मीलन्ति महर्द्धयः कलयति ध्वंसं च यत्कर्मणाम्,
स्वाधीनं त्रिदिवं करोति च शिवं श्लाघ्यं तपस्तप्यताम्॥

जैसे सूर्य का उदय होते ही तिमिर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार तप के उदित होते ही विघ्नों की परम्परा विनष्ट हो जाती है। स्वर्ग के देवता भी तपस्वी के चरणों मे अपना मस्तक झुकाते है और उसके दास वन जाते है तपस्या की प्रचण्ड ज्वालाओं मे कामवासना जल कर भस्म हो जाती है और इन्द्रियाँ वशीभूत हो जाती है। इतना होने पर कल्याण भागा-भागा आता है और तपस्वी के चरण-कमलो मे लोटता है।

तपस्वी को अभिलाषा न करने पर भी अनेक महान् और विस्मयोत्पादक ऋद्धियाँ स्वतः प्राप्त हो जाती है। तपस्या कर्मों का समूल विनाश कर देती है। तपस्वी स्वर्ग और मोक्ष का अधिकारी वनता है। इस प्रकार तप महान् कल्याणकारी है— श्लाध्य है। आत्मकल्याण के अभिलाषियों को ऐसे तप का आचरण करके अपना मंगलसाधन करना चाहिए।

यद् दूरं दुराराध्यं, यच्च दूरे व्यवस्थितम्।
तत्सर्वं तपसा साध्यं, तपो हि दुरतिक्रमम्॥

जो वस्तु तुम्हारे लिए बहुत दूरी पर है, जिसकी प्राप्ति तुम्हे अत्यन्त कठिन जान पड़ती है, वह भी तपस्या के प्रभाव से निकटवर्ती हो जाती है। तप के प्रभाव को कोई भी शक्ति अतिक्रमण नही कर सकती।

प्रद्युम्न ऋषि, शम्ब ऋषि, भानु ऋषि और सुभानुऋषि खांडाधार तपस्या मे लीन हो गये। वे नाना प्रकार की उग्र तपस्या करने लगे। जिस दिन पारणा करते, उस दिन रूखा-सूखा नीरस आहार ही ग्रहण करते थे।

बाह्य तपस्या के साथ-साथ अन्तरंग समस्या मे भी वे कभी प्रमाद नही करते। निरन्तर स्वाध्याय और ध्यान मे अपना समय यापन करते थे। इस अन्तरंग और वहिरंग तपस्या के प्रभाव से उनकी विकार-वासनाएं समूल नष्ट हो गई। वे समभाव मे स्थिर हो गये।

देश-देशान्तर मे भ्रमण करते हुए और जगत के जीवों को जीवन का महत्तम आदर्श प्रस्तुत करते हुए वे गिरिनार पर्वत पर पधारे।

एक वार प्रद्यूम्न ऋषि ध्यान मे लीन थे। उन्हे अपूर्व करण की प्राप्ति हुई। क्षपकश्रेणी पर आरुढ़ हो गए। आखिर दसवे गुण-स्थान मे पहुंच कर अन्तिम समय में समस्त कर्मो के सबल सेनापति मोह को परास्त किया। फिर सीधे वारहवे गुणस्थान मे पहुंचे। वहाँ अन्तर्मुहूर्त्त ठहर कर अन्तिम समय मे तीन घनघातिया कर्मों का क्षय करके अनुपम ऋद्धि के धनी बन गये। अखिल लोक और अलोक को आलोकित करने वाले केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त करके वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हो गये। उन्हे आर्हत अवस्था प्राप्त हो गई।

प्रद्युम्न मुनि की परम प्रशस्त साधना सफल हो गई। जिस उच्चतर स्थिति को प्राप्त करने की साध लेकर उन्होने उग्रतर साधना प्रारम्भ की थी, वह उन्हे प्राप्त हो गई।

अनादिकाल के भवभ्रमण से विराम हो गया। अब वे जीवन्मुक्त महायोगी थे।

केवलज्ञान का प्रकाश प्राप्त होने पर सुरेन्द्र, असुरेन्द्र, खगेन्द्र और नरेन्द्र गिरिनार पर्वत पर एकत्र हुए। सब ने अत्यन्त प्रीति एवं भक्ति के साथ केवलज्ञान का महोत्सव मनाया। सर्वत्र आनन्द का प्रसार हो गया।

केवलज्ञान से सुशोभित भगवान प्रद्युम्न ने भव्य जीवों को कल्याण पथ प्रदर्शित करने के लिए उपदेश दिया। उन्होने फर्माया:—

"भव्य जीवो। समस्त आत्माएँ अपने मूल स्वरुप से समान है। क्या सिद्ध और क्या संसारी, क्या त्रस और क्या स्थावर तथा क्या पंचेन्द्रिय क्या एकेन्द्रिय, यहाँ तक कि लोक के अग्रभाग पर प्रतिष्ठित सिद्ध परमेष्ठी और एक श्वास मे अठारह बार जन्म मरण करने वाला निगोदिया जीव भी मूल रुप मे एक समान है। सब आत्माओं मे एक समान शक्ति विद्यमान है। सभी चेतनामय है—सभी अनन्त उपयोग स्वरुप है। परन्तु उनमे आज जो वृहत अन्तर दृष्टिगोचर हो रहा है, वह औपाधिक है, वैभाविक है। अनादिकालिन कर्मपरम्परा के कारण ही आत्माओं की शक्ति मे तरतमता पाई जा रही है।

निसन्देह कर्मों की शक्ति प्रचण्ड है, किन्तु आत्मा की शक्ति भी उनसे कम नही है। अनादिकालीन कर्म प्रवाह मे बहते हुए भी आत्मा ने कभी पल भर के लिए भी अपने स्वभाव का पूर्ण रूप से परित्याग नहीं किया। निकृष्ट से निकृष्ट स्थिति मे रहने के समय भी उसका उपयोग-स्वभाव आंशिक

रूप मे जागृत ही रहता है। इससे आत्मा की महान और अजय सामर्थ्य का पता लगता है।

कर्म आत्मोपार्जित है और इस कारण आत्मा उनका विनाश करके अपने शूद्ध स्वरुप को प्राप्त कर सकता है। इस तथ्य की प्रतीति करने के लिए आपको दूर जाने की आवश्यकता नही है। मुझे देखकर ही आप इसे समझ सकते है।

शुद्ध स्वरुप को प्राप्त करने का मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप है।

जो सम्यग्दृष्टि बनकर और शरीर एवं संसार को [illegible] जान कर सम्यक्चारित्र की आराधना करते है, [illegible] कर्म मल को दग्धकर डालते है, उन्हे [illegible] है और फिर वे शाश्वत सिद्धि प्राप्त करके [illegible] जाते है"

इस प्रकार का धर्मोपदेश [illegible] सम्यक्त्वरत्न को प्राप्त किया। [illegible] को धारण किया। जिनकी [illegible] परिपूर्ण संयम ग्रहण [illegible]।

वेदनीय कर्मों को एक साथ क्षीण करके मोक्ष पधारे। सुभानु मुनि कतिपय भवों के पश्चात् मुक्ति प्राप्त करेंगे।

यही प्रद्युम्न के पुण्यमय चरित्र की समाप्ति होती है। इस चरित्र का अध्ययन करने से पुण्य का परिपाक-फल कैसा होता है, यह बात स्पष्ट प्रतीत होने लगती है। पुण्योदय से जीव को किस प्रकार सांसारिक सफलताएं मिलती है, किस प्रकार पुण्यात्मा के सभी मनोरथ पूर्ण होते है और किस प्रकार वह आत्मोत्कर्ष के पथ पर अग्रसर होता है, यह तत्व इस चरित से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। इस चरित का पठन करके जो पुण्य का आचरण करेंगे, उनकी समस्त अभिलाषाएँ प्रद्युम्नकुमार की अभिलाषाओं की भांति पूर्ण होगी।

रुक्मिणी ने मयूर को अन्तराय दिया तो उसे पुत्र का वियोग सहन करना पड़ा, यह समझ कर कभी किसी को अन्तराय न देना। मधुराजा ने हेमरथ को व्यथा पहुँचाई थी, इस कारण उसका अपहरण हुआ इस घटना का फलितार्थ शिक्षा देता है कि किसी भी जीव को कदापि कष्ट पहुंचाना योग्य नही है। जैसे कनकमाला के द्वारा प्रयत्न करने पर भी प्रद्युम्नकुमार का मन विचलित नही हुआ था, उसी प्रकार जो पुरुष पर मन न डिगाएंगे, वही सुखप्राप्त करेंगे।

जैसे प्रद्युम्नकुमार ने अवसर आने पर संयम धारण किया और शिवरमणी का वरण किया, उसी प्रकार आप भी संयम ग्रहण करे और परमानन्द पाएं। इति